प्रातः स्मरणीय महापुरुष

भाग-2

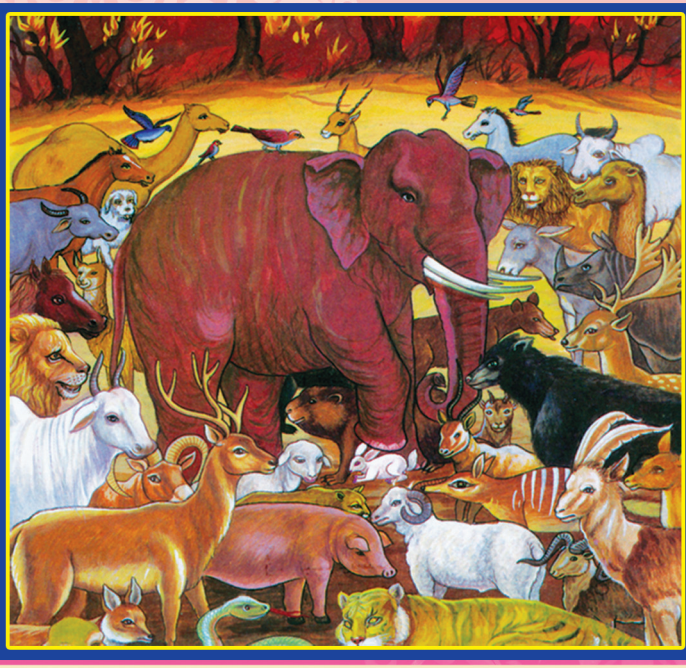

-: लेखक :-

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

प्रातः स्मरणीय-महापुरुष

भाग-2

(भरहेसर-सज्झाय)

◆ लेखक ◆

व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न,
बीसवीं सदी के महान् योगी, नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद
पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न
मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

150

✣ प्रकाशन ✣

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे.व्यु. बिल्डींग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Cell 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति: दूसरी • **मूल्य:** 300/- रु. • **प्रतियां:** 750 • **तारीख :** दि.28-6-2023
विमोचन स्थल : मुनिसुव्रत स्वामी जैन मंदिर श्वे.मू.जैन संघ, निगडी, (पूना)-411 044. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.*** द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल, चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार, मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

लेखक की कलम से...

शासन की वर्तमान परंपरा में प्रातःकाल की मंगलवेला में **साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका** जब राइ प्रतिक्रमण करते हैं, तब सज्झाय के रूप में अनिवार्य रूप से **'भरहेसर'** की ही सज्झाय पढ़ते हैं, जब कि शाम के समय में देवसी प्रतिक्रमण दरम्यान प्रतिदिन के लिए कोई सज्झाय Fix नहीं है । शाम के प्रतिक्रमण में कभी **जंबुकुमार** की भी सज्झाय बोल सकते हैं तो कभी मेतार्य मुनि की भी । अथवा वैराग्य या उपदेश की भी सज्झाय बोल सकते हैं ।

प्रातःकाल में **'भरहेसर'** की ही सज्झाय बोलते है, उसके पीछे कुछ रहस्य रहा हुआ है । लोक में कहावत है– **'First Impresion is the last impresion'** पहले परिचय में जो प्रभाव पडता है, वह जीवन के अंत समय तक बना रहता है ।

प्रातःकाल में जीवन के नए दिन का प्रारंभ हो रहा है तो सर्वप्रथम उन महापुरुषों का, महासतियों का नामस्मरण किया जाय तो उनके जीवन की छाया अपने जीवन पर भी पड़ सकती है । अतः प्रातः प्रतिक्रमण में सज्झाय के माध्यम से उन महापुरुषों, महासतियों का स्मरण करते हैं ।

प्रभु महावीर की वाणी चार अनुयोगों में विभक्त है द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग । इन चारों में आत्म-कल्याण के लिए चरण-करणानुयोग की मुख्यता है, परंतु उस चरण-करणानुयोग, की पुष्टि के लिए **'धर्मकथानुयोग'** की खूब आवश्यकता है । धर्मकथानुयोग तो Sugar coted Medicine जैसा है । जिसमें रोग का इलाज भी हो जाता है और कड़वेपन का अनुभव भी नहीं होता है ।

श्रोताओं को दिया गया Direct उपदेश जल्दी असर नहीं करता है, परंतु कथानक के माध्यम से दिया गया उपदेश शीघ्र असर कर जाता है ।

भरहेसर की सज्झाय में महासत्त्वशाली महापुरुष और शीलवती महासतियों का नाम निर्देश किया गया है । उन महापुरुष और महासतियों के जीवनचरित्र पढ़ने से हमें बहुत कुछ प्रेरणाएँ मिल जाती हैं ।

इन चरित्रों से हमें सहनशीलता की प्रेरणा मिलती है, कष्टों को हँसते मुँह सहन करने की प्रेरणा मिलती है, रोग आदि परिषहों को समतापूर्वक सहन करने की प्रेरणा मिलती है-भौतिक सुखों में अनासक्ति भाव रखने की प्रेरणा मिलती है ।

प्रत्येक चरित्र हमें कुछ नई-नई प्रेरणाएँ देता रहता है, जिनके स्वाध्याय से हमारे जीवन में रहे दोषों का ह्रास होता है तो नवीन गुणों का विकास भी होता है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा भी श्रोताओं को उपदेश देने के लिए चरित्र-ग्रंथों का अवलंबन लेते हैं । ये चरित्र ग्रंथ हमारी सुषुप्त चेतना को जागृत किए बिना नहीं रहते हैं ।

पूर्वाचार्य द्वारा विरचित 13 गाथाओं की इस सज्झाय में महापुरुष और महासतियों का सिर्फ नामनिर्देश किया है, परंतु उनके नाम-स्मरण में भी अपूर्व शक्ति रही हुई है ।

सज्झाय के अन्तर्गत ठीक ही कहा है -

'जेसिं नामग्गहणे, पावप्पबंधा विलयं जंति ।'

जिन महापुरुषों के नामग्रहण मात्र से ही आत्मा के ऊपर लगे हुए कर्मों के जटिल बंधन शिथिल होने लगते हैं ।

'महात्मनां मुमुक्षूणां, सतीनां च सुयोगिनां ।
नामोत्कीर्तन-मात्रेण, शिवश्रीर्जायते नृणाम् ।।

अर्थ : मोक्ष की इच्छावाले और उत्तम योगवाले महापुरुषों और महासतियों के नाम का कीर्तन करने मात्र से भी मनुष्यों को मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है ।

भगवान महावीर प्रभु की 51 वीं पाटपरंपरा में हुए **महाप्रभावक आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरिजी म.** के सुशिष्य श्री शुभशील गणि ने लगभग **10000 श्लोक** प्रमाण भरतेश्वर वृत्ति (टीका) की रचना की है ।

प्रस्तुत चरित्र-ग्रंथ के निर्माण में उस टीका तथा अन्य महापुरुषग्रंथ टीकाओं का भी आलंबन लिया गया है ।

भरतेश्वर वृत्ति आदि अनेक ग्रंथों के गुजराती भाषांतर तो उपलब्ध हैं, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के साहित्य की बहुत बड़ी कमी महसूस होती है ।

आभार

प्रस्तुत पुस्तक में स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित **'प्रतिक्रमण सूत्र आल्बम'** **पू.आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा., पू.आ. श्री हर्षशीलसूरीश्वरजी म.सा., डॉ. कुमारपाल देसाई** आलेखित गुजराती सचित्र साहित्य, दिवाकर प्रकाशन-आगरा के सचित्र प्रकाशन में से कुछ प्रकाशन उपयोगी चित्र लिये हैं । हम उन सभी के खूब-खूब आभारी हैं ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू.आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	बीजापूर
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारिता के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पं. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	नवलाख नवकार	2052	नवकार	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. के पत्रों का हिन्दी अनुवाद	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	63 दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन	कीर्ति स्थंभ घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	कर्मग्रंथ भाग-2	2073	दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	कर्मग्रंथ भाग-3	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
205.	छठा-कर्मग्रंथ	2074	हिन्दी में विवेचन	बेंगलोर
206.	Celibacy	2074	ब्रह्मचर्य का अनुवाद	सेलम (T.N.)
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2074	पू.भद्रंकर वि. के प्रवचनांश	ईरोड (T.N.)
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	साधु जीवन के सूत्रों पर विवेचन	कोयम्बतूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	मोक्ष मार्ग के 21 गुण	कोयम्बतूर
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर
211.	व्यसन-मुक्ति	2076	सात व्यसन के अनर्थ	चैनइ
212.	गणधर-संवाद	2076	गौतम स्वामि आदि 11 गणधर प्रतिबोध कथा	चैनइ
213.	New Message for a New Day	2077	सुवाक्य संकलन (अंग्रेजी)	चैनइ
214.	चिंतन का अमृत-कुंभ	2077	पूज्यश्री का मार्मिक चिंतन	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	2077	चरित्र ग्रंथ	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-1)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
217.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-2)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पंन्यासजी म.सा. के शिष्य प्रशिष्य आदि के जीवन चरित्र	बल्लारी (कर्णाटक)
219.	सुखी जीवन के Mile-Stone	2077	प्रवचन बिन्दू	बीजापूर(Kar.)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
222.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
223.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80 तक)	2078	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
224.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	2078	संयम जीवन की महत्ता एवं मु. विमलपुण्यविजयजी की दीक्षा प्रसंग	इचलकरंजी (M.S.)
225.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	2078	बेंगलोर में हुए प्रवचन	कराड (M.S.)
226.	श्री नमस्कार महामंत्र	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	बोरीवली (ई)
227.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	भायंदर (W)
228.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	2078	64 प्रकारी पूजा का विवेचन	भायंदर
229.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
230.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
231.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	2078	सामायिक विधि एवं श्रेणी	भायंदर
232.	वैराग्य-वाणी	2079	पू.आ.श्री रामचन्द्रसूरिजी के प्रवचन	भायंदर
233.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	2079	समकित 67 बोल विवेचन	महावीर धाम
234.	जीवन झांकी	2079	मु. पुण्योदयविजयजी का परिचय	कामसेट
235.	मन के जीते जीत है	2079	मन पर चिंतन	थाणा
236.	नमस्कार मीमांसा	2079	नवकार चिंतन	भायंदर

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादों सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **``वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 236

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

अनुक्रमणिका

क्रम	महापुरुष का नाम	महासती का नाम	पृष्ठ संख्या
47.	वंकचूल		1
48.	गजसुकुमाल		15
49.	अवंति सुकुमाल मुनि		20
50.	धन्यकुमार		24
51.	इलाचीकुमार		90
52.	चिलातीपुत्र		94
53.	युगबाहु मुनि		100
54-55.	आर्य महागिरि एवं आर्य सुहस्तिसूरिजी		110
56.	आर्यरक्षित म.		117
57-58.	राजर्षि उदायन	प्रभावती	167
59-60.	शय्यंभवसूरि और मणक		176
61.	कालकाचार्य-प्रथम		184
62.	युग प्रधान श्री कालकाचार्यजी-द्वितीय		186

क्रम	महापुरुष का नाम	महासती का नाम	पृष्ठ संख्या
63.	कालकाचार्य संवत्सरी तिथि परिवर्तन-तृतीय		190
64-65.	शांब और प्रद्युम्न		196
66.	मूलदेव		245
67.	विष्णुकुमार मुनि		259
68.	आर्द्रकुमार महामुनि		265
69.	दृढ़प्रहारी		273
70.	समताधारी कुरगडु मुनि		278
71.	मेघकुमार		283
72.	स्कन्दकाचार्य		287
73.	अषाढ़ाभूति		293

(47) वंकचूल-
पृष्ठ नं. 1

(48) गजसुकुमाल-पृष्ठ नं. 15

श्री गजसुकुमाल की सज्झाय

गजसुकुमाल महामुनिजी स्मशाने काउस्सग्ग,
सोमील ससरे देखीने जी, कीधो महाउपसर्ग रे
प्राणी धन धन अेह अणगार, वंदो वारंवार रे प्राणी० १

पाळ बांधी शिर ऊपरे जी, भर्या अंगारा रे त्यांय,
भडभड ज्वाळा सळगती जी, ऋषि चडिया उत्साह रे प्राणी० २

अे ससरो साचो सगो जी, आपे मुक्तिनी पाघ,
इण अवसर चुकुं नहि जी, टाळुं कर्मविपाक रे प्राणी० ३

मारुं कांई बळतुं नथी जी, बळे बीजानुं रे एह,
पाडोशीनी आगमां जी, आपणो अळगो गेह रे प्राणी० ४

जन्मान्तरमां जे कर्या जी, आ जीवे अपराध,
भोगवतां भली भात शुं जी, शुक्लध्यान आस्वाद रे प्राणी० ५

द्रव्यानल भावानले जी, काया कर्म दहंत,
अंतगड हुवा केवळी जी, धर्मरत्न प्रणमंत रे प्राणी० ६

47.
प्रतिज्ञा प्रभावक वंकचूल

जैन शासन में
विरति धर्म की खूब महिमा है ।

राजपुत्र वंकचूल जो
500 चोरों का सरदार था,
सद्‌गुरु के समागम से
सामान्य दिखाई देनेवाले ऐसे
चार नियमों का
स्वीकार किया था ।

- **भयंकर कसौटी के प्रसंग में भी उसने उन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन किया था,**
- जिसके फलस्वरूप वह बारहवें देवलोक का देव बना ।

47. वंकचूल

भवभीरुर्विमुञ्चेत्, नाङ्गी कृतमभिग्रहम् ।
प्रतिकूल निपातेऽयि, वंकचूल कुमारवत् ।।

वर्षा ऋतु का प्रारंभ हो चुका था । घनघोर गर्जना करते हुए बादल बरस रहे थें । मार्ग कीचड़ग्रस्त बन चुका था, चारों ओर हरियाली फैल चुकी थी, मानों धरती माँ ने हरी चादर ओढ़ ली हो । अनेकविध रंग-बिरंगे फूल खिल-खिलाकर हँस रहे थें । प्रातःकाल व्यतीत हो चुका था, परंतु अभी तक सूर्य नारायण के दर्शन नहीं हो पा रहे थे । काली श्याम बदलियों ने आज सूर्य से संघर्ष खेला था और आज के इस संघर्ष में वे विजेता-सी प्रतीत हो रही थीं । उनके विजयोत्सव के आनंद को धूमिल न करने के इरादे से प्रचंड सूर्य ने भी कुछ समय के लिए मौन धारण कर लिया था ।

इसी बीच **आ. सुस्थितसूरिजी** साधु वृंद के साथ आबू से अष्टापद की ओर उस वन-मार्ग से निकल रहे थें । मुनियों की यह कतार अत्यंत ही प्रयत्नपूर्वक आगे बढ़ रही थीं, परंतु वे अब आगे जाने में असमर्थ थें, क्योंकि वर्षा के कारण चारों ओर का वातावरण जीव-जन्तुमय बन चुका था । छोटे-छोटे जन्तुओं की तो बाढ़-सी आ गई थी । जीव-रक्षा के वेष को धारण किए होने से अब उनके लिए आगे कदम बढ़ाना अशक्य था । उन्हें 100 मील की दूरी पर रहे गाँव में चातुर्मास के लिए जाना था । वे इसी संकल्प पर निकले थे कि समय पर पहुँच जाएंगे । **परंतु कई बार प्रकृति के आगे मानवीय संकल्प को घुटनें टेकने ही पड़ते हैं ।** आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी बीत चुकी थी । अब उन्हें अपने निर्धारित क्षेत्र में पहुँचना कठिन-सा प्रतीत हो रहा था ।

इसी समय एक मुनि की नजर पहाड़ की तलहटी की ओर पहुँची और उन्हें वहाँ भवनों की पंक्तियाँ नजर आई ।

``गुरुदेव ! अब उस गाँव तक पहुँचना तो कठिन है, तो क्यों न उन भवन-पंक्तियों की ओर बढ़ें । आगे शायद वहाँ बस्ती भी हो सकती है और...।

गुरुदेव ने उस मुनि की बात में अपनी सम्मति प्रकट की और अपने शिष्यों से बोले, ``चलें, अब उन भवन पंक्तियों की तरफ चलें ।''

आचार्य सुस्थितसूरि म. अपने शिष्यवृंद के साथ उन भवन-पंक्तियों की ओर आगे बढ़ने लगें । भवन-पंक्तियों के निकट पहुँचते ही उन्हें एक तेजस्वी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति नजर आया । उसकी काया हृष्ट-पुष्ट थी, उसकी भुजाओं में बल था और मुख पर तेजस्विता थी ।

आचार्यश्री ने देखा वह युवक उन्हीं की ओर आ रहा है ।

आगंतुक युवक थोड़ी ही देर में आचार्यश्री के निकट पहुँच गया । उसने कहा, ``महात्मन् ! इस वर्षा ऋतु में आप इस जंगल में कहाँ से ? चातुर्मास के लिए कहाँ पहुँचना है ? आप मार्ग तो नहीं भूल गए हैं ?''

युवक की यह बात सुनकर आचार्यश्री को लगा कि हो न हो यह युवक जैन साध्वाचार से परिचित होना चाहिए, अन्यथा इस प्रकार की बात यह क्यों करता !

गुरुदेव ने कहा, ``बंधु ! हमारा लक्ष्य तो अमुक गाँव तक पहुँचने का था, परंतु बीच मार्ग में हम रास्ता भूल गए, वर्षा भी हो गई, वर्षा के कारण जो पगडंडियाँ थीं, वे भी साफ हो गईं । अतः अब उस गाँव तक पहुँचना कठिन है । क्या यहीं आसपास में चातुर्मास में रहने के लिए कोई सुयोग्य स्थान मिल सकेगा, जहाँ रहकर हम चातुर्मास काल तप-जप की आराधना में व्यतीत कर सकें ?

आचार्यश्री के मुखकमल से निकली हुई गंभीर और स्नेहार्द्र वाणी ने उस युवक के पत्थर हृदय को भी पिघला दिया ।

उस युवक ने कहा, ``महात्मन् ! ये जो आपके सामने भवन-पंक्तियाँ दिखाई दे रही हैं, वह चोरों की पल्ली है, चोरी करना और लूटना इन सबका धंधा है और मैं भी उन्हीं में से एक हूँ ।

``महात्मन् ! आप रहने के लिए बस्ती की मांग कर रहे हैं, मैं देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु एक शर्त है ।''

``भाई ! वह कौन-सी शर्त है तुम्हारी ?''

``महात्मन् ! हम तो रहे लुटेरे और आप रहे महात्मा । हमारी और आपकी दिशा भिन्न-भिन्न है । हमारा काम लूटने का और आपका काम

धर्मोपदेश देने का है । आप हमारा संग करें, तो आपको नुकसान और हम आपका संग करें, तो हमें रोटी की चिंता ? फिर भी आप बस्ती माँग रहे हैं, तो मैं बस्ती देने के लिए तैयार हूँ, परंतु शर्त यह है कि आप यहाँ रहते हुए, मेरी सीमा में मुझे या मेरे साथी को धर्म का उपदेश न दें ।

महात्मन् ! मैं जानता हूँ कि आपका मार्ग शूरों का है, परंतु लूट और चोरी यह तो हमारी आजीविका है और इसका त्याग करना हमारे लिए कठिन है ।''

आचार्यश्री ने उस युवक की शर्त स्वीकार कर ली । उन्होंने सोचा-''धर्म तो जिज्ञासु को देने की वस्तु है, बलात्कार से किसी पर थोपने की वस्तु नहीं है, अतः यदि धर्मश्रवण की इनकी इच्छा न हो, तो इन्हें नहीं सुनाना चाहिए, हमें तप-जप और ध्यान में अपना समय व्यतीत करना चाहिए ।''

पल्लीपति ने मुनिवृंद के रहने के लिए एक विशाल भवन सौंप दिया । मुनिवृंद ने बस्ती में प्रवेश किया और सभी मुनि त्याग-तप और स्वाध्याय में जुट गए ।

स्वाध्याय मुनि-जीवन का प्राण है, इससे रहित श्रमण-जीवन प्राणरहित कलेवर की भाँति है ।

स्वाध्याय और ध्यान में लयलीन मुनियों को समय का पता ही नहीं चल रहा था, दिन-पर-दिन व्यतीत होते जा रहे थे ।

सभी मुनि आत्म-कल्याण के मार्ग में उत्साही थें तो ये चोर चोरी और लूट के मार्ग में उत्साही और जागरूक थें ।

देखते-देखते जल-प्रवाह की भाँति चातुर्मास काल समाप्त हो गया !

कार्तिकी पूर्णिमा का दिन आ गया और आचार्यश्री प्रस्थान की तैयारी करने लगे ।

मुनियों के मौन में भी उपदेश की धारा बह रही थी । ग्रीष्म ऋतु में नदी तट से प्रसार होने पर शीतलता का अनुभव होता है, तो क्या साधुता के तट पर रह रहे डाकुओं के हृदय में शीतलता का स्पर्श नहीं होगा ?

साधु की साधुता तो चंदन से भी अधिक शीतल है, उसके सान्निध्य में रही आत्मा शांत न हो, यह कैसे संभव है ?

विदाई के क्षण निकट आ रहे थे । पल्लीपति सरदार सोचने लगा, ''अहो ! ये मुनि चार मास तक मेरी पल्ली में रहे । कितने शांत और गंभीर हैं । इन्होंने मेरी शर्त का पूर्णरूप से पालन किया है ।''

सभी मुनि विहार यात्रा के लिए तैयार हो चुके थे । शुभ-मुहूर्त में विहार-यात्रा प्रारंभ हो गई । पल्लीपति आचार्यश्री को छोड़ने के लिए साथ चला । वह आचार्यश्री के साथ-साथ आगे कदम बढ़ा रहा था । उसके बाह्य व्यक्तित्व और अंतरंग गुणसमृद्धि के दर्शन करते हुए आचार्यश्री ने मधुर स्वर से कहा, ``बंधु ! तुम्हारा परिचय ? भले ही वर्तमान में तुम चोरी और लूट का धंधा कर रहे हो, परंतु तुम्हारी आकृति और प्रकृति से तो तुम किसी उत्तम कुल-वंश के प्रतीत हो रहे हो ।''

आचार्यश्री की मधुर वाणी से पल्लीपति का कठोर हृदय भी पिघल चुका था । उसने सोचा-``इन संतों से छिपाने जैसी क्या चीज है ? इनके आगे अपने जीवन की किताब खोल देने में कोई एतराज नहीं है ।''

उसने अपना परिचय देते हुए कहा, ``प्रभु ! मेरा जन्म विराट देश के महाराजा विमलयशा के यहाँ हुआ था । मेरी माता का नाम सुमंगला है । मेरा नाम पुष्पचूल और मेरी बहिन का नाम पुष्पचूला ।

अपने माता–पिता का इकलौता बेटा होने से मेरे लाड़-प्यार में कोई कमी नहीं रही, मुझे हर प्रकार की स्वतंत्रता थी । सभी लोग मेरा आदर करते थे । परंतु जिस प्रकार एक श्रीमंत दूध और घी को पचा नहीं सकता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी स्वतंत्रता को पचा नहीं सका और वह स्वतंत्रता, स्वच्छंदता में बदल गई । मैं मनचाहे ढंग से लोगों के साथ व्यवहार करने लगा । मुझे किसी के सुख-दुःख की चिंता नहीं थी, परंतु यदि कोई मेरे सुख में बाधक बनता तो मैं उसे मौत के घाट भी उतार देता !

मैं शराब और शिकार के व्यसनों का संगी बन गया, मुझे न आत्म-हित की चिंता थी और न ही प्रजा-हित की । दिन-प्रतिदिन प्रजाजनों के साथ मेरा दुर्व्यवहार-अत्याचार बढ़ता गया ।

अनेक बार प्रजाजनों ने महाराजा से शिकायत की । कई बार तो महाराजा उन फरियादों को टाल देते थे, परंतु जब बारबार फरियादें आने लगीं, तो महाराजा मुझे स्नेहभरी वाणी से हित-शिक्षा देने लगे, परन्तु मेरे पत्थर-दिल हृदय पर उस वाणी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । जलसिंचन से पत्थर कोमल बने तो सद्वाणी से मेरा हृदय पिघले ।

एक बार तो मेरी घुड़सवारी से एक निर्दोष बालक मारा गया । प्रजा मेरे इस आतंक से अत्यंत संतप्त हो उठी । प्रजाजनों ने महाराजा से शिकायत

की । आखिर थककर पिता ने कह दिया, ''चल, निकल जा मेरे राज्य से, मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहता हूँ ।''

पिता की ओर से इस आदेश को पाते ही मैं राजभवन से निकल पड़ा, भाई के स्नेह से मेरी बहन पुष्पचूला भी मेरे साथ निकल पड़ी । हम भाई-बहन के बीच स्नेह का गाढ़ संबंध था । वह संबंध महल की भाँति वन में भी बना रहा ।

हम दोनों राजमहल से निकलकर आगे बढ़े और अंत में इस पल्ली के निकट आ गए । यहाँ के स्वामी ने मुझे आश्रय दिया और चोर-लुटेरों के संग से मैं भी अजोड़ डाकू बन गया । चोरी करना, लूटना और मार डालना यह हमारा नित्य का व्यवसाय बन गया ।''

अपने भूतकाल की स्मृतियों को ताजा करते-करते उस पल्लीपति का हृदय भर आया । उसने कहा-``प्रभो ! मैं पल्लीपति के सान्निध्य में रहा । उसके सान्निध्य में कुल 500 डाकू हैं । कुछ महिनों पूर्व पल्लीपति की मृत्यु हो गई और इन डाकुओं ने मिलकर मुझे अपना सरदार बना दिया ।

``प्रभु ! आज मैं इन चोरों का सरदार हूँ । चारों ओर मेरे नाम की धाक है । प्रभु ! एक बात मैं भूल गया, मेरा नाम तो पुष्पचूल था, परंतु मेरे आतंक के कारण प्रजाजनों ने मेरा नाम **''वंकचूल''** रख दिया ।

``आज जब मुझे अपने वात्सल्यमूर्ति माता-पिता की याद आती है, तो मेरा हृदय विषाद से भर आता है । उस समय मैंने उनकी एक न सुनी, उनकी हर प्रेरणा मुझे कर्ण-कटु लगती थी । परंतु आज मुझे उनकी याद आती है तो मेरा हृदय भर आता है । वे हमारे वियोग से अत्यंत संतप्त बने और अन्त में उनका सदा के लिए वियोग हो गया । परंतु...! यह मेरी जीवन कहानी है ।

आचार्यश्री ने स्नेहभरी वाणी से कहा, ``पुष्पचूल ! **जीवन तो बहती हुई नदी है, कभी वह समतल भू-भाग पर सरलता से बहती है, तो कभी उसे उतार-चढ़ाव के विकटतम प्रदेशों से भी गुजरना पड़ता है ।** मैं जानता हूँ कि तेरा जीवनपथ एक विकट मार्ग से गुजर रहा है, परंतु फिर भी तू नियम की मर्यादा के द्वारा अपने जीवन को उत्थान के मार्ग में आगे बढ़ा सकता है ।

पुष्पचूल ! आज मेरा हृदय पुकार रहा है कि मैं तुझे जीवन-पाथेय के लिए कुछ भेंट दूँ ।''

``प्रभु ! हिंसा-लूट-झूठ और चोरीमय इस जीवन में मैं क्या नियम ग्रहण कर सकूंगा ? और नियम ले भी लिया, तो वह मेरी जीवन-यात्रा में बाधक बन जाएगा ।''

``पुष्पचूल ! मैं तुझे मात्र ऐसे चार नियम देना चाहता हूँ जो न तेरी जीवन-यात्रा में बाधक बनेंगे और न ही तेरे व्यवसाय में...फिर भी वे तेरे जीवन के अनमोल पाथेय बन जाएंगे ।''

``प्रभु ! यदि ऐसे ही नियम हैं, तो मैं उन्हें अवश्य स्वीकार करूंगा । कृपया वे नियम मुझे बताइए ।''

आचार्यश्री ने कहा :-

- **मेरी तो इच्छा है कि तू किसी की भी हिंसा न करे, परंतु यह तेरे लिए शक्य न हो, तो किसी की हिंसा के पूर्व एक बार सात कदम पीछे हट जाना, बोल ! कबूल है न ?**

  ``हाँ ! महाराज ! इसमें तो मुझे कोई तकलीफ नहीं है, मुझे स्वीकार है ।''

- **मेरी इच्छा है कि तू सात्त्विक आहार ग्रहण करे, परंतु यह शक्य न हो, तो अज्ञात फल का त्याग कर दे ।**

  ``गुरुदेव ! यह भी मुझे स्वीकार है ।''

- **मेरी इच्छा है कि तू पवित्र जीवन व्यतीत करे, परंतु इतना शक्य न हो, तो कम-से-कम राजा की रानी के साथ दुराचार का त्याग करना ।**

  ``चौथा नियम कौन-सा है, गुरुदेव !'' अत्यंत उत्सुकता से पुष्पचूल ने पूछा ।

- **पुष्पचूल ! मेरी इच्छा है कि तुम सर्वथा मांसाहार का त्याग करो, परंतु यदि यह शक्य** न हो, तो कम-से-कम कौए के मांस का त्याग कर दो ।

  ``गुरुदेव ! यह भी मुझे स्वीकार है ।'' वंकचूल ने कहा ।

गुरुदेव ने वंकचूल को ये चार नियम प्रदान किए और उन्होंने वहाँ से अपनी विहार-यात्रा आगे बढ़ाई । जब तक आचार्य की पीठ दिखाई दी, तब तक वंकचूल उन्हें देखता ही रहा । सोचने लगा– **'कितना निर्मल और पवित्र जीवन है ! और साथ में अमाप करुणा ! धन्य है इन महात्माओं के जीवन को ।'**

卐 卐 卐 卐 卐

पूर्णिमा का चांद गगनमण्डल में प्रकाश फैला रहा था । वंकचूल अपने मित्रजनों के साथ किसी प्रदेश में चोरी-लूट के लिए गया हुआ था । अपार धन-संपत्ति को लूटकर वह अपने भवन की ओर लौट रहा था । उसके हृदय में सम्पत्ति-प्राप्ति का आनन्द उछल रहा था । चांदनी रात थी, अतः उसे अपने घर तक पहुँचने में कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ी ।

वह अपने घर के द्वार के निकट आया । दरवाजा बन्द था, कमरे में चारों ओर दीपक का प्रकाश था । वंकचूल ने छिद्र में से अन्दर नजर डाली और उसके अंग-अंग में आग फैल गई । ``अहो ! यह कौन दुष्ट मेरी पत्नी के साथ पलंग पर सोया हुआ है ? अहो ! क्या मेरी पत्नी भी अन्य के प्रेम की पिपासु बनी है ! धिक्कार हो उसे ।'' उसने दरवाजा खोल दिया ।

वंकचूल आग-बबूला हो उठा । उसने म्यान में से तलवार निकाल ली और शय्या पर सोए हुए दोनों की हत्या की तैयारी की...परंतु तत्काल ही उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई और वह अपने स्थान से सात कदम पीछे हट गया । वार के लिए उसने तलवार ऊपर की ओर उठाई हुई वह तलवार दीवार पर टंगे हुए बर्तन से टकराई । बर्तन की आवाज के साथ ही शय्या से पुरुष-वेषधारी पुष्पचूला एकदम जाग गई और बोली, ``अरे ! यह क्या ! क्या कर रहे हो बड़े भैया ?

''अरे ! कौन ? पुष्पचूला ! तू इस पुरुष-वेष में कैसे ? आखिर क्या मामला है ? अभी तो मैं तुम दोनों के सिर को धड़ से अलग कर देता, उपकार है उस महात्मा का, जिनके नियम पालन से तुम दोनों के प्राण बच गए ।''

पुष्पचूला की पत्नी वसंतसेना भी निद्रा का त्यागकर बैठ गई थी ।

पुष्पचूला ने कहा, ``भैया ! गत संध्या जब आप लूट के लिए निकल पड़े, तब हमने नाट्य मण्डली के आगमन के समाचार सुने । उस नाट्यमंडली का आज एक भव्य कार्यक्रम था, उसको देखने के लोभ को मैं रोक न सकी, परंतु रात्रि के समय हम दोनों के घर से निकलने में समस्या थी, चूंकि हम दोनों स्त्रियाँ हैं, मार्ग में किसी प्रकार की तकलीफ न पड़े, इसलिए मैंने आपका वेष धारण कर लिया । मध्यरात्रि तक उस नाट्यमंडली का कार्यक्रम चला । मध्यरात्रि में लौटते हुए हम अत्यंत थक चुकी थीं । आँखों में नींद थी और पैरों में थकावट । अतः घर आने के बाद मैं अपने वस्त्र उतारना भूल गई और भाभी के पास ही सो गई ।''

पुरुष वेष धारण के रहस्य को जानकर वंकचूल की सभी शंकाएँ दूर हो चुकी थीं । उसने कहा, ``बहन ! तुम्हारे, पुरुष वेष को देखकर मेरे दिल में अनेक प्रकार की गलत कल्पनाएँ आ चुकी थीं और मैं तो तुम दोनों के वध के लिए तैयार हो चुका था, परंतु याद है न तुम्हें ?

``उन महात्मा ने मुझे एक नियम दिया था `किसी को मारने के पूर्व सात कदम पीछे हटने का ।' बस, उसी नियम ने आज मुझे बचा लिया, अन्यथा आज मेरे हाथों से एक भयंकर दुष्कृत्य हो जाता ।''

वंकचूल के हृदय में गुरुदेव के प्रति श्रद्धा का दीप प्रज्वलित हो उठा ।

卐 卐 卐 卐 卐

इस घटना को व्यतीत हुए एक महीना बीत चुका था और वंकचूल अपने साथियों के साथ किसी दूर क्षेत्र में रहे नगर को लूटने के लिए निकल पड़ा । वंकचूल ने अपने 25 मित्रों के साथ उस नगर में डाका डाला । नगरवासी किसी महोत्सव के प्रसंगवश अन्यत्र गए हुए थे । वंकचूल ने अपने साथियों के साथ उस नगर को लूटा ।

अपार धन-सम्पत्ति की गठरियाँ बाँधकर वंकचूल अपने मित्रों के साथ अपनी पत्नी की ओर चल पड़ा, परंतु बीच में ही वह मार्ग भूल गया और वह एक जंगल में जा पहुँचा ।

रात्रि का अंतिम प्रहर चल रहा था, वंकचूल तथा उसके साथियों को बहुत जोरों की भूख लगी हुई थी । वंकचूल ने अपने मित्रों को आदेश दिया, ``आसपास के वृक्षों पर से फल ले आओ ।''

वंकचूल के साथी फल लेने के लिए निकल पड़े । उन्हें अधिक दूरी तक नहीं जाना पड़ा, क्योंकि आसपास में ही अनेक वृक्ष फलों से लदे हुए थें ।

वंकचूल के साथी कुछ ही क्षणों में ढेर सारे फल लेकर आ गए ।

``बंधु ! बड़े मीठे फल लगते हैं । इनका नाम ?''

``नाम तो हमें पता नहीं है ।''

``तो फिर मैं इन फलों को नहीं खाऊँगा ।''

``बंधु ! नाम से क्या मतलब है ? बस, पेट भरना चाहिए । कितनी खुशबू आ रही है ।''

वंकचूल ने कहा, ``साथियों ! **अज्ञात फल न खाने की मेरी प्रतिज्ञा है । मैं तो इन फलों को नहीं खाऊंगा ।''**

मित्रों ने कहा, ``हमारा तो मन ललचा रहा है इन फलों को खाने के लिए ।''

...``परंतु मैं तो नहीं खाऊंगा ।'' वंकचूल ने कहा ।

``हम तो खाते हैं, बड़ी भूख लगी है ।'' इतना कहकर वंकचूल के सभी साथियों ने बड़े चाव से वे फल खाए और उस वृक्ष की छाया में सो गए ।

वंकचूल भी थक चुका था, अतः उसने भी अपनी देह को लंबा किया और वह भी निद्रा देवी की गोद में सो गया ।

एक प्रहर की शांत निद्रा के बाद वंकचूल जाग उठा । उसने देखा, पूर्व में अरुणोदय की लालिमा फैल चुकी है ।

उसने अपने साथियों को पल्ली की ओर चलने के लिए आवाज दी, किन्तु उनमें से कोई नहीं उठा । सभी साथी चिरनिद्रा में सो चुके थे, अब उन्हें जगाना किसी के वश की बात नहीं थी ।

वंकचूल ने जब अपने सभी 25 साथियों के मृत देह को देखा, तो उसका हृदय हर्ष और शोक के मिश्रित भावों से भर आया । शोक इस बात का था कि उसके सब साथी अकाल ही मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे और हर्ष इस बात का था कि गुरुदेव के नियम ने उसके प्राण बचा लिये थे ।

अंत में वंकचूल अपनी पल्ली की ओर चल पड़ा । उसने सोचा, ``मेरे मित्रों ने जो फल खाए हैं, वे विषैले होने चाहिए, इसी कारण उनकी मृत्यु हुई है...गुरुदेव ने मुझे यह नियम प्रदान कर मेरे प्राणों का रक्षण किया है । धन्य हो उन गुरुदेव को !''

वंकचूल अपनी पल्ली में पहुँचा, उसने अपने अन्य साथियों को मित्रों की मृत्यु की घटना कह सुनाई । सभी को बड़ा खेद हुआ ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

卐 卐 卐 卐 卐

एक दिन वंकचूल के हृदय में महारानी के कीमती **``नवलखा हार''** चोरी करने की इच्छा पैदा हुई । बड़ी हिम्मत करके वह अपनी पल्ली से निकल पड़ा और अपने विविध साधनों के बल से राजमहल के एक खंड में पहुँच गया ।

उस खंड में महारानी आराम कर रही थी । चारो ओर शांत वातावरण था । चंद्रमा की धवल किरणें महारानी के रूप-सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रही थीं ।

वंकचूल की पदचाप से महारानी एकदम जाग गई और उसने चांदनी रात के प्रकाश में वंकचूल के तेजस्वी रूप को देखा...देखने के साथ ही बिजली की भाँति उसके अंग-अंग में काम का ज्वर फैल गया !

महारानी ने पूछा, ``तू कौन है ?''

चोर के वेष को देखकर महारानी समझ गई कि यह चोरी करने आया है, परंतु वंकचूल के अद्‌भुत रूप पर मोहित बनी महारानी वंकचूल का संग चाहती है, उसने वंकचूल से काम की प्रार्थना की ।

इसी वक्त वंकचूल को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई । `ओहो ! यह तो महारानी है ।' अपने आप पर नियंत्रण लाते हुए तत्क्षण वह बोला, ``महारानी ! आप तो राजमाता हो ! आपके साथ यह दुर्व्यवहार उचित नहीं है ।''

``अरे युवक ! तुझे पता है, तू कहाँ खड़ा है ? यदि मेरी बात को स्वीकार नहीं करेगा, तो तेरे लिए मौत की आपत्ति खड़ी हो सकती है । अंगरक्षकों के भालों से तेरा देह बिंध दिया जाएगा ।''

नारी का हृदय सौम्य होता है, किन्तु जब वह भड़क उठती है, तो प्रचंड आग से भी अधिक भयंकर हो जाती है ।

वंकचूल को अपनी प्रतिज्ञा याद थी । वह अपने दृढ़ संकल्प के प्रति स्थिर था...वह लेशमात्र भी चलित नहीं हुआ ।

तभी महारानी ने अपने ही हाथों नाखूनों से अपने देह पर विविध घाव करते हुए जोर से आवाज दी, **``बचाओ ! बचाओ ! यह दुष्ट मेरा शील लूटने आया है ।''**

महारानी की चिल्लाहट की आवाज के साथ ही आसपास के सैनिक दौड़ आए और तत्काल वंकचूल को कैद कर लिया ।

महारानी मन-ही-मन खुश थी कि मेरी इच्छा को स्वीकार न करने से अब उसकी कैसी दुर्दशा होगी ?

मनुष्य अपनी मनः कल्पनाओं के अनुसार कुछ और सोचता है और प्रकृति को कुछ और ही स्वीकार होता है ।

महाराजा पास के खंड में सोए हुए थे । उन्होंने वंकचूल और महारानी के पारस्परिक वार्तालाप को सुन लिया था ।

सैनिकों ने वंकचूल को कारागृह में बंद कर दिया ।

प्रातःकाल की मधुर बेला के प्रशांत वातावरण में सैनिकों ने वंकचूल को महाराजा के समक्ष उपस्थित किया । महाराजा ने उससे महारानी पर बलात्कार के संदर्भ में विविध प्रश्न किए । परंतु वंकचूल मौन था ।

उसका निर्दोष हृदय पुकार रहा था कि यदि मैंने महारानी का नाम ले लिया तो महाराजा महारानी से रुष्ट हो जाएंगे और उसे शायद राज्य से निकाल भी दे । अतः वंकचूल ने एकमात्र मौन का ही आश्रय लिया ।

महाराजा ने उसके मौन में...उसके आभ्यंतर व्यक्तित्व के दर्शन किए और तत्काल उसे सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया । वंकचूल के पवित्र जीवन की उन्होंने कद्र की और सोचा **''जो व्यक्ति अपने आप पर नियंत्रण रख सकता है, वही व्यक्ति प्रजा का सच्चा हित कर सकता है ।''**

वंकचूल का हृदय पुनः पुनः गुरुचरणों में झुक पड़ा, धन्य हो गुरुदेव को, जिन्होंने इन प्रतिज्ञाओं के बहाने मेरी आत्मा के उत्थान की हित-चिंता की ।

''नगर का भक्षक ही रक्षक बन गया ।'' यह जानकर प्रजा भी भयमुक्त बन गई ।

जिस निष्ठुरता से वंकचूल पहले चोरी और लूट करता था, आज उसका हृदय प्रजा के रक्षण की जिम्मेदारियों से जुड़ गया । वह स्वयं चोर था, अतः चोरों को पकड़ने में उसे अत्यंत सरलता थी ।

धीरे-धीरे नगर में चोर-डाकुओं का आतंक समाप्त होने लगा और वंकचूल के नेतृत्व में प्रजा संपूर्ण भयमुक्त जीवन व्यतीत करने लगी ।

वंकचूल की जीवन नैया आगे बढ़ती जा रही थी ।

एक बार महाराजा को समाचार मिले कि राज्य के सीमावर्ती इलाके में पड़ोसी राजा हस्तक्षेप कर रहा है और वह किसी-न-किसी तरीके से वहाँ की प्रजा को परेशान कर रहा है ।

महाराजा ने तत्काल वंकचूल को बुलाया और पड़ोसी राजा की शान ठिकाने लाने की आज्ञा दे दी ।

वंकचूल एक छोटे सैन्यदल के साथ शत्रुओं से निपटने के लिए निकल पड़ा ।

आतंकवादियों पर उसने हमला किया, दोनों ओर से परस्पर युद्ध हुआ । अंत में इस युद्ध में वंकचूल विजेता बना, परंतु उसके जर्जरित देह पर कुछ घाव पड़ गए ।

वंकचूल विजेता बनकर अपने नगर में लौट आया ।

परंतु शरीर पर पड़े घावों के कारण दिन-प्रतिदिन उसका स्वास्थ्य गिरने लगा । अनेकविध उपचारों के बावजूद भी वह पूर्ण स्वस्थता को पुनः प्राप्त न कर सका ।

आयुर्वेद के एक निष्णात वैद्य का आगमन हुआ । उसने वंकचूल की देह का निरीक्षण किया और अंत में उपाय बताते हुए कहा, ``कौए के मांस के साथ यह औषधि दी जाए, तो वंकचूल के देह के घाव भर सकते हैं और वे पूर्ण स्वस्थता प्राप्त कर सकते हैं ।''

जब यह बात वंकचूल ने सुनी, तो उसकी भुजाओं में बल आ गया, वह बैठ गया और वैद्यराज से बोला, ``वैद्य जी ! यह देह रहे या न रहे, इसकी मुझे परवाह नहीं है, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा का भंग नहीं होगा, मैं कौए का मांस नहीं लूंगा ।''

``सेनापतिजी ! जीवन-मरण का प्रश्न है, ऐसी परिस्थिति में नियम में कुछ शिथिलता भी...।'' वैद्यजी आगे कुछ बोल न सके ।

``वैद्यजी ! जिस वस्तु को ग्रहण करने में मेरे वीरत्व का अपमान होता हो– उसका कभी भंग नहीं हो सकेगा, प्रतिज्ञा तो मेरा प्राण है ।''

वैद्यजी आगे कुछ भी बोल न सके । महाराजा, मंत्री तथा नगर के विशिष्ट जन सेनापति की मृत्यु-शय्या के इर्द-गिर्द खड़े थे । सेनापति के अंगों में पीड़ा थी, किंतु उसके मुख पर प्रसन्नता थी ! उसे इस बात का आनंद था कि, **``मैंने जीवन में गुरुदेव से ग्रहण की प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया है, यही मेरे लिए परलोक का पाथेय है, जिसे लेकर मुझे यहाँ से विदा होना है ।''**

वंकचूल को समझाने के लिए जिनदास श्रावक आया । जिनदास ने पूछा, `तुम स्वस्थ हो ?' वंकचूल ने कहा, `हे बंधु ! मेरा शरीर अस्वस्थ है, क्योंकि शरीर तो रोग के अधीन है । यह जीवन कर्म के अधीन है और आराधना करना अपने अधीन है । तुम्हे जो ठीक लगे, वह करो ।

उसके आशय को जानने के लिए जिनदास ने कहा, `अपने देह के लिए कौए का मांस ग्रहण करो ।'

यह बात सुनकर वंकचूल नाराज होकर बोला, **'मेरा जीवन तो कंठ पर आ गया है । जिस प्रकार वायु से बादल नष्ट होते है, उसी प्रकार रोग से यह देह नष्ट होता है, अतः अस्थिर जीवन के लिए कौन धीरपुरुष अपने अभिग्रह का खंडन करेगा ।'**

यह सुनकर जिनदास खुश हो गया और बोला, **'मित्र !' आत्मा अकेली ही आई है और अकेली ही जानेवाली है । देह, कुटुंब, यौवन, वैभव आदि सभी अनित्य हैं उनके प्रति हृदय में ममत्वभाव धारण न करो ।'** अरिहंत आदि की शरणागति का स्वीकारकर वंकचूल मरकर बारहवें देवलोक में देव बन गया ।

इसी वंकचूल ने एक बार आ. सुस्थितसूरि के शिष्य धर्मऋषि और धर्मदत्त को चातुर्मास करवाया था और उनके उपदेश से चंबल घाटी के पास बड़ा जैन मंदिर बनवाकर महावीर प्रभु की प्रतिष्ठा भी की थी । वह स्थान आगे चलकर तीर्थ बना था ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

कलिंग देश (उडिसा) के कुमारगिरि पर्वत की गुफा में **आ. सुस्थितसूरि-सुप्रतिबद्धसूरि** ने सूरिमंत्र का एक करोड़ बार जाप किया था । इस जाप के फलस्वरूप ही उनके श्रमण समूह की परंपरा का नाम **'कोटि गच्छ'** पड़ा था ।

प्रभु महावीर से आर्य सुहस्ति तक 8 परंपरा का नाम निर्ग्रंथ गच्छ था, जबकि **सुस्थिसूरि** से गच्छ का नाम **'कोटि गच्छ'** पड़ा !

68 वर्ष के संयम पर्याय में 48 वर्ष तक संघ का नेतृत्व करते हुए 96 वर्ष की उम्र में वी.सं. 339 में **आचार्य सुस्थितसूरि** का कुमारगिरि पर्वत पर कालधर्म हुआ था ।

48. परिषह विजेता गजसुकुमाल

देह प्रति रहे ममत्वभाव का
विसर्जन किए बिना
मरणांत परिषहों को
हँसते मुँह प्रसन्नतापूर्वक और
पूर्ण समाधि के साथ
सहन करना आसान बात नहीं है ।

परंतु दीक्षा के दिन ही
अपने श्वसुर के द्वारा दिये गये
मरणांत परिषह को भी आपने समतापूर्वक
सहन कर लिया और
कैवल्य लक्ष्मी को प्राप्तकर
मोक्ष भी पा लिया ।

❑ हे मुनिवर !
वर्षों तक संयमपालन के बाद भी
देह के प्रति रहा ममत्वभाव दूर नहीं होता है,
जबकि आपने तो
एक ही दिन के दीक्षा पर्याय में
कमाल कर दिया !
धन्य है आपकी समता साधना को ।

- ***वर्षों के दीर्घ संयम पर्याय के बाद भी***
  जीवन में समता आना बहुत ही कठिन है ।

- ***छुटपुट उपसर्गों को सहना,***
  तो भी आसान है, परंतु
  मरणांत उपसर्ग में
  लेश भी कुपित नहीं होना
  बहुत ही कठिन साधना है ।

- एक ही दिन के दीक्षित होने पर भी
  गजसुकुमाल मुनिवर ने
  मरणांत उपसर्ग में जो
  समता दिखलाई,
  जिसके फलस्वरूप वे
  एक ही दिन के चारित्र पर्याय में
  समस्त घाति-अघाति कर्मों के
  बंधनों से मुक्त होकर
  शाश्वत पद के भोक्ता बन गए ।

48. गज सुकुमाल

उपसर्गान् सहमानो, जनः प्राणान्तकारकान् ।
लभते गजसुकुमाल कुमारस्तु यतीशवत् ।।

एक बार नेमिनाथ प्रभु विहार करते हुए द्वारिका में पधारे । उस समय देवकी के छह पुत्र मुनि, दो-दो के संघाटक के रूप में देवकी के घर क्रमशः गोचरी हेतु आए । देवकी ने प्रथम संघाटक मुनि को गोचरी बहोराई...फिर दो मुनि आए...उनको भी गोचरी बहोराई...फिर दो मुनि आए, उन मुनियों को देखकर देवकी ने सोचा, ``ये दो मुनि वापस बारबार गोचरी हेतु क्यों आते हैं ? क्या इन्हें दिशा-भ्रम हो गया है ? क्या इस नगरी में अन्यत्र भिक्षा नहीं मिलती है ?''

मुनियों ने कहा-``हमें न तो दिशाभ्रम हुआ है और न ही हम पुनः पुनः आ रहे हैं । हम छह भाई हैं, हमारी रूप-सम्पत्ति व आकृति एक समान है । भद्दिलपुर की श्राविका सुलसा के हम छह पुत्र हैं । नेमिनाथ प्रभु की देशना श्रवण कर हमने दीक्षा स्वीकार की है और छठ के पारणे में हम क्रमशः दो-दो मुनि बहोरने के लिए आए हैं ।''

मुनियों की बात सुनकर देवकी सोचने लगी-``अहो ! ये छह मुनि कृष्ण की आकृति जैसे ही क्यों दिखाई देते हैं ? इनमें लेश भी अन्तर नहीं है । अहो ! अतिमुक्तक मुनि ने कहा था कि तुझे आठ पुत्र होंगे । क्या ये मेरे ही तो पुत्र नहीं हैं ?'' इस प्रकार विचार कर वह दूसरे दिन नेमिनाथ प्रभु के पास गई और उसने अपने दिल की बात कही ।

प्रभु ने कहा-``हे देवकी ! ये छह मुनि तुम्हारे ही पुत्र हैं । हरिनैगमेषी देव ने तुम्हारे उत्पन्न बालक सुलसा के पास रख दिये थे ।'' यह बात सुनकर देवकी के स्तनों में दूध भर आया । उसने छह मुनियों की पुनः भावपूर्वक वन्दना की और बोली, ``मेरे पुत्रत्व को प्राप्त कर, आपने दीक्षा स्वीकार की, यह मेरे लिए अत्यन्त ही आनन्द की बात है, परन्तु अफसोस है कि मैं आपको क्रीड़ा नहीं करा सकी ।''

नेमिनाथ प्रभु ने देवकी को कहा-``हे देवकी ! तू खेद न कर । यह तो पूर्व जन्म के कर्म का ही फल है । गत जन्म में तुमने शोक्य स्त्री के 7 रत्नों की चोरी कर ली थी, वह जब रोने लगी तब तुमने एक रत्न वापस दे दिया था । इसी का यह फल है ।'' अपने पूर्वभव को सुनकर देवकी अपने पाप का पश्चात्ताप करती हुई घर आई ।

गजसुकुमाल का जन्म व दीक्षा

देवकी को उदास देखकर श्रीकृष्ण ने उसका कारण पूछा । देवकी ने कहा-``अफसोस है कि मैं सात-सात पुत्रों की जननी होने पर भी, एक भी पुत्र को स्तनपान न करा सकी । धन्य है उन पशुओं को, जो अपनी सन्तानों को प्रेम दे सकते हैं ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``माताजी ! आप चिन्ता न करें, सब कुछ अच्छा होगा ।''

श्रीकृष्ण ने हरिणैगमेषी देव की आराधना की । देव ने कहा-``देवकी को पुत्र होगा, किन्तु वह युवावस्था में ही दीक्षा स्वीकार करेगा ।''

कुछ समय बाद हाथी के स्वप्न से सूचित देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम गजसुकुमाल रखा गया । यौवन वय प्राप्त होने पर द्रुमक राजा की पुत्री प्रभावती और सोमशर्मा ब्राह्मण की पुत्री सोमा के साथ उसका लग्न हो गया ।

नेमिनाथ प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण कर गजसुकुमाल ने दीक्षा स्वीकार ली और वे मुनि श्मशान भूमि में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे ।

इधर सोमशर्मा ब्राह्मण ने गजसुकुमाल मुनि को कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े देखा । उन्हें देखते ही उसको गुस्सा आ गया-``अहो ! इसने मेरी पुत्री का जीवन बर्बाद कर दिया ।'' गुस्से में आकर उसने मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाल बनाकर, उसमें धधकते हुए अंगारे डाल दिए । अत्यन्त समताभाव में लीन बने गजसुकुमाल मुनि को केवलज्ञान हो गया और वे सर्व कर्मों से मुक्त बनकर मोक्ष में चले गए ।

प्रातःकाल श्रीकृष्ण, नेमिनाथ प्रभु की वन्दना के लिए चल पड़े । उन्होंने प्रभु को पूछा, -``गजसुकुमाल मुनि कहाँ हैं ?''

प्रभु ने कहा, ``वे तो मोक्ष चले गए हैं ।'' ``कब-कैसे ?'' कृष्ण ने पूछा ।

प्रभु ने सोमशर्मा पुरोहित के उपसर्ग की बात कही, जिसे सुनकर कृष्ण एकदम मूर्च्छित हो गए । होश आने पर बोले, ``मुनि हत्यारे को मैं कैसे पहिचानूंगा ?''

प्रभु ने कहा, ``सोमशर्मा पर कोप करना उचित नहीं है । उसके उपसर्ग से तो गजसुकुमाल मुनि शीघ्र मोक्ष पा सके हैं...फिर भी तुम्हारे नगर-प्रवेश करते समय जो स्वतः मस्तक फटने से मर जाएगा, उसे मुनि-हत्यारा समझना ।''

श्रीकृष्ण ने गजसुकुमाल मुनि का अग्नि-संस्कार किया । उसके बाद वे नगर में जाने लगे । श्रीकृष्ण को देखकर सोमशर्मा ब्राह्मण एकदम घबरा गया । मस्तक फट जाने से उसकी उसी समय मृत्यु हो गई । श्रीकृष्ण ने उसके शव को गिद्धों के पास रखवा दिया ।

गजसुकुमाल का निर्वाण सुनकर वसुदेव के नौ भाइयों ने, शिवादेवी आदि अनेक स्त्रियों ने तथा श्रीकृष्ण के अनेक पुत्र-पुत्रियों ने दीक्षा स्वीकार कर ली । देवकी व रोहिणी को छोड़ वसुदेव की अन्य स्त्रियों ने भी दीक्षा स्वीकार कर आत्मकल्याण किया ।

49. अवंति सुकुमाल मुनि

एक छोटे से निमित्त को प्राप्त कर
जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा अपने पूर्व भव को जानकर
अवंति सुकुमाल एक ही रात्रि में देवांगना जैसी
32 स्त्रियों को त्यागकर संयम पथ के पथिक बन गए ।

- और उसी रात्रि में
  मरणांत कष्टों को भी
  समतापूर्वक सहन करने के
  दृढ़ संकल्प के साथ
  श्मशान भूमि में चले गए ।

- जिस काया पर
  जीवात्मा को सबसे अधिक
  राग होता है
  उसी काया की माया को
  उन्होंने इस प्रकार उतार दिया कि वे
  एक ही रात्रि में
  देवगति को प्राप्त कर गए ।

49. अवंति सुकुमाल मुनि

व्याघ्रादिमर्त्य विहितानुपसर्गान् बहून् दृढान् ।
प्राप्नोति चिन्तितं स्थानमवन्ती सुकुमालवत् ।।

भारत देश !

उज्जयिनी नगरी !!

भद्र सेठ ! भद्रा सेठानी !!

एक शुभ दिन नलिनीगुल्म विमान में एक पुण्यशाली देवात्मा का आयुष्य पूर्ण हुआ...और भद्रा सेठानी की कुक्षि में उस देवात्मा का अवतरण हुआ ।..उसी समय भद्रा माता ने शुभ स्वप्न देखा । धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा...और एक शुभ दिन भद्रा सेठानी ने एक अत्यंत ही तेजस्वी पुत्र-रत्न को जन्म दिया ।

बालक का नामकरण किया गया-अवंतिसुकुमाल । धीरे-धीरे अवंतिसुकुमाल बड़ा होने लगा । यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही उसने पुरुषों की समस्त 72 कलाओं में निपुणता हासिल कर ली...इतना ही नहीं, धर्मकला में भी वह निपुण हुआ । देवांगनाओं जैसी 32 नवयौवना कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ ।

एक बार आर्य सुहस्ती म. पृथ्वीतल को पावन करते हुए अवंति में पधारे और भद्र सेठ के द्वारा दी हुई वसति में ठहरे । रात्रि के समय में आचार्य भगवंत नलिनीगुल्म विमान अध्ययन का पुनरावर्तन करने लगे । उस समय अवंतिसुकुमाल पास ही के भवन में बैठा हुआ अपनी पत्नियों के साथ वार्ता-विनोद कर रहा था ।

आचार्य भगवंत की स्वाध्याय-ध्वनि के शब्द अवंतिसुकुमाल के कानों में आए और वह सोचने लगा, ``अहो ! आचार्य भगवंत जिसका वर्णन कर रहे हैं...वह दृश्य तो मैंने कहीं देखा है'' इस प्रकार विचार करते हुए उसे

तत्क्षण जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । उसे अपना पूर्व भव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा ।

उसे लगा, **'अहो ! गत भव में मैं इसी नलिनी गुल्म विमान में देव के रूप में था । अहो ! वहाँ के सुख और यहाँ के सुख में कितना बड़ा अंतर है ! वहाँ के सुख मेरु-तुल्य हैं तो यहाँ के सुख सरसों जितने ही हैं ।'** इस प्रकार विचार कर वह उसी समय आचार्य भगवंत के पास आकर अत्यंत ही विनय पूर्वक बोला, ``हे भगवंत ! आप जिस नलिनीगुल्म विमान का वर्णन कर रहे हो तो क्या आप उस विमान में से आ रहे हैं ?'' आचार्य भगवंत ने कहा, ``नहीं ! हम तो श्रुत (शास्त्र) के बल से उस विमान का वर्णन कर रहे हैं ।''

``प्रभो ! मैं उसी देवविमान में से च्यवकर के आया हूँ-जातिस्मरण ज्ञान से मुझे उस विमान के सुख प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं...अब मुझे यहाँ के सुख पसंद नहीं हैं, यहाँ के सुख मुझे तुच्छ प्रतीत हो रहे हैं । अतः मैं यहाँ रहने में समर्थ नहीं हूँ । पुनः वहाँ जाने के लिए मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ...आप मुझे दीक्षा प्रदान करें ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``महानुभाव ! **लोहे के चने चबाना सरल है किंतु संयम का पालन दुष्कर है ।''**

अवंतिसुकुमाल ने कहा, **``प्रभो ! प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए मेरा मन अत्यंत ही उत्कंठित बना हुआ है...मैं दीर्घकाल तक संयमपालन करने में असमर्थ हूँ, अतः दीक्षा अंगीकार कर तुरंत ही अनशन व्रत स्वीकार कर लूंगा जिससे अल्पकाल के कष्टों से ही मेरा कार्य सिद्ध हो जाएगा ।''**

गुरुदेव ने कहा, ``यदि दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा है तो अपनी माता व पत्नियों की सहमति लेकर आ जाओ ।''

अवंतिसुकुमाल ने जाकर अपनी माता व पत्नियों से बात की...परन्तु अनुमति नहीं मिलने पर उसने अपने आप ही दीक्षा अंगीकार कर ली ।

साधु-वेष अंगीकार कर वह आचार्य भगवंत के पास आया । उसके साधुवेष को देख आचार्य भगवंत ने उसे दीक्षा प्रदान कर दी । तत्पश्चात् दीर्घकाल तक कष्ट सहन करने में असमर्थ होने के कारण तत्काल गुरुदेव की अनुज्ञा लेकर अनशन व्रत भी स्वीकार कर लिया और वहाँ से निकलकर श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हो गए ।

पूर्व भव की स्त्री, जो मरकर स्यालिनी बनी थी, वह वहाँ पर आ गई और वैर का बदला लेने के लिए अवंतिसुकुमाल पर भयंकर उपसर्ग करने लगी ।

सर्व प्रथम वह पैर का भाग खाने लगी उसके बाद वह अपने बच्चों सहित अवंतिसुकुमाल के पेट आदि भाग को खाने लगी ।

इस प्रकार मरणांत उपसर्ग होने पर भी अवंतिसुकुमाल अपने शुभ-ध्यान से लेश भी चलित नहीं हुआ । अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त कर अवंतिसुकुमाल मुनि नलिनीगुल्म विमान में उत्पन्न हुए । प्रातःकाल में देवताओं ने आकर अवंतिसुकुमाल मुनि का महोत्सव किया ।

इधर प्रातःकाल में अवंतिसुकुमाल को नहीं देखने पर उसकी पत्नियों ने आकर आचार्य भगवंत को पूछा । अपने ज्ञानोपयोग द्वारा उसी रात्रि में अवंतिसुकुमाल मुनि के ऊपर हुए भयंकर मरणांत उपसर्ग, मृत्यु और नलिनी गुल्म विमान में उत्पत्ति आदि को जानकर आचार्य भगवंत ने वह सब बात उन स्त्रियों को कही ।

उन स्त्रियों ने घर आकर वह बात भद्रामाता को कही । इस बात को सुनकर भद्रा माता अपनी पुत्रवधुओं के साथ श्मशान में गई और वहाँ पर अपने पुत्र के मृत-कलेवर को देखकर एकदम करुण कल्पांत रुदन करने लगी...उसके बाद अवंतिसुकुमाल मुनि के देह की अंतिम क्रिया की गई ।

पुत्र-वियोग की वेदना से प्रतिबोध को प्राप्त भद्रा माता भी दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हो गई । भद्रा माता की इस पवित्र भावना को जानकर अवंतिसुकुमाल की सभी स्त्रियाँ भी दीक्षा के लिए तैयार हो गईं । आखिर एक गर्भवती स्त्री को छोड़कर भद्रामाता ने अन्य 31 पुत्रवधुओं के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

समय व्यतीत होने पर उस स्त्री ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया । धीरे-धीरे वह पुत्र बड़ा हुआ । उसी पुत्र ने अवंतिसुकुमाल पिता मुनि की याद में अवंतिनगरी के भूषण समान भव्य जिनमंदिर का निर्माण किया, उसमें पार्श्वनाथ प्रभु की स्थापना की गई । आगे जाकर यह मंदिर अवंति पार्श्वनाथ के नाम से प्रख्यात हुआ ।

स्यालिनी के भयंकर मरणांत उपसर्ग में भी समभाव को धारण करने वाले अवंति सुकुमाल महामुनि को कोटि-कोटि वंदना ।

50. सुपात्रदान का प्रभाव धन्यकुमार

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर शालिभद्र के साथ
धन्नाजी धन्यकुमार का भी नाम
बड़े आदर से लिया जाता है ।
❑ सुपात्रदान के प्रभाव से ही वे
सम्राट् श्रेणिक से भी बढकर
अमाप-संपत्ति के मालिक बने थे ।
❑ आपकी कथनी और करणी में
कोई फर्क नहीं था ।
``बोलना सरल है, करना कठिन है-''
पत्नी के कटाक्ष भरे इन शब्दों को सुनकर
आप अपनी विशाल संपत्ति,
देवांगना जैसी आठ पत्नियों और
विशाल परिवार को
एक ही झटके में छोड़कर
त्याग-मार्ग के मुसाफिर बन गए थे ।
❑ फूल जैसी आपकी काया होने पर भी
वैभारगिरि पर्वत की धगधगाती शिलाओं पर
शालिभद्रजी के साथ आपने **पादपोपगमन** अनशन-व्रत
स्वीकार किया था ।
देह के ममत्व का विसर्जन कर
आप सर्वार्थसिद्धि विमान के
अधिपति बन गए थे,
बस, अब एक अवतार लेकर
शाश्वत पद के भोक्ता बन जाएंगे ।

❑ पूर्व भव में
निष्काम भाव से की गई पुण्यानुबंधी
दान-धर्म की साधना के फलस्वरूप
धन्यकुमार
अमाप सम्पत्ति और समृद्धि के
मालिक तो बने ही,
साथ में
एक ही झटके में आपने
उस अमाप संपत्ति का
त्याग भी कर दिया ।

- फूलों की शय्या पर सोनेवाले आपने
  वैभार गिरि की
  धगधगायमान शिलाओं पर
  अनशन भी कर लिया ।
  एक ओर दिव्य सुखों का भोग
  और
  दूसरी ओर कठोरतम साधना का
  आपके जीवन में
  आश्चर्यकारी संयोग खडा हुआ था ।

50. धन्यकुमार

पात्रे ददाति यो वित्तं, नित्यं शक्त्या सुभक्तितः ।
सौख्यानां भाजनं स स्याद्यथा धन्योऽभवत् पुरा ।।

1. जन्म

भरतक्षेत्र !

प्रतिष्ठानपुर नगर !

उस नगर में अत्यंत ही पराक्रमी **जितशत्रु** नाम का राजा राज्य करता था ।

उसी नगर में न्याय व नीति से व्यवसाय करनेवाला **धनसार** नाम का व्यापारी रहता था । उस व्यापारी के दान, शील आदि गुणों से युक्त शीलवती नाम की पत्नी थी । वह नाम से ही **शीलवती** नहीं थी बल्कि उसका जीवन भी शील व सदाचार से पवित्र था ।

गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए धनसार के तीन पुत्र पैदा हुए जिनके नाम क्रमशः **धनदत्त, धनदेव** व **धनचंद्र** रखे गए । धीरे-धीरे वे पुत्र बड़े होने लगे । अनुक्रम से **धनश्री, धनदेवी** और **धनचंद्रा** नाम की श्रेष्ठी-कन्याओं के साथ धनदत्त आदि का पाणिग्रहण हुआ ।

धनदत्त आदि तीनों पुत्र अपने पिता के व्यवसाय आदि की जवाबदारी को अच्छी तरह से वहन करने लगे । धनसार धर्मकार्य में मग्न रहने लगा ।

एक शुभ दिन शीलवती ने चौथे पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

जब उस बालक की नाल को जमीन में गाड़ने लगे तो उस जमीन में से सुवर्ण मुद्राओं से भरा हुआ घड़ा निकला । यह संपत्ति देख पिता के आश्चर्य का पार न रहा ।

धनसार ने सोचा, ``जिस पुत्र के जन्म के साथ ही इतनी अपार

संपत्ति प्राप्त हुई है तो अवश्य ही यह पुण्यशाली आत्मा होगी ।'' इस प्रकार विचार कर उस बालक का नाम **धन्यकुमार** रख दिया ।

दूज के चाँद की भाँति वह धन्यकुमार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा ।

जैसे ही वह बालक आठ वर्ष का हुआ, उसे शस्त्र व शास्त्र कला में निपुण बनने के लिए विद्यागुरु के पास भेज दिया गया ।

अल्पकाल में ही वह धन्यकुमार सभी विद्याओं में निपुण हो गया ।

काव्य, कोश, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष, गीत-संगीत, नृत्य आदि विविध कलाओं में वह निपुण बन गया ।

प्रकृति से अत्यंत ही शांत व सौम्य ऐसे धन्य कुमार ने यौवन वय में प्रवेश किया । चंद्र की सोलह कलाओं की भाँति उसका रूप-सौंदर्य एकदम खिल उठा ।

धन्यकुमार के पुण्य प्रभाव से धनसार श्रेष्ठी के घर में धन-धान्य, मान-सम्मान आदि की अभिवृद्धि होने लगी । धन्यकुमार के गुणों को देख सैकड़ों लोग उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे ।

एक दिन अपने समग्र परिवार के सामने धनसार अपने छोटे पुत्र की प्रशंसा करते हुए कहने लगा, **''जिस दिन से इस बालक का अपने घर में आगमन हुआ है, उसी दिन से अपने घर में लक्ष्मी आदि की वृद्धि हुई है । लगता है पूर्व जन्म के भाग्योदय से अपने घर में यह कल्पवृक्ष पैदा हुआ है ।''**

धन्यकुमार की ऐसी प्रशंसा सुनकर उसके तीनों बड़े भाई मन-ही-मन ईर्ष्या से जलने लगे । अंतःकरण में पैदा हुई उस ईर्ष्या के कारण एक दिन वे भाई मिलकर पिता के पास आए और बोले, ***''पिताजी ! रात-दिन के उजागरे और मेहनत करके धन तो हम कमाते हैं । देश-विदेश में माल खरीदने-बेचने की मेहनत हम करते हैं...ठंडी-गर्मी हम सहन करते हैं-पैसों की वसूली के लिए हम जाते हैं, आपको हमारी कुछ भी कदर नहीं है और आप धन्य की ही प्रशंसा करते थकते नहीं हैं ।***

धन्य तो अभी खेलने-कूदने में ही मग्न है । व्यापार-धंधे में वह कुछ भी ध्यान नहीं देता है ।

हे पिताजी ! आप उसकी प्रशंसा करके परोक्ष रूप से तो हमको ही नीचा दिखला रहे हो । शास्त्र में भी तो पुत्र की प्रत्यक्ष प्रशंसा करना निषिद्ध कहा है ।''

अपने पुत्रों के इन ईर्ष्यापूर्ण वचनों को सुनकर पिता ने कहा-``अरे पुत्रो ! तुम धन्य से क्यों जलते हो ? गुण-दोष की परीक्षा करने में मैं निपुण हूँ । मैंने तो उसके वास्तविक गुणों की प्रशंसा की है ।''

``गुणवान के गुणों की प्रशंसा में जो मौन रहता है, उसकी वाणी भी निष्फल मानी जाती है ।

``बेटो ! याद रखना, लक्ष्मी सिर्फ मेहनत से नहीं, बल्कि पुण्य से मिलती है ।

``सरोवर में भरपूर पानी होने पर भी व्यक्ति अपने घड़े जितना ही पानी ले पाता है । इसी प्रकार चाहे जितना पुरुषार्थ किया जाय तो भी व्यक्ति अपने भाग्य के अनुसार ही धन प्राप्त करता है ।''

2. भाग्य-परीक्षा

एक बार धनसार ने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर कहा, ``मैं तुम सबको 300-300 स्वर्ण मुद्राएँ देता हूँ-इन मुद्राओं से व्यापार कर...उस व्यापार से प्राप्त लाभ से परिवार को भोजन कराओ ।''

पहले दिन धनदत्त 300 सोना मोहर लेकर व्यापार करने गया । परंतु अत्यधिक श्रम करने पर भी उसे बहुत थोड़ा ही मुनाफा हुआ । उसने दाल और तैल से अपने परिवार को भोजन कराया ।

दूसरे दिन धनदेव और तीसरे दिन धनचंद्र ने भी व्यापार किया, परंतु उन्हें भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ । बड़ी मुश्किल से सादे भोजन से उन्होंने अपने परिवार को भोजन कराया ।

चौथे दिन धन्यकुमार के भाग्य की परीक्षा थी । पिता ने उसे भी 300 स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान कीं ।

प्रातःकाल की मधुरवेला में धन्यकुमार अपने घर से निकला ! उसे शुभ शकुन हुए ।

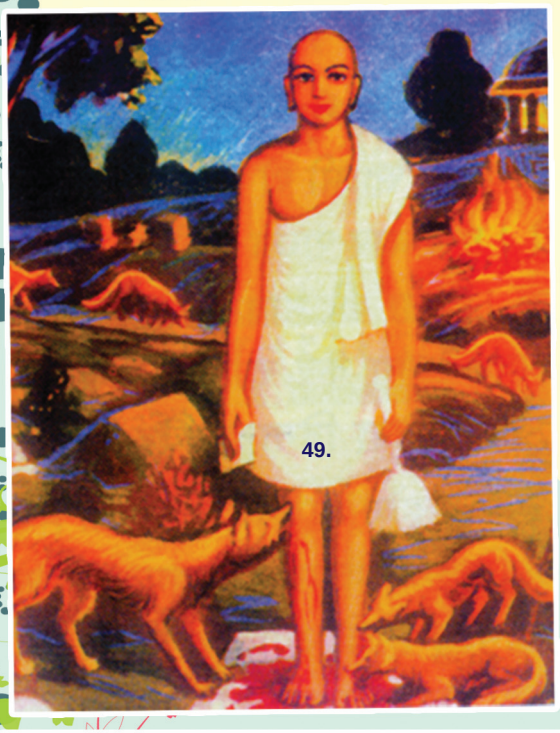

(49) अवंति सुकुमाल मुनि-
पृष्ठ नं. 20

(50) धन्यकुमार-पृष्ठ नं. 24

श्री धन्नाजी की सज्झाय

चरण कमल नमी वीरनां रे, पूछे श्रेणिकराय रे, मुनि स्युं मन मान्यो.
चउद सहस मुनि ताहरे, अधिको कोण कहेवाय रे. मुनि० ॥१॥

जिन कहे अधिको म्हारे रे, धन धन्नो अणगार रे. मुनि०
रिद्धि छती जेणे परिहरी रे, तजी तरूणी परिवार रे. मुनि० ॥२॥

सिंह तणी पेरे निकली रे, पाळे व्रत सिंह समान रे मुनि०
क्रोध लोभ माया तजी रे, दूर कर्यो अभिमान रे मुनि० ॥३॥

मुज हाथे संयम ग्रही रे, पाळे निरतिचार रे मुनि०
छट्ठ छट्ठ आंबिल पारणे रे, लीये निरस आहार रे. मुनि० ॥४॥

वंछे न कोई मानवी रे, तेवो लीये आहार रे, मुनि०
चालतां हाड खडखडे रे, जेम खाखराना पान रे. मुनि० ॥५॥

शकट भर्युं जेम कोचले रे, तिम धन्ना मुनिनुं वान रे, मुनि०
पंच समिति त्रण गुप्तिशुं रे, रंगे रमे निशदिन रे. मुनि० ॥६॥

सर्वार्थ सिद्ध सुख पामीयो रे, धन धन्नो अणगार रे, मुनि०
नवमें अंगे जेहनो रे, वीरे कह्यो अधिकार रे. मुनि० ॥७॥

पंडित **जिनविजय** तणो रे, नमे तेहने वारं वारं रे. मुनि०
प्रातः उठीने तेहनुं रे, नाम लीजे सुविचार रे. मुनि० ॥८॥

आगे चलकर वह एक सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया । उस समय वह सेठ नौकर द्वारा दी गई चिट्ठी को हाथ में लेकर पढ़ रहा था ।

उस पत्र में लिखा था ।

''प्रतिष्ठानपुर शहरे...महाशुभ स्थाने प्रिय मित्र महेश्वर !''

तुम्हारे स्नेही मित्र सुभद्र का सादर प्रणाम !

विशेष समाचार यह है कि बहुत बड़ा व्यापारी किराणे की अमाप सामग्री लेकर दूर देश से आया है, उसे वापिस जल्दी लौटना है । वह थोड़ा सा मुनाफा लेकर अपना सारा माल बेचना चाहता है, अतः तुम जल्दी आकर उससे सौदा कर लो । यह पत्र मिलते ही जल्दी आ जाना, देरी मत करना ।''

सेठ हाथ में लेकर यह भोजपत्र पढ़ रहे थे । इसी बीच उल्टे अक्षरों को पढ़ने में कुशल ऐसे धन्यकुमार ने भी वह पत्र पढ़ लिया ।

पत्र पढ़ने के बाद सेठ ने सोचा, ''अभी क्या जल्दी है, दोपहर में भोजन करके फिर चला जाऊंगा ।''

इधर धन्यकुमार ने सोचा, ''सेठ के मित्र ने बुलावा भेजा है, परंतु ये जाने के लिए तैयार नहीं हैं तो क्यों न मैं ही पहले जाकर माल खरीद लूँ ।'' इस प्रकार विचारकर धन्यकुमार सीधा ही सार्थवाह के पास पहुँच गया और सारे माल की ऊपर-ऊपर से परीक्षा कर सब माल खरीद लिया और उस व्यापारी को कुछ रकम अग्रिम देकर सारे माल पर अपना कब्जा कर लिया ।

काफी समय बीतने के बाद जब महेश्वर सेठ माल खरीदने के लिए वहाँ पर आया तो उस सेठ ने कहा, ''वह सारा माल तो मैंने धन्यकुमार को बेच दिया है, अतः उस माल पर अब मेरा कोई अधिकार नहीं रहा है, यदि वह माल आपको चाहिए तो आप धन्यकुमार के पास से खरीद सकते हैं ।''

महेश्वर सेठ ने धन्यकुमार को एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ अतिरिक्त प्रदान कर सार्थवाह का सब माल मूल्य देकर खरीद लिया ।

बिना कुछ श्रम किए धन्यकुमार को एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का फायदा हो गया ।

एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ लेकर धन्यकुमार अपने घर आया, उसने वह सारा धन पिता के चरणों में अर्पित कर दिया और सारी घटना सुना दी ।

धन्यकुमार की बुद्धिमत्ता देख उसके पिता अत्यंत ही खुश हो गए ।

धन्यकुमार ने हजारों स्वर्ण मुद्राएँ खर्चकर अपने परिवार एवं ज्ञाति-जनों को सरस भोजन कराया । सभी लोग धन्यकुमार की भरपूर प्रशंसा करने लगे ।

धन्य के बड़े भाइयों की पत्नियाँ भी धन्यकुमार की कुशलता की प्रशंसा करने लगीं ।

धन्यकुमार की चारों ओर हो रही प्रशंसा को सुनकर उसके तीनों बड़े भाई ईर्ष्या से जलने लगे ।

卐 卐 卐 卐 卐

एक बार पुनः पिता ने उन पुत्रों के भाग्य की परीक्षा करने के लिए 64-64 स्वर्ण मुद्राएँ प्रदान कीं ।

धनदत्त आदि तीनों भाइयों का भाग्य ही कमजोर होने से उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं हुआ ।

धन्यकुमार भी 64 स्वर्ण मुद्राएँ लेकर व्यापार करने के लिए बाजार में गया ।

शुभ शकुन देखकर वह पशुओं के बाजार में चला गया । वहाँ पशुओं का क्रय-विक्रय हो रहा था ।

पशुओं के लक्षण में निष्णात ऐसे धन्यकुमार ने पाँच माषा सोना देकर एक लक्षणवंत भेड़ खरीद लिया । उस भेड़ को लेकर धन्यकुमार अपने घर की ओर लौट रहा था, तभी बीच मार्ग में भेड़ों की लड़ाई का प्रोग्राम चल रहा था ।

जैसे ही धन्यकुमार अपने भेड़ को लेकर वहाँ आया, उसी समय वहाँ खड़े एक राजकुमार ने धन्य को ललकारते हुए कहा, ``धन्यकुमार ! तुम्हारे भेड़ के साथ मेरे भेड़ की लड़ाई कर । जो हारेगा, वह जीतनेवाले को एक लाख सोनामोहर देगा ।''

धन्यकुमार ने यह शर्त मंजूर कर ली ।

राजकुमार व धन्यकुमार के भेड़ों के बीच युद्ध हुआ और उस युद्ध में धन्यकुमार का भेड़ जीत गया ।

पूर्व शर्त के अनुसार धन्यकुमार को एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ मिल गईं ।

राजकुमार ने सोचा, ``धन्यकुमार तो व्यापारी पिता का पुत्र है, वह उस भेड़ को कैसे सँभालेगा, क्यों न मूल्य देकर मैं ही इसे खरीद लूँ ।''

राजकुमार ने धन्य से बात की । धन्यकुमार ने उस भेड़ का मूल्य एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ कहा ।

राजकुमार ने धन्यकुमार को 1 लाख स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं ।

दो लाख स्वर्ण मुद्राएँ लेकर धन्यकुमार अपने घर आया । उसने वह सारा धन पिता को सौंप दिया ।

धनसार धन्यकुमार की खूब प्रशंसा करने लगे । धन्य की इस प्रशंसा को सुनकर उसके तीनों भाई ईर्ष्यावश होकर मन-ही-मन खूब जलने लगे ।

ईर्ष्याग्रस्त धनदत्त आदि ने एक बार पुनः अपने पिता को कहा, ``आप धन्य की प्रशंसा करते थकते नहीं हैं, परंतु धन्यकुमार ने भेड़ की लड़ाई में जीतकर जो पैसा कमाया है, वह तो एक प्रकार का जुआँ है, अतः उसमें उसकी कोई बुद्धिमत्ता नहीं है । बुद्धि की सच्ची परीक्षा तो व्यापार से होती है ।''

धनदत्त की यह बात सुनकर धनसार ने पुनः चारों पुत्रों की परीक्षा के लिए प्रत्येक को 100 स्वर्ण मुद्राएँ दीं ।

लाभांतराय कर्म के उदय के कारण धनदत्त आदि को व्यापार में कुछ भी लाभ नहीं हुआ, लाभ होना तो दूर रहा, वे अपना मूलधन ही खो बैठे ।

इधर धन्यकुमार शुभ शकुन देखकर लकड़ी के बाजार में गया ।

इसी नगर में धनप्रिय नाम का अत्यंत ही समृद्ध परंतु अत्यंत ही कृपण सेठ रहता था । उसके पास अमाप संपत्ति थी, परंतु वह कभी भी किसी को एक पैसे का भी दान नहीं करता था । उसने अपने धन से महामूल्यवान रत्न खरीदे और उन रत्नों को उसने अपने सोने के पलंग के पोलाण में भर दिए ।

मृत्युशय्या पर पड़े होने पर भी उसकी धन की आसक्ति अत्यधिक थी, वह उस पलंग से कभी भी अलग नहीं होता था ।

एक बार उसके बेटे ने उसकी अंतिम इच्छा पूछी तो उसने कहा, ``मेरी मृत्यु के बाद मुझे इस पलंग के साथ जला देना ।''

एक दिन धनप्रिय की मृत्यु हो गई । उसकी इच्छानुसार उसके पुत्र इसे पलंग सहित श्मशान में ले गए ।

श्मशान में रहे चांडाल ने उस पलंग की माँग की । आखिर धनप्रिय के पुत्रों ने वह पलंग चांडाल को भेंट दे दिया ।

चांडाल उस पलंग को बेचने के लिए लकड़ी बाजार में गया ।

मृतक के पलंग को जानकर कोई भी व्यक्ति उस पलंग को खरीदने के लिए तैयार नहीं हुआ ।

आखिर पलंग की कुछ परीक्षा कर धन्यकुमार ने वह पलंग खरीद लिया ।

धन्यकुमार उस पलंग को लेकर अपने घर आया । मृतक के पलंग को लाए देख धनदत्त आदि तो धन्यकुमार की मजाक करने लगे । परंतु जल्द-बाजी में जब उस पलंग को उठाकर दूसरे कमरे में ले जाने लगे तो उस पलंग का एक भाग टूट गया ।

पलंग के टूटते ही धनप्रिय के छिपाए हुए वे रत्न बाहर आ गए ।

तेजस्वी रत्नों को देख सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

सभी लोग धन्यकुमार के भाग्य की प्रशंसा करने लगे ।

धन्यकुमार ने भी याचकों आदि को खूब दान देकर उनका दारिद्र्य सदा के लिए दूर कर दिया ।

3. पुण्य प्रभाव

धन्यकुमार के तीनों भाई मन में ईर्ष्या से सुलग रहे थे, फिर भी लोक-लज्जा से वे धन्यकुमार के साथ दिखावटी अच्छा व्यवहार रखते थे ।

एक बार प्रतिष्ठानपुर नगर के बाहर समुद्र किनारे पर पवन के प्रवाह से खींचा हुआ बहुत बड़ा जहाज आ गया । उस जहाज के मालिक की बीच मार्ग में ही मृत्यु हो गई थी, उस जहाज का अन्य कोई मालिक नहीं था, अतः उस जहाज में रहे यात्रिकों के एक प्रतिनिधि मंडल ने आकर जितशत्रु राजा

को निवेदन करते हुए कहा, ``राजन् ! हमारे इस जहाज का मालिक मर चुका है, अतः उसका अन्य कोई मालिक नहीं होने से उसके मालिक आप हो । उस जहाज में रही हमारी वस्तुएँ हमें प्रदान कर अन्य माल-सामान को आप अपने कब्जे में कर सकोगे ।''

राजा के आदेश से राजा के प्रतिनिधि अधिकारी समुद्र तट पर पहुँच गए । जहाज में जो माल अन्य यात्रिकों का था, वह सब उन्हें सौंप दिया और बाकी सब माल समुद्रतट पर उतरवा दिया ।

राजा ने व्यापारी-प्रतिनिधि मंडल को बुलाकर कहा, ``जहाज में जो माल आया है, उसे योग्य मूल्य देकर खरीद लो और उसका मूल्य राज भंडार में जमा करा दो ।''

राजा के आदेशानुसार अनेक व्यापारी माल खरीदने के लिए समुद्र-तट पर आ गए । उस समय समुद्रतट पर आने के लिए धनसार श्रेष्ठी को भी आमंत्रण मिला ।

आमंत्रण मिलते ही धनसार ने अपने तीन बड़े पुत्रों को बुलाकर कहा, ``तुम समुद्रतट पर जाकर योग्य माल खरीद लो ।''

पिता की यह बात सुनकर ईर्ष्याग्रस्त बने उन तीनों ने कहा, ``पिताजी ! आप हमें क्यों भेजते हो ? आप तो हर बार धन्य की ही प्रशंसा करते रहते हो तो उसे क्यों नहीं भेजते हो ? उसकी बुद्धि की परीक्षा भी हो जाएगी ।''

पुत्रों की यह बात सुनकर धनसार ने धन्यकुमार को बुलाया और उसे समुद्रतट पर जाने के लिए आज्ञा की ।

पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर धन्यकुमार तत्क्षण समुद्रतट पर जाने के लिए तैयार हो गया ।

थोड़ी ही देर में धन्यकुमार समुद्रतट पर पहुँच गया ।

वहाँ बहुत से व्यापारी इकट्ठे हुए थे । सभी व्यापारी विदेश से आए मूल्यवान सामान को मूल्य देकर खरीदने लगे ।

लगभग अन्य सब सामान अन्य-अन्य व्यापारियों ने खरीद लिया...परंतु उस मूल्यवान सामान के साथ जो कुछ मिट्टी जैसी वस्तु से भरे हुए घड़े थे, उन्हें खरीदने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ ।

सभी व्यापारियों ने उन घड़ों को देखा परंतु उनमें से कोई भी उस

मिट्टी के रहस्य को पहिचान नहीं पाया । सभी ने उसे मूल्यहीन माटी समझकर छोड़ दिया ।

धन्यकुमार को देखते ही उन व्यापारियों ने सोचा, ``धनसार सेठ खुद नहीं आए, उन्होंने अपने छोटे बेटे को भेजा है । यह तो बालक है, इसमें कोई विशेष बुद्धि तो है नहीं, अतः क्यों न यह मिट्टी उसके ही सिर पर डाल दें ।'' इस प्रकार परस्पर विचार-विमर्श कर एक कपटी व्यापारी ने धन्य कुमार को कहा, ``बेटा ! तू बहुत देरी से आया...अन्य सब माल तो बीक चुका है । ये मिट्टी के घड़े ऐसे ही पड़े हैं । तेरी छोटी उम्र है, व्यापार की अभी शुरुआत है, अतः क्यों न पहले सामान्य वस्तु का व्यापार कर...फिर धीरे-धीरे अन्य वस्तुओं का व्यापार करना । इसका मूल्य भी थोड़ा ही देना होगा ।''

धन्यकुमार बहुत होशियार था, वह उन घड़ों के पास गया । उसने उनकी मिट्टी अपने हाथ में ली और तत्क्षण अपनी बुद्धि से उस मिट्टी के रहस्य को समझ गया **``अहो ! यह तो बहुत ही मूल्यवान वस्तु है । ये व्यापारी उसके रहस्य को समझ नहीं पाए हैं । इस तेजुंतरी को ये लोग धूल समझ रहे हैं । इसे धूल समझकर ही मुझे पकड़ा देना चाहते हैं । लेकिन मुझे तो फायदा ही है ।''** इस प्रकार सोचकर उसने उन व्यापारियों को कहा, ``आप मुझ जैसे बालक की इतनी हितचिंता करते हो, इसके लिए आपको धन्य है ।''

इस प्रकार अपनी मधुरवाणी से उन व्यापारियों को खुश कर धन्य-कुमार मजदूरों के द्वारा उठवाकर वे सारे घड़े अपने घर ले आया ।

समुद्रतट से आए हुए मिट्टी जैसी वस्तु से भरे हुए उन घड़ों को देखकर ईर्ष्या से जल रहे उन तीनों भाइयों ने अपने पिता को कहा, ``पिताजी ! आप देख लो अपने पुत्र की होशियारी, सभी व्यापारी तो विदेश से आई मूल्यवान वस्तुएँ खरीदकर ले गए और यह धन्य मिट्टी ही उठाकर ले आया ।''

``अब तो आपको इसकी बुद्धि की परीक्षा हो गई न ।''

पिता ने भी वे मिट्टी के भरे घड़े देखे तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ । वे सोचने लगे- **``इतना होशियार यह धन्य मिट्टी भरे घड़े उठाकर क्यों लाया होगा ?''**

उन्होंने धन्य को बुलाकर पूछा, ``बेटा ! तू यह क्या ले आया है ?''

पिता के चरणों में नमस्कार कर हाथ जोड़कर धन्यकुमार ने कहा, **``पिताजी ! समुद्र तट पर जितनी भी वस्तुएँ थीं, उन सबमें सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु मिट्टी के भाव में खरीद कर ले आया हूँ...व्यापारी तो बहुत थे, परंतु कोई इस वस्तु को पहिचान नहीं पाया, अतः इसे बेकार की वस्तु समझकर उन्होंने इसे मुझे खरीदने के लिए प्रेरित किया ।**

पिताजी ! यह तो बहुत ही मूल्यवान वस्तु तेजुंतरी है । इसके स्पर्श से तो लोहा भी सोना बन जाता है । तांबे के साथ मिलाने से तांबा भी सोना हो जाता है ।''

इतना कहकर सभी के विश्वास के लिए धन्य कुमार ने उसी समय उस तेजुंतरी के द्वारा लोहे व तांबे को सोना बना दिया ।

यह दृश्य देखते ही धनसार के आश्चर्य का पार न रहा । परंतु उन तीनों भाइयों का तो मुँह उतर गया ।

धनसार ने सोचा, ``अहो ! मेरा यह छोटा बेटा कितना होशियार है !''

किसी ईर्षालु व्यक्ति ने जाकर राजा के कान फूँकते हुए कहा, ``राजन् ! धनसार के पुत्र धन्यकुमार ने अन्य सब व्यापारियों को ठगकर नगण्य मूल्य देकर बहुमूल्य तेजुंतरी अपने घर में पहुँचा दी । लोहे को सोना बनाने वाली यह तेजुंतरी तो आपके खजाने में ही शोभा देती है ।''

यह सुनकर न्यायप्रिय राजा ने सोचा, ``मैंने तो सभी व्यापारियों को मूल्य चुकाकर माल खरीदने का आदेश दिया था, अतः सभी ने मूल्य देकर जो माल खरीदा है, उस पर अब मेरा अधिकार कैसे हो सकता है ? इतने सारे व्यापारी वहाँ इकट्ठे हुए थे और वे अपनी-अपनी बुद्धि का उपयोगकर माल खरीद रहे थे । सचमुच धन्यकुमार को यह मूल्यवान वस्तु मिली है तो यह उसका सद्भाग्य है । ऐसे बुद्धिशाली को मुझे अवश्य मिलना चाहिए ।'' इस प्रकार विचार कर राजा ने धन्यकुमार को राजदरबार में उपस्थित होने के लिए आमंत्रण भेजा ।

धनसार के घर जैसे ही राजपुरुष धन्य को राजदरबार में आने के लिए कहने लगे, त्योंही धन्य के तीनों बड़े भाई मनोमन खुश हो गए और

सोचने लगे, **``राजा ने इसे बुलाया है तो जरूर इसे दंड देगा । आज तक उल्टा-सुल्टा कर जो धन इकट्ठा किया है, वह सब राजा ले लेगा ।''**

राजा के आमंत्रण को देख धनसार चिंता में पड़ गया...परंतु धन्य ने कहा, ``पिताजी ! आप लेश भी चिंता न करें, सब अच्छा होगा । राजा से मिलने के लिए तो कितनी मेहनत करनी पड़ती है, जबकि यह तो सामने से आमंत्रण मिला है । आप किसी प्रकार का भय न रखें ।''

धन्यकुमार बहुमूल्य वस्तु की भेंट लेकर राजा के पास गया । उसने राजा को अमूल्य वस्तु भेंट दी और भावपूर्वक राजा को प्रणाम किया ।

राजा ने धन्यकुमार को देखा ! धन्यकुमार के मुख पर अपूर्व तेज था । राजा उसके औचित्यपूर्ण व्यवहार आदि को देखकर खुश हो गया ।

राजा ने भी उसकी क्षेमकुशलता पूछी ।

राजा ने पूछा, ``विदेश से आए जहाज में से तुमने कुछ खरीदा या नहीं ?''

धन्य ने कहा, **``आपकी कृपा से मुझे बहुत ही मूल्यवान वस्तु की प्राप्ति हो गई ।''** इतना कहकर उसने सारी घटना विस्तार से सुना दी ।

जितशत्रु राजा धन्यकुमार की बुद्धिमत्ता जानकर खुश हो गया ।

धन्यकुमार अपनी खरीदी तेजुंतरी भी राजा को सौंपने के लिए तैयार ही था, परंतु राजा ने तो कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया ।

धन्य की उदारता व बुद्धिमत्ता से खुश हुए राजा ने मूल्यवान वस्त्र-अलंकार आदि देकर उसका बहुमान किया और कहा, ``आज से रोज तुझे राजदरबार में आना है, तुम तो मेरी राजसभा की शोभा हो ।''

इधर राजा ने अपने मंत्रियों को भी आदेश दे दिया कि राजसभा में कुछ भी निर्णय लेने के पूर्व धन्यकुमार की सलाह लेना अनिवार्य है ।

थोड़ी ही देर बाद जब खूब मान-सम्मान के साथ धन्य अपने घर पहुँचा तो उसके माता-पिता के आनंद का पार न रहा, परंतु उसके तीनों भाई तो ईर्ष्या के मारे जल ही रहे थे ।

एक बार धन्यकुमार ज्योंही राजसम्मान के साथ अपने घर लौट रहा

था, तभी नगरवासी धन्यकुमार की जी भरकर प्रशंसा कर रहे थे । नगरवासी झुक-झुक कर धन्यकुमार को प्रणाम कर रहे थे ।

उसके तीनों बड़े भाई भी अपने घर के झरोखे में से धन्यकुमार को आते हुए देख रहे थे ।

उसी समय लोग परस्पर बातें करते हुए कहने लगे, **अहो ! यह बालक छोटा होते हुए भी सभी के लिए परम आदर का पात्र बना है । वास्तव में सम्मान का कारण उम्र नहीं, लेकिन पुण्य है । तेजस्वी लोगों की वय नहीं देखी जाती है ।**

``हाथी बड़ी कायावाला होता है, लेकिन एक छोटासा अंकुश उसे वश में रखता है । एक छोटासा दीपक भयंकर अंधकार को भी नष्ट कर देता है । वज्र छोटासा होता है, लेकिन बड़े पर्वत को भी भेद डालता है ।

``इसी प्रकार धन्यकुमार छोटा होते हुए भी तेजस्वी और बलवान है । इसके तीनों भाई वय और शरीर से बड़े होने पर भी कुछ नहीं करते हैं, मात्र धन्यकुमार के पुण्य से ही अपना पेट भर पाते हैं ।''

लोकमुँह से धन्यकुमार की इस प्रशंसा को सहन नहीं कर पाने के कारण वे तीनों बड़े भाई परस्पर विचार-विमर्श करने लगे, ``जब तक धन्यकुमार जीवित रहेगा..तब तक अपना कोई भाव पूछनेवाला नहीं है । आकाश में सूर्य उगा हुआ हो तब क्या ताराओं का तेज टिक सकता है ? अतः ``यह छोटा है'' समझकर इसकी उपेक्षा करने जैसी नहीं है, बल्कि अवसर देखकर इस काँटे को दूर करने जैसा है ।

``शरीर में पैदा हुए एक छोटेसे घाव की भी उपेक्षा की जाय तो वह आगे चलकर मौत का कारण बनता है । बस, इसी प्रकार इस धन्य की भी उपेक्षा करने योग्य नहीं है ।''

बड़े भाइयों के बाह्य आचरण-व्यवहार से धन्यकुमार को भी उनके षड्यंत्र की गंध आ गई ।

एक बार बड़े भाई की पत्नी ने भी धन्यकुमार को सावधान करते हुए कह दिया, ``देवरजी ! आपके बड़े भाई आपसे ईर्ष्याग्रस्त बने हुए हैं, अतः उनसे सावधान रहना ।''

नीतिशास्त्र में ठीक ही कहा है-

''जैसे साँप क्रूर है, उसी प्रकार दुर्जन भी क्रूर है परंतु दुर्जन की क्रूरता तो साँप से भी बढ़ जाती है, क्योंकि साँप को तो मंत्र आदि के द्वारा वश में किया जा सकता है, परंतु दुर्जन को वश करना अत्यंत कठिन है ।

''साँप के दाढ़ाओं में ही जहर है, जबकि दुर्जन पुरुष के तो पूरे शरीर में जहर है ।''

अपनी भाभी के मुख से यह बात सुनकर धन्यकुमार ने सोचा, ''आग भी तभी तक रहती है, जब तक उसे ईंधन मिलता है । ईंधन मिलना बंद हो जाय तो आग भी शांत हो जाती है ।

''मेरे भाइयों को सुखी करने का अब एक ही उपाय है...''मुझे घर छोड़कर चले जाना चाहिए । मैं जब तक यहाँ रहूंगा, तब तक मेरे भाई सुख से नहीं रह पाएंगे अतः क्यों न यह घर ही छोड़ दूँ ।

''देश-विदेश में घूमने से अपनी बुद्धि-पुण्य-बल की भी परीक्षा होती है । अतः मुझे विदेश जाना ही चाहिए ।

''ठीक ही कहा है-**हाथी से हजार हाथ, घोड़े से 100 हाथ व सींग वाले पशुओं से 10 हाथ दूर रहना चाहिए । परंतु दुर्जन व्यक्तिवाले गाँव को छोड़कर ही चले जाना चाहिए । क्योंकि पशुओं से जितनी हानि नहीं होती है, उससे भी अधिक हानि दुर्जन के संग से होती है ।''**

इस प्रकार विचार कर धन्य ने गुप्त रूप से विदेश जाने की योजना बना ली ।

रात्रि में परिवार के सभी लोग गाढ़ निद्रा में सोए हुए थे । तभी अवसर देखकर धन्यकुमार साथ में कुछ भी धन लिये बिना अकेला ही खाली हाथ अपने घर से निकल गया ।

4. पुण्यशाली के पगले निधान

नीतिशास्त्र में कहा गया है कि-**यह पृथ्वी बहुत रत्नोंवाली है, परंतु वे रत्न भाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं । भाग्यहीन व्यक्ति सामने रहे रत्न को भी नहीं उठा पाता है ।**

आदमी जब चलता है, तब उसकी छाया उसके साथ चलती है । सच तो यह है कि आदमी जहाँ भी जाता है उसका पुण्य और पाप उसके साथ ही चलता है ।

रात्रि के अंतिम प्रहर में धन्यकुमार अपने घर, परिवार और गाँव को छोड़कर अकेला ही पैदल निकल पड़ा ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

दोपहर का समय था ।

धन्यकुमार अपने नगर की हद पारकर काफी दूर निकल चुका था । आकाश में सूर्य तप रहा था ।

धन्यकुमार के साथ में कुछ भी खाद्य सामग्री नहीं थी । वह अपने भाग्य के भरोसे आगे बढ़ रहा था ।

निरंतर पैदल चलने के कारण और आकाश में धूप पड़ने के कारण उसे पसीना छूट रहा था ।

उसी समय थोड़ी ही दूरी पर एक किसान सुबह से अपने खेत में हल चला रहा था । आज कोई त्यौहार का दिन होने से उसकी पत्नी रोटी शाक के साथ कुछ मिष्टान्न (कंसार) भी लेकर आई थी । उसकी पत्नी किसान को भाता देकर अपने गाँव चली गई थी ।

किसान एक झाड़ के नीचे बैठकर भोजन की तैयारी कर रहा था, तभी अचानक उस किसान की नजर दूर से आते हुए धन्यकुमार पर पड़ी ।

धन्यकुमार को देखते ही उस किसान के मन में सद्भाव पैदा हुआ ।

उस किसान का जीवन भी संस्कारों से सुवासित था ।

भूख लगने पर भोजन करना प्रकृति है ।

भूख लगने पर बाँटकर खाना संस्कृति है और

भूख लगने पर छीनकर खाना यह विकृति है ।

अकेले भोजन करना यह श्वानवृत्ति है । अपने साथियों को खिलाकर खाना यह काकवृत्ति है ।

रोटी हाथ लगने पर कुत्ता अकेले ही खाने की कोशिश करता है, जब

कि खाने की थोड़ी भी सामग्री मिलने पर कौआ अपने साथियों को बुलाकर ही खाता है ।

भारत की संस्कृति तो बाँटकर खाना सिखाती है । ``अतिथिदेवो भव'' इस संस्कृति की पुकार है ।

धन्यकुमार को देखते ही वह किसान उसके सामने गया और बोला, ``पधारो ! महा भाग्य से आपके दर्शन हुए हैं । भोजन का समय हुआ है, अतः हम साथ में मिलकर भोजन करें ।''

किसान ने खूब आदर-बहुमान के साथ धन्यकुमार को भोजन के लिए आमंत्रण दिया, परंतु धन्यकुमार ने कहा, ``तुम्हारा आमंत्रण उचित है, परंतु मैं बिना श्रम की रोटी पसंद नहीं करता हूँ, अतः पहले तुम मुझे काम दो, तुम्हारा कुछ काम करने के बाद ही मैं तुम्हारे भोजन में हिस्सा ले सकूंगा ।''

किसान ने कहा, ``आप मेहमान हो...आपके पास मैं कैसे काम कराऊँ ? आप मेरे आतिथ्य का स्वीकार करें ।''

धन्य ने कहा, **``काम के बाद मैं जो भोजन करूंगा, वह मुझे अमृत समान लगेगा, अतः मैं बिना श्रम के भोजन करनेवाला नहीं हूँ ।''**

किसान ने सोचा, ``काम किए बिना यह भोजन नहीं लेगा और अभी बैल हल से जुड़े हुए हैं, अतः क्यों न इसके पास एक चक्कर लगवा दूँ ।''

इस प्रकार सोचकर किसान ने धन्यकुमार को कहा, ``आप मेरे खेत में थोड़ी देर हल चला दें ।''

धन्यकुमार ने किसान की बात मान ली । वह हल चलाने के लिए आगे बढ़ा ।

बैलों के साथ धन्यकुमार कुछ ही कदम आगे बढ़ा और उसके साथ ही वह हल जमीन में फँस गया । बैलों को हाँकने पर भी वे बैल आगे बढ़ नहीं पा रहे थे ।

धन्यकुमार ने जहाँ हल फँस गया था, आसपास की मिट्टी दूर की और उसी समय उसमें से सैकड़ों सुवर्ण मुद्राओं से भरा हुआ तांबे का एक घड़ा मिला ।

धन्यकुमार के आश्चर्य का पार न रहा । धन को देख उसके मन में

थोड़ा भी लोभ नहीं जगा, उसने उसी समय उस किसान को बुलाया और कहा, ``आपकी जमीन में से यह धन निकला है, अतः इस धन को आप संभालें ।''

सैकड़ों स्वर्ण मुद्राओं को देखकर उस किसान के आश्चर्य का पार न रहा । परंतु वह किसान भी लोभी नहीं था । उसने धन्यकुमार को कहा, **``यह धन आपके भाग्य से मिला है, अतः इस धन के वास्तविक मालिक तो आप हो । मैं तो इस भूमि पर हमेशा हल चलाता हूँ...आज तक मुझे यह धन नहीं मिला परंतु आज आपके भाग्य से मिला है, अतः आप ही इस धन के मालिक हो ।''**

धन का ढेर सामने पड़ा है, परंतु न तो किसान उस धन को हाथ लगाता है और न ही धन्य ।

हम किसे धन्यवाद दें, किसान को या धन्य को ?

सचमुच, ये दोनों धन्यवाद के पात्र हैं ।

वास्तव में, त्याग में ही महानता है ।

ठीक ही कहा है-**``जहाँ त्याग के लिए लड़ाई वहाँ रामराज्य और जहाँ पाने के लिए लड़ाई वहाँ हराम राज्य !''**

धन्यकुमार किसी भी हालत में धन लेने के लिए तैयार नहीं हुआ, तब उस किसान ने कहा, ``अमाप धन देकर आपने मेरी दरिद्रता का नाश किया है, अब आप भोजन करके मुझे कृतार्थ करें ।''

धन्य ने किसान की विनती स्वीकार की...किसान ने बड़े प्रेम से धन्यकुमार को भोजन कराया ।

भोजन के बाद धन्यकुमार तुरंत ही वहाँ से आगे बढ़ गया ।

धन्यकुमार के जाने के बाद उस किसान ने सोचा, ``मेरे पास रही इस विशाल संपत्ति को देख कोई राजा को शिकायत भी कर सकता है...यदि किसी ने राजा को शिकायत कर दी तो मेरी सारी संपत्ति चली जाएगी और ऊपर से कैद की सजा भी हो सकती है, अतः क्यों न जो भी घटना बनी है, वह जाकर मैं राजा को निवेदन कर दूँ ।''

किसान ने जाकर राजा को सब बात कह दी । किसान की बात

सुनकर राजा भी अत्यंत खुश हो गया । उसने सोचा, **''अहो ! ऐसे त्यागवीरों से ही यह धरती धन्य बनी है । जब तक इस धरती पर ऐसी पुण्यशाली आत्माएँ रहेंगी, तब तक यह सूर्य भी आग नहीं बरसाएगा, समुद्र भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेगा । सारा प्रकृति मंडल भी हमें मदद करेगा ।''**

राजा ने उस किसान को कहा, **''धरती में से धन निकले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, परंतु उस धन का त्याग कर देना, खूब आश्चर्य पैदा करता है । ऐसी उत्तम आत्माओं से ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा कहलाती है ।''**

उस उत्तम आत्मा ने यह धन तुझे दिया है तो मैं भी यह धन तुझे देता हूँ । परंतु उस उत्तम पुरुष का नाम प्रसिद्ध हो, ऐसा तुझे करना चाहिए ।

राजा की बात सुनकर किसान खुश हो गया । उसने धन्यकुमार के नाम से **''धन्यपुर''** गाँव बसाया और हमेशा धन्यकुमार को यादकर उसके गुणों की अनुमोदना करने लगा ।

5. समस्या का समाधान

चंदन का स्वभाव ही जैसे सुगंध देने का है, उसी प्रकार सज्जन पुरुष प्रकृति से ही परोपकार वृत्तिवाले होते हैं ।

भाग्य के भरोसे धन्यकुमार क्रमशः आगे बढ़ता जा रहा था । रात्रि का समय हुआ ।

नदी के किनारे नदी की रेती को ही अपना बिस्तर बनाकर वह सोने की तैयारी करने लगा ।

सोने के पूर्व उसने अपने हृदय कमल में सिद्धचक्र का ध्यान किया । तत्पश्चात् जगत् में रहे सभी जीवों के साथ सच्चे हृदय से क्षमायाचना की । अठारह पापस्थानकों को वोसिरा दिया । फिर अरिहंत आदि चार की शरणागति स्वीकार की ।

इस प्रकार शुभ भावनाओं से अपने मन को भावित कर धन्यकुमार निद्रा देवी की गोद में सो गया ।

रात्रि व्यतीत हुई । प्रातःकाल होने में एक प्रहर बाकी था । उसने निद्रा का त्याग किया । आँख खुलते ही उसने नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया ।

उसी समय उसे सियार की शुभ सूचक आवाज सुनाई दी ।

पशु-पंखी की भाषा को जानने-समझनेवाले धन्य कुमार ने रात्रि के अंतिम प्रहर में जैसे ही सियार का शब्द सुना, उसने अनुमान किया कि आज जरूर कुछ विशेष लाभ होगा । वह इस प्रकार सोच ही रहा था कि तभी एक सियारी बोली, **''इस नदी में एक शव तैर कर आ रहा है, उसकी कमर में रत्न बँधे हुए हैं । उस मुर्दे को खींचकर कोई रत्न ले ले और वह शव मुझे सौंप दे तो अच्छा रहेगा ।''**

पशु-पंखी की भाषा को जाननेवाला धन्यकुमार उसी समय नदी तट पर पहुँच गया । थोड़ी ही देर में उसने नदी के प्रवाह में बह रहे मुर्दे को देखा । वह उस मुर्दे को खींचकर नदी तट पर ले आया ।

उस मुर्दे की कमर में रत्नों की पोटली बँधी हुई थी । उसने वे सारे रत्न ले लिये और वह मुर्दा उस सियारी को सौंप दिया ।

रात्रि व्यतीत होने पर धन्यकुमार पुनः आगे बढ़ा...इस प्रकार चलते चलते वह उज्जयिनी नगरी के बाहर पहुँच गया ।

उज्जयिनी नगरी में चंडप्रद्योत नाम का राजा था । वह न्याय व नीति पूर्वक प्रजा का पालन करता था ।

राज्य की जवाबदारी के भार को हल्का करने के लिए वह एक कुशल मंत्री की शोध में था ।

कुशल मंत्री की परीक्षा के लिए राजा ने नगर में ढिंढोरा पिटवाया **''जो व्यक्ति तालाब के किनारे खड़ा रहकर तालाब के बीच में रहे स्तंभ को डोरी से बाँध देगा, उसे चंडप्रद्योत राजा मंत्री पद प्रदान करेगा ।''**

राजा के इस पटह को सुनकर अनेक लोग तालाब में रहे उस स्तंभ को बाँधने की कोशिश करने लगे, परंतु किसी को भी सफलता नहीं मिली ।

धन्यकुमार ने उज्जयिनी नगरी में प्रवेश किया । उसने भी वह घोषणा सुनी ।

पटह सुनते ही धन्यकुमार खुश हो गया । उसने सोचा, ''अहो ! इसमें क्या बड़ी बात है । इस छोटी सी समस्या को सुलझाना तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है ।'' इस प्रकार विचार कर धन्यकुमार उस तालाब के किनारे पहुँच गया । बुद्धिपरीक्षा के लिए वहाँ सैकड़ों लोग इकट्ठे हुए थे ।

अन्य व्यक्तियों के द्वारा परीक्षा में निष्फलता पाने के बाद धन्यकुमार आगे आया ।

धन्यकुमार ने देखा कि तालाब के किनारे-किनारे अनेक वृक्ष उगे हुए हैं । उसने बहुत बड़ा रस्सा लिया फिर उसके एक किनारे को एक वृक्ष से बाँध दिया । उसके बाद उस रस्से को हाथ में लेकर तालाब के चारों ओर घूम आया । फिर उस रस्सी को गाँठ लगाकर तालाब के किनारे किनारे घूमते हुए उसे खींचने लगा । थोड़ी ही देर में उसने तालाब के बीच में रहे स्तम्भ को गाँठ लगा दी ।

उसकी इस बुद्धिमत्ता को देखकर चंडप्रद्योत राजा खुश हो गया । राजा ने उसे अपना मंत्री पद प्रदान किया ।

अपने घर से खाली हाथ निकला हुआ धन्यकुमार अपने भाग्य के जोर से मंत्री पद पर आसीन हो गया ।

सचमुच, **भाग्य की बलिहारी है, वह राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है ।**

मंत्री पद पाने के बाद धन्यकुमार अत्यंत ही कुशलतापूर्वक राजा को उसके कार्यभार में मदद करने लगा ।

धन्यकुमार मात्र राजा के हृदय में ही नहीं, प्रजा के हृदय में भी बस गया ।

एक दिन धन्यकुमार अपने महल के झरोखे में बैठकर नगर के दृश्य को निहार रहा था, तभी उसने निस्तेज चेहरेवाले अत्यंत दयनीय स्थिति में जहाँ-तहाँ भटककर नगर की ओर आते हुए अपने पिता एवं पूरे परिवार को देखा । अपने परिवार की यह हालत देखकर उसे अत्यंत ही दुःख हुआ ।

उसने सोचा, ``अहो ! कर्म की गति बड़ी विचित्र है । अमाप धन-दौलत छोड़कर मैं खाली हाथ अपने घर से निकल पड़ा था तो फिर उनकी यह हालत कैसे हो गई ।'' इस प्रकार विचार कर वह तत्काल अपने महल में से नीचे उतर आया...और अपने माता-पिता, भाई-भाभी आदि को अपने महल में ले आया ।

उसने माता-पिता आदि के चरणों में विनयपूर्वक नमस्कार किया ।

उत्तम पुरुषों की यही नीति है । वे अमाप धन मिलने पर भी अभिमान से फूल नहीं जाते हैं, बल्कि विनम्र ही होते हैं । आम के झाड़ पर जब फल लगते हैं, तब वह और अधिक झुक जाता है ।

धन्यकुमार उज्जयिनी का मंत्री बन गया था, परंतु उसे लेश भी अभिमान पैदा नहीं हुआ ।

धन्यकुमार ने अपने माता-पिता भाई-भाभी के लिए स्नान-भोजन, वस्त्र आदि की सब व्यवस्था कर दी ।

संध्या समय जब पूरा परिवार मिला हुआ था, धन्यकुमार ने पिता को कहा, ``पिताजी ! अपने परिवार की यह हालत कैसे हो गई ?''

पिता ने कहा, ``बेटा ! यह सारा कर्म का गणित है । **पुण्य का उदय होने पर श्रम बिना भी अपार संपत्ति मिल जाती है और पापोदय होने पर हाथ में रहा भी सब चला जाता है ।**

घर में एक पुण्यशाली होता है और उसके आधार पर पूरा परिवार निभता है और पुण्यशाली व्यक्ति चला जाता है और पूरे परिवार की बुरी हालत हो जाती है ।

जैसे एक दीपक कमरे में रहे गाढ़ अंधकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही एक पुण्यशाली अन्य सब की आपत्तियों को दूर कर देता है ।

``तू पुण्यशाली है, अतः तेरे चले जाने से हमारा सारा धन भी चला गया । किसी ने जाकर राजा के कान फूँके और राजा भी विरुद्ध हो गया । उसने हम सबको कैद में डालकर हमारा सब धन जब्त कर लिया । कुछ दिनों बाद राजा ने हमें मुक्त कर दिया । हमारा कुछ धन आग में नष्ट हो गया, कुछ धन की चोरी हो गई । बस, इस प्रकार हमारे पापोदय से हमारी यह दुर्दशा हुई है ।''

धन्यकुमार ने कहा, ``पिताजी ! मेरा अहोभाग्य है कि आज आपके चरणकमलों के दर्शन हुए । आपकी ही कृपा से मंत्री पद आदि मिला है । आप सब यहाँ सुखपूर्वक रहें और अपने भूतकाल को भूल जाएँ ।''

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

कुत्ते की पूंछ को बारह वर्ष तक नली में रखा जाय तो भी बाहर निकालने के बाद वह टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है ।

इतने इतने कड़े अनुभव होने पर भी धन्यकुमार के बड़े भाइयों के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया । उनकी ईर्ष्यावृत्ति समाप्त नहीं हुई । बल्कि कुछ दिनों के बाद पुनः उनका अंतःकरण ईर्ष्या से जलने लगा ।

नगर में चारों ओर धन्यकुमार के गुणों की प्रशंसा होने लगी ।

एक दिन तीनों बड़े भाई मिलकर पिता के पास आए और बोले, ``हम धन्य के साथ रहना नहीं चाहते हैं, अतः हमें अपना भाग दे दो ।''

पुत्रों की यह बात सुनकर धनसार ने कहा, ``अरे मूर्खो ! तुम क्या लेकर आए थे कि धन्य के धन में अपना भाग मांग रहे हो ? तुम्हें जरा लज्जा भी नहीं आती है ?''

पिता की यह बात सुनकर वे सब कहने लगे, ``पिताजी ! आप दृष्टिराग से अंध बन गए हो, अतः आपको धन्य के गुण ही दिखते हैं, उसके दोष आपको दिखते ही नहीं हैं ।''

``धन्य अपने घर से बहु मूल्य रत्न लेकर यहाँ आ गया और धन का लोभ-स्विंत आदि देकर वह यहाँ का मंत्री बन गया है ।''

``समुद्र का पानी खारा है, फिर भी उसके पास रत्न होने से लोग उसके खारे पानी को भूलकर उसे ``रत्नाकर'' कहते हैं । अतः पिताजी ! हम कुछ नहीं जानते हैं, हमें अपना भाग दे दो ।''

पिता-पुत्रों के बीच हुए इस कलह को जानकर धन्यकुमार को अत्यंत ही दुःख हुआ ।

उसने सोचा, ``मेरे निमित्त से पिता-पुत्र में झगड़ा होता है तो यहाँ रहना उचित नहीं है'', इस प्रकार विचार कर एक दिन धन्य अपने महल को छोड़कर अकेला ही जंगल में चला गया ।

मंत्री-पद की समृद्धि को भी छोड़कर अकेले ही धन्यकुमार जंगल की ओर आगे बढ़ रहा था ।

वह सिंह की भाँति निर्भय था । क्रमशः आगे बढ़ते हुए अचानक उसे अद्‌भुत रूपवाले, अत्यंत ही शांत और तेजस्वी ऐसे दो मुनियों के दर्शन हुए ।

चंद्र को देखकर चकोर पक्षी को आनंद आता है, मेघ को देखकर मयूर नाच उठता है, अपने पति को देखकर सती स्त्री का देह रोमांचित हो जाता है, बस, इसी प्रकार शांत-प्रशांत मुनि भगवंत के दर्शन कर धन्य का मन प्रसन्न हो गया ।

वह सोचने लगा, ``अहो ! इस जंगल में भी मुनि के दर्शन हो गए अतः लगता है, मेरे भाग्य का सितारा चमक रहा है ।'' इस प्रकार विचारकर उसने अत्यंत ही आदर और बहुमान के साथ मुनियों के चरणों में नमस्कार किया और उसने मुक्तकंठ से उन मुनियों के चारित्र धर्म की भावपूर्वक प्रशंसा की । उसके बाद जिनवाणी-श्रवण की जिज्ञासा से मुनि-चरणकमलों में बैठ गया ।

धन्यकुमार की योग्यता और उसके विनय आदि गुणों को देखकर वे मुनि भी धन्यकुमार को उपदेश देने लगे ।

मुनि ने कहा, ``भाग्यशाली ! **इस संसार में आत्मा मिथ्यात्व-अविरति आदि कारणों से भयंकर पापबंध करती है और फिर इस चौदह राजलोक रूप संसार में नाना प्रकार की योनियों में यह आत्मा भटकती रहती है । इस आत्मा ने जन्म जरा और मृत्यु, आधि-व्याधि और उपाधि के भयंकर दुःख सहन किए हैं । उन समस्त दुःखों से मुक्त बनना हो तो विषय-कषाय में से मुक्त होना चाहिए ।**

पंच इन्द्रियों के शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श ये पाँच विषय तो विष से भी ज्यादा भयंकर हैं । विष तो खाने पर ही मारता है, जब कि ये विषय तो स्मरण मात्र से भी आत्मा को भयंकर नुकसान पहुँचाते हैं ।

हाथी, मछली, भ्रमर, पतंगा तथा हरिण आदि एक-एक इन्द्रिय की पराधीनता से मौत या बंधन को प्राप्त करते हैं तो जो मानव पाँच इन्द्रियों का गुलाम होगा उसकी क्या हालत होगी ?

अतः दुर्लभ ऐसे मानव-जन्म को प्राप्तकर पाँच इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

शक्य हो तो इन विषयों की आसक्ति टालने के लिए देव-दुर्लभ ऐसे मानव जन्म में साधु जीवन को स्वीकार करना चाहिए और इतना सामर्थ्य न हो तो उन विषयों पर अंकुश तो अवश्य लगाना चाहिए ।''

गुरु भगवंत की यह धर्मवाणी धन्यकुमार के अन्तर्मन को छू गई और उसने उसी समय स्वदारा-संतोष, परस्त्री और वेश्यागमन के त्याग का अभिग्रह ले लिया ।

गुरु भगवंत के शुभाशिष को प्राप्त कर धन्यकुमार आगे बढ़ा ।

6. पुण्य जागृत है

क्रमशः आगे बढ़ते हुए धन्य कुमार गंगा नदी के किनारे पहुँच गया । पाद-विहार के श्रम को दूर करने के लिए उसने गंगा में स्नान किया ।

गंगा-स्नान कर वह नदी के किनारे आकर बैठा । संध्या का समय होने से धन्यकुमार पंच परमेष्ठी भगवंतों का स्मरणकर शांत चित्त से बैठा था । तभी गंगा की अधिष्ठायिका गंगादेवी वहां पर आई...और धन्यकुमार के रूप-लावण्य से आकर्षित होकर धन्यकुमार से काम-भोग की प्रार्थना करने लगी परंतु धन्यकुमार अपने व्रत में तनिक भी विचलित नहीं हुआ ।

गंगा देवी ने अपने दिव्य रूप को प्रकटकर धन्यकुमार को मोहित करने के भरसक प्रयत्न किए परंतु धन्यकुमार अपने व्रत में स्थिर रहा, आखिर धन्यकुमार की व्रत-निष्ठा को देखकर गंगादेवी खुश हो गई...और उसने कहा, ``हे सात्त्विक शिरोमणि ! तुम्हारे दर्शन से मैं आज पावन बनी हूँ । तुमने मुझे पाप से बचाकर जो उपकार किया, उसके लिए मैं खूब खूब आभारी हूँ ।'' इतना कहकर देवी ने धन्यकुमार को एक चिंतामणि रत्न भेंट किया ।

क्रमशः आगे बढ़ते हुए धन्यकुमार राजगृही नगरी में पहुँच गया ।

राजगृही नगरी में महावीर प्रभु के परम भक्त श्रेणिक महाराजा राज्य करते थे । श्रेणिक राजा के दिल में महावीर प्रभु के प्रति अपूर्व भक्ति भाव था । प्रभु के आगमन को सुनकर उसका देह रोमांचित हो उठता था ।

जिस दिशा में प्रभु का विहार होता, उस दिशा में सोने के जौ का स्वस्तिक बनाकर प्रभु की भक्ति करता था । श्रेणिक महाराजा आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे ।

इसी राजगृही नगरी में प्रभु ने 14-14 चातुर्मास किए थे । महावीर प्रभु के चरण-कमलों से पावन बनी हुई इस राजगृही नगरी के बाहर **कुसुमपाल**

नाम के सेठ का एक बगीचा था परंतु वर्षा के अभाव के कारण वह बगीचा एकदम सूखा था । उस बगीचे के किसी भी वृक्ष पर कोई फल-फूल नहीं थे ।

धन्यकुमार ने उसी उद्यान में जाकर एक वृक्ष के नीचे रात्रि-विश्राम किया । परंतु यह क्या ! रात्रि पूर्ण होते ही उस बगीचे के सभी वृक्ष हरे भरे हो गए । सभी वृक्षों पर फल-फूल लग गए । सुबह उठकर उद्यानपाल ने बगीचे को हरा भरा देखा तो उसके आश्चर्य का पार न रहा । उसने जाकर अपने सेठ को समाचार दिये ।

सेठ स्वयं उद्यान में आए । बगीचे को हरा भरा देखकर उनके आश्चर्य का पार न रहा ।

बगीचे में इधर-उधर देखने पर अचानक उन्होंने धन्यकुमार को देखा । प्रातःकाल की मधुर वेला में धन्यकुमार एक वृक्ष के नीचे बैठकर नमस्कार महामंत्र की आराधना कर रहा था ।

सेठ ने सोचा, **``यह कोई विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा लगती है, इसी के पुण्य प्रभाव से यह उद्यान हरा भरा हुआ लगता है ।''**

इस प्रकार विचार कर सेठ ने कहा, ``हे भाग्यशाली ! आपके आगमन से मेरे उद्यान के सारे वृक्ष नव पल्लवित हो गए हैं । आप कृपा कर मेरे घर पधारें ।''

धन्यकुमार ने सेठ के आमंत्रण को स्वीकार किया । धन्यकुमार कुसुमपाल सेठ के घर आया । सेठ ने धन्यकुमार का भावभीना स्वागत किया । खूब आदर बहुमान पूर्वक भोजन कराया । उसके बाद सेठ ने कहा, ``आपका आचार ही आपके कुल को प्रकट करता है, अतः आप मेरी पुत्री कुसुमश्री के साथ पाणिग्रहण कर मुझे कृतार्थ करें ।''

सेठ के आग्रह को देख धन्यकुमार ने अपनी सहमति दे दी और एक शुभ दिन खूब धूमधाम पूर्वक **धन्यकुमार** का **कुसुमश्री** के साथ पाणिग्रहण हो गया ।

कुछ दिनों तक कुसुमपाल श्रेष्ठी के आतिथ्य को स्वीकार किया, तत्पश्चात् धन्यकुमार ने सोचा, ``श्वसुर गृह में दीर्घकाल तक रहना उचित नहीं है'' इस प्रकार विचार कर धन्यकुमार ने राजगृही नगरी में ही एक भव्य मकान खरीदकर वहीं पर आवास कर लिया ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

7. पाणिग्रहण

श्रेणिक महाराजा का एक पट्टहस्ती था, जिसका नाम था सेचनक ! एक बार वह हाथी अपने आलान-स्तंभ को तोड़कर बाहर आ गया और भयंकर तोड़-फोड़ करने लगा ।

हाथी को वश में लाने के लिए महावत ने खूब मेहनत की...परंतु वह हाथी किसी प्रकार से वश में नहीं आ रहा था ।

श्रेणिक ने सोचा, ``अभयकुमार यदि हाजिर होता तो इस समस्या का तत्काल समाधान हो जाता, परंतु अभयकुमार तो उज्जैन मैं है...अब इस समस्या का समाधान कौन करेगा ?''

आखिर किसी मंत्री की सलाह से नगर में पटह बजवाया गया । ``जो व्यक्ति इस हाथी को बंधनग्रस्त करेगा, उसे राजा अपनी पुत्री **सोमश्री** प्रदान करेगा और उसे बहुतसा धन दिया जाएगा ।''

यमराज की तरह अत्यंत ही विकराल बने सेचनक को कोई भी व्यक्ति वश में करने के लिए समर्थ नहीं था । आखिर धन्यकुमार ने वह पटह सुना और वह तत्काल ही उस मदोन्मत्त हाथी को अपने वश में करने के लिए तैयार हो गया ।

कुश्तीबाज की तरह मात्र लंगोट धारणकर धन्यकुमार उस हाथी के सामने गया । प्रारंभ में **लघुलाघवी कला** के द्वारा उसने उस हाथी को खूब घुमाया । आखिर वह हाथी खूब थक गया । अतिश्रम के कारण वह मदरहित हो गया । हाथी को थकाकर धन्यकुमार उसकी पीठ पर चढ़ गया । अपने पादघात से उसके मर्मस्थल पर प्रहारकर अंकुश द्वारा उसे वश में कर धन्यकुमार उस हाथी को आलान स्तंभ के पास ले गया और उसे बाँध दिया । धन्यकुमार की इस अद्‌भुत कला को देखकर श्रेणिक महाराजा खुश हो गए । उन्होंने खूब धूमधाम के साथ अपनी पुत्री सोमश्री का पाणिग्रहण धन्यकुमार के साथ करा दिया ।

एक दिन की बात है ।

बुद्धिनिधान अभयकुमार, वेश्या के मायाजाल के कारण उज्जयिनी नगरी में चंडप्रद्योत राजा के यहाँ नजरकैद रहा हुआ था ।

सच ही है, तेजस्वी सूर्य के अभाव में वर्षा ऋतु में क्षुद्र जंतुओं का जोर खूब बढ़ जाता है । बस, अभयकुमार के अभाव में राजगृही नगरी में धूर्त व कपटी लोगों का जोर बढ़ गया था ।

एक बार एक धूर्त, गोभद्र सेठ के पास आया और बोला, ``सेठजी ! आप मुझे पहिचानते हो ?''

सेठ ने कहा, ``कुछ ख्याल नहीं आ रहा है ।''

``अरे ! सेठजी ! आप इतने जल्दी भूल गए ? कुछ दिनों पूर्व मैं आपके साथ ही व्यापार के लिए चंपानगरी गया था । सभी व्यापारी वहाँ अपना माल खरीद-बेच रहे थे, सभी ने अच्छा मुनाफा कमाया परंतु मेरे पास विशेष पूंजी नहीं होने से व्यापार करना मुश्किल था । मुझे एक लाख रुपए की जरूरत थी, अतः मैंने अपनी एक अमूल्य आँख आपके पास गिरवी (धरोहर) रखकर आप से एक लाख रुपए उधार लिये थे ।''

``अपने कर्ज को चुकाना, यह सज्जन व्यक्ति का कर्तव्य है, अतः मैं ब्याज सहित वह रकम लेकर आया हूँ । आप यह रकम लें और मुझे मेरी आँख वापस लौटाएँ ।''

धूर्त की यह बात सुनकर सेठ अचरज में पड़ गए ।

सेठ गिरवी का धंधा करते थे, मूल्यवान् वस्तु रखकर रकम उधार देते थे, परंतु कभी किसी कर्जदार के कोई शारीरिक अंग लेकर धन उधार दिया हो, ऐसा कभी किया नहीं था ।

सेठ ने कहा, ``तुम झूठ बोल रहे हो, तुमने कब मेरे यहाँ अपनी आँख गिरवी रखी है ?''

सेठ के इन्कार करने पर वह धूर्त गुस्से में आकर बोला, ``सेठ ! दूसरे की मूल्यवान धरोहर को निगलते हुए आपको शर्म नहीं आती है । आप अपनी रकम ब्याज सहित ले लें और मुझे अपनी आँख दे दें नहीं तो आपकी खैर नहीं है ।''

सेठ थोड़े घबरा गए । उन्होंने आसपास के सेठों को बुलाकर उस धूर्त को समझाने की कोशिश की परंतु वह धूर्त किसी भी हालत में मानने के लिए तैयार नहीं था, वह अपनी बात पर अडिग था । उसकी एक ही जिद थी कि मुझे मेरी आँख वापस लौटा दी जाय ।

आखिर यह मामला श्रेणिक के दरबार में गया । श्रेणिक भी इसका सही निर्णय करने में हिचकिचा रहे थे ।

``जो कोई बुद्धिशाली व्यक्ति सचोट प्रत्युत्तर द्वारा इस समस्या का समाधान करेगा, उसे राजा की ओर से योग्य इनाम दिया जाएगा । गोभद्र सेठ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराएगा ।''

इस प्रकार की उद्घोषणा पूर्वक राजगृही नगरी में पटह बजवाया गया ।

धूर्त को योग्य प्रत्युत्तर देने के लिए कोई व्यक्ति सामने नहीं आया । धन्यकुमार ने यह पटह सुना तो उसने सोचा, ``अहो ! इसमें क्या कठिनाई है, यह तो मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल है ।''

दूसरे दिन धन्यकुमार राजदरबार में पहुँच गया । श्रेणिकराजा ने गोभद्रसेठ और उस धूर्त को राजदरबार में उपस्थित रहने की सूचना दी ।

ठीक समय पर सभी लोग उपस्थित हो गए । धूर्त व गोभद्र सेठ भी आ गए ।

धूर्त ने पुनः अपनी माँग दोहराई । ब्याज सहित लाख रुपए लेकर मुझे मेरी आँख लौटाई जाय ।

धूर्त की बात पूरी होने पर धन्यकुमार की सलाह अनुसार गोभद्र सेठ ने कहा, ``तुमने अपनी आँख मेरे यहाँ रखी है, ठीक बात है, परंतु तुम्हारे जैसी मेरे यहाँ सैकड़ों आँखें हैं, अतः तुम्हारी आँख के बदले में कोई दूसरी ही आँख तुम्हें मिल जाय तो तकलीफ हो जाएगी । अतः तुम अपनी दूसरी आँख दो ताकि वैसी ही आँख तुम्हें दी जा सके ।''

गोभद्र के इस जवाब को सुनते ही उस धूर्त का बोलना बंद हो गया ।

उसकी कपट-लीला प्रकट हो गई । राजा ने उसे देशनिकाले की सजा की ।

धूर्त के सिकंजे से मुक्त बने गोभद्र खुश हो गए । उन्होंने अपनी पुत्री **सुभद्रा** का पाणिग्रहण धन्यकुमार के साथ करा दिया ।

पुत्री के लग्न की जवाबदारी से मुक्त बने गोभद्र सेठ ने महावीर प्रभु के पास जाकर भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली । निर्मल संयम धर्म का पालनकर वे समाधि मृत्यु प्राप्तकर महर्द्धिक देव बने ।

एक दिन धन्यकुमार अपने महल की 7वीं मंजिल के झरोखे में बैठकर नगर के दृश्य को निहार रहा था तभी अचानक धन्यकुमार ने दीन-हीन हालत में नगर में प्रवेश करते हुए अपने माता-पिता व भाई-भाभी को देखा ।

अपने परिवार की पुनः इस दुर्दशा को देखकर धन्यकुमार को अत्यंत ही दुःख हुआ ।

उसने सोचा, ``अहो ! मैं इतनी धन संपत्ति छोड़कर निकला था, फिर वापस उनकी यह हालत कैसे हो गई ? **कर्म की गति बड़ी विचित्र है । किए हुए कर्मों की सजा आत्मा को अवश्य भुगतनी पड़ती है ।''**

इस प्रकार सोचकर धन्यकुमार अपने माता-पिता के पास आया । उनके चरणों में भावपूर्वक नमस्कार करके बोला, ``पिताजी ! आपकी यह हालत कैसे हो गई ?''

धनसार ने कहा, **``बेटा ! आकाश में जब तक सूर्य चमक रहा होता है तभी तक चारों ओर प्रकाश दिखाई देता है, सूर्य के चले जाते ही सर्वत्र अंधेरा छा जाता है । तेरे जैसे पुण्यशाली के चले जाने से मेरी यह दुर्दशा हुई है । तेरे चले जाने के बाद हमारा बहुत साधन चोर चुरा ले गए । कुछ धन अग्नि में नष्ट हो गया और कुछ धन जल से नष्ट हो गया । जमीन में गड़ा हुआ धन भी कोयले में बदल गया ।** आगे चलकर पेट भरना भी हमारे लिए मुश्किल हो गया, अतः हम आजीविका की शोध में घूमते हुए यहाँ आए हैं ।

धन्यकुमार ने बड़े आडम्बर के साथ अपने माता-पिता व भाई-भाभी का नगर में प्रवेश कराया ।

धन्यकुमार के पुण्य-प्रभाव से वे खूब आनंद पूर्वक वहाँ रहने लगे ।

परंतु कुछ समय के बाद ही धन्यकुमार के इस विशिष्ट मान-सम्मान को देख उसके तीनों भाई ईर्ष्या से जलने लगे ।

ठीक ही कहा है-**``दूध से धोने पर भी कौआ कभी कलहंस (उज्ज्वल)नहीं बनता है, उसी प्रकार कितना ही मान-सन्मान व सत्कार-सम्मान करने पर भी दुर्जन व्यक्ति सज्जन के साथ कलह और ईर्ष्या ही करता है ।**

धन्यकुमार ने सोचा, ``जो संपत्ति भाई-भाई के बीच कलह कराती हो, उस संपत्ति से संबंध रखने से क्या फायदा ?'' इस प्रकार विचार कर

राजा व परिवार को पूछे बिना ही धन्यकुमार अपने महल को छोड़कर चिंतामणि रत्न लेकर जंगल की ओर चला गया ।

अनेक गाँवों-नगरों को पार करता हुआ धन्यकुमार **कौशांबी** नगरी में आया ।

उस समय कौशांबी नगरी में **शतानीक** राजा राज्य करते थे । प्रजा के हित के लिए वे सदैव जागरूक थे ।

राजा के भंडार में **''सहस्त्रकिरण''** नाम का एक मणि था, वह मणि परंपरा से पूर्वजों द्वारा पूजा जा रहा था, परंतु उस मणि के प्रभाव से सभी अज्ञात थे ।

शतानीक राजा ने उस मणि की परीक्षा के लिए अनेक जौहरियों को बुलाया और मणि बतलाया, परंतु कोई भी उस मणि की सही परीक्षा नहीं कर सका ।

आखिर में राजा ने पटह बजवाकर घोषणा की, ``जो भी मणि के वास्तविक प्रभाव को बताएगा, उसे राजा अपनी **सौभाग्यमंजरी** नाम की पुत्री प्रदान करेगा ।''

नगर में पटह बजाया गया, परंतु कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया, यह पटह धन्यकुमार ने सुना । वह राजदरबार में उपस्थित हो गया ।

मणि को देखकर उसका प्रभाव बतलाते हुए धन्यकुमार ने कहा, **''राजन् ! जो मनुष्य इस मणि को अपने मस्तक पर धारण करता है, उसका हाथी, सिंह व दुश्मन भी पराभव नहीं कर सकता है । उस मनुष्य के शरीर में कोढ़ आदि रोग उत्पन्न नहीं होता है । आपको विश्वास नहीं हो तो यह मैं आपको प्रयोग कर बतला देता हूँ ।''**

धन्यकुमार के कहने पर उसी समय राजा ने एक थाल में चावल मँगवाए । फिर उस थाल के चावलों पर वह मणि रख दिया । उसके बाद चावल खानेवाले पंखी छोड़ दिए परंतु आश्चर्य ! एक भी पंखी ने एक भी दाना नहीं चुगा..परंतु जैसेही थाल पर से वह मणि उठा लिया गया, उसके साथ ही वे सभी पंखी उस थाल पर टूट पड़े और उन्होंने वे सारे दाने चुग लिये ।

धन्यकुमार ने कहा, ``जिस प्रकार इस मणि के कारण एक भी पंखी

एक दाना भी नहीं चुग पाया, उसी प्रकार इस मणि के प्रभाव से रोग-शत्रु-भूत-प्रेत आदि के सभी उपद्रव दूर हो जाते हैं ।''

मणि के इस प्रभाव-चमत्कार को देख राजा अत्यंत ही खुश हो गया ।

धन्यकुमार के बाह्य व्यक्तित्व व प्रतिभा आदि से राजा खूब प्रभावित हुआ । राजा ने अपनी पुत्री **सौभाग्यमंजरी** का पाणिग्रहण धन्यकुमार के साथ खूब धूमधाम से कराया ।

राजा ने धन्यकुमार को रहने के लिए महल प्रदान किया । कुछ दिनों तक राजा के आतिथ्य को स्वीकार कर धन्यकुमार ने कोशांबी के निकट ही धन्यपुर नगर बसा दिया । वहीं पर उसने अपना आवास किया ।

धन्यपुर नगर में हर प्रकार की सुख-सुविधा होने से आसपास से आकर हजारों लोग वहाँ बसने लगे ।

धन्यपुर नगर में हर प्रकार की सुख-सुविधा थी परंतु पानी की थोड़ी तंगी थी । जल के संग्रह के लिए धन्यकुमार ने नगर के बाहर बड़े-बड़े तालाब खुदवाने चालू किए । तालाब की खुदाई के साथ में नगरवासी अथवा नगर में आनेवाले गरीब लोगों को रोजी-रोटी भी मिलने लगी ।

8. पुण्य बलवान है

सूर्य अस्त होते ही जैसे चारों ओर अंधकार छा जाता है, उसी प्रकार धन्यकुमार के चले जाने के साथ ही धनसार एवं उनके पुत्रों के पास रही लक्ष्मी ने भी विदाई ले ली ।

अपने दामाद के इस प्रकार चले जाने से श्रेणिक राजा को भी गुस्सा आया और उनके पास रही सारी संपत्ति भी जब्त कर ली और उन्हें ऐसे ही छोड़ दिया ।

धन के चले जाने से धनसार का परिवार यश-कीर्ति, कांति आदि गुणों से भी मुक्त हो गया ।

धनसार ने अपने पुत्रों को कहा, ``अब हमें इस नगर में रहना उचित नहीं है, अतः हमें अन्य देश में चले जाना चाहिए ।''

गरीबी में जीवन-निर्वाह भी कठिन होने से धनसार ने अपने पुत्र

धन्यकुमार की दो पत्नियों सोमश्री और कुसुमश्री को तो पीहर भेज दिया परंतु सुभद्रा अपने पीहर जाने के लिए तैयार नहीं हुई ।

सुभद्रा ने कहा, **``आपत्ति के समय में सती स्त्री को अपने पति के घर रहना ही उचित है । मैं शील रूपी शस्त्र को साथ लेकर आपके साथ ही रहूंगी ।''**

धनसार ने सुभद्रा की बात स्वीकार की । धनसार अपनी पत्नी, तीन पुत्र तथा चार पुत्रवधुओं को साथ में लेकर नौकरी की तलाश में आगे बढ़ा ।

भूख-प्यास आदि के भयंकर कष्टों को सहते हुए वे सब कौशांबी नगरी के बाहर पहुँचे ।

कौशांबी पहुँचने के बाद धनसार ने आस-पास के लोगों से पूछा, ``क्या यहाँ हमें कोई नौकरी मिल सकती है ?''

धनसार की अत्यंत दयनीय स्थिति को देखकर किसी को दया आ गई । उसने धनसार को सलाह देते हुए कहा, ``अभी अभी यहाँ नगर के बाहर तालाब की खुदाई चल रही है, अतः निर्धन लोगों को यहाँ सहजतया नौकरी मिल जाती है, आप वहाँ जाओगे तो आपका काम हो जाएगा ।''

धनसार अपने परिवार के साथ तालाब के पास गया ! उसने नौकरी के लिए अधिकारी वर्ग से बात की । अधिकारी वर्ग ने उन्हें तत्काल नौकरी दे दी ।

तालाब की खुदाई करनेवाले प्रत्येक पुरुष को दो दीनार व स्त्री को एक दीनार तथा भरपेट भोजन दिया जाता था ।

धनसार अपने परिवार के साथ मजदूरी करने लगा । वेतन के रूप में उसे उचित रकम व भोजन मिल जाता था । वे एक छोटीसी झोपड़ी में रहने लगे और दिनभर तालाब की खुदाई कर अपना जीवन निर्वाह करने लगे ।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन धन्यकुमार बड़े आडम्बर के साथ तालाब की खुदाई के काम के निरीक्षण के लिए वहाँ पर आया । सेवकगण बादशाही वेशभूषा में सुसज्ज धन्यकुमार की जय-जय पुकार रहे थे ।

एक आसन पर बैठकर धन्यकुमार खुदाई के काम का निरीक्षण कर रहा था, तभी अचानक उसकी नजर अपने माता-पिता, भाई-भाभी पर पड़ी। उन्हें देखते ही वह पहिचान गया।

धन्यकुमार ने सोचा, ``अहो ! क्या मेरे परिवार की वापस यह हालत हो गई है ! **कर्म की गति बड़ी विचित्र है। अग्नि शीतल हो जाय, मेरु पर्वत विचलित हो जाय, पर्वत पर फूल उग जाय परंतु कर्म के फल को कोई बदल नहीं सकता है। जो भावी में लिखा होता है वो ही होता है।** अहो ! अमाप समृद्धि के मालिक शालिभद्र की बहिन मेरी पत्नी, सुभद्रा को भी इतनी काली मजदूरी करनी पड़ रही है।''

धन्यकुमार ने पुनः सोचा, ``अभी मुझे अपना सही परिचय नहीं देना है, कुछ समय ऐसे ही जाने दूँ, मेरे ईर्ष्यालु बड़े भाइयों को भी सत्य धर्म का कुछ ख्याल आना चाहिए।'' इस प्रकार विचार कर धन्य ने अपने पिता को ही पूछा, ``आप कुछ नवीन मजदूर लगते हो, आप कौन हो और कहाँ से आए हो ?''

धनसार अपने पुत्र धन्यकुमार को पहिचान नहीं पाया अतः अपने जाति-कुल आदि को छिपाते हुए ऐसे ही कहा, ``हम नौकरी की तलाश में बाहर से आए हैं। आपकी कृपा से हमें यहाँ नौकरी मिल गई है। आप तो हमारे लिए जंगम कल्पवृक्ष हो।''

पिता के इन वचनों को सुनकर धन्यकुमार ने सोचा, ``अहो ! धन के चले जाने पर मति भी कितनी विषम हो जाती है। **सच है धन जाने पर लज्जा, मति, मान आदि सब चला जाता है।''**

धन्यकुमार ने अपने आपको गुप्त रखना ही मुनासिब समझा फिर भी पिता का आदर तो होना ही चाहिए। इस भावना से खुदाई के काम का थोड़ा निरीक्षण करने के बाद धन्यकुमार ने अधिकारी वर्ग से कहा, ``वृद्धावस्था के कारण इनका शरीर कमजोर हो गया है, अतः इन्हें भोजन में तैल के स्थान पर घी दिया जाय !''

इस आदेश को सुनकर धनसार खुश हो गया। अन्य मजदूरों ने धनसार को कहा, ``भाग्यशाली ! तुम्हारा पुण्य जोरदार है, तुम्हारे ऊपर

अपने स्वामी की कृपा है । तैल के बदले तुम्हें घी मिलेगा, परंतु तुम अकेले घी खाओ, यह उचित नहीं है, अतः तुम धन्यसेठ से प्रार्थना करोगे तो शायद हमें भी घी खाने को मिल सकता है ।''

लोगों की बात उचित समझकर धनसार ने धन्य को कहा, ``हे स्वामिन् ! मैं अकेला घी खाऊँ यह ठीक नहीं है । आप जैसे दानवीर पंक्ति-भेद करें, यह ठीक नहीं लगता, अतः आप थोड़ी और कृपा करें, सबको एक समान भोजन मिले तो अच्छा रहेगा ।''

धन्य ने अपने पिता की बात मान ली और सभी को भोजन में घी दिया जाने लगा ।

सभी मजदूर खुश हो गए और उस वृद्ध का आभार मानने लगे ।

दूसरे दिन पुनः धन्यकुमार आया और धनसार को बुलाकर कहा, ``तुम्हारे तीन पुत्र व पुत्रवधुएँ जब काम कर रहे हैं तो फिर तुम यह मजदूरी क्यों करते हो ? इस उम्र में इतना श्रम करना अच्छा नहीं है ।''

धनसार ने कहा, ``हम बिल्कुल निर्धन और निराधार हो गए हैं, अतः ऐसी स्थिति में थोड़ी कमाई ज्यादा होगी, तो घर बराबर चलेगा । बस, इसी कारण मेहनत करता हूँ ।''

उसी समय अधिकारी वर्ग को बुलाकर धन्य ने कहा, ``यह मजदूर अतिवृद्ध होने से इससे काम नहीं कराया जाय, परंतु इसे रोज की मजदूरी ऐसे ही दे दी जाय ।''

धन्य की यह बात सुनकर धनसार के आनंद का पार न रहा ।

तीसरे दिन धन्य ने आकर अपने पिता को सूखा मेवा आदि उत्तम सामग्री भेंट की । इस प्रकार वह पिता की भक्ति करने लगा ।

गर्मी के दिन थे ।

धन्यकुमार ने धनसार को कहा, ``अभी गर्मी के दिन होने से भोजन के बाद छाछ का उपयोग किया जाय तो ज्यादा अच्छा रहेगा ।''

धनसार ने कहा, ``आपकी कृपा से भोजन अच्छी तरह से मिल जाता है । हमारे घर में गाय ही नहीं है तो छाछ कहाँ से मिलेगी ?'' धन्य ने कहा,

``मेरे अधीन बहुतसी गायें हैं । हमारे घर में दूध घी-छाछ की कमी नहीं है । अतः तुम किसी को भी भेजकर हमेशा छाछ मंगाते रहना । किसी प्रकार का संकोच मत रखना ।''

धनसार ने कहा, ``जैसी आपकी आज्ञा ।''

बस, धनसार की बहुएँ बारी बारी से प्रतिदिन धन्य के महल में जाने लगीं और वहाँ उन्हें छाछ मिलने लगी ।

एक दिन धन्य ने अपनी पत्नी को कहा, ``धनसार की तीन बड़ी बहुएँ आएँ तब उन्हें पतली छाछ देना और छोटी बहू आए तब उसे बढ़िया छाछ देना, खाने-पीने की अच्छी वस्तुएँ भी देना और उसके साथ परिचय भी करना ।''

सौभाग्यमंजरी ने पति की बात स्वीकार की । धन्य के महल में से सुभद्रा को अच्छी छाछ व खाने पीने की अच्छी-अच्छी वस्तुएँ मिलने लगीं तो धनसार बड़ी बहुओं के आगे सुभद्रा की प्रशंसा करते हुए कहने लगा ``देखो, धन्य की तरह उसकी पत्नी भी भाग्यशालिनी है । सबको अपने-अपने भाग्यानुसार मिलता है । तुम जाती हो तो तुम्हें पानी जैसी छाछ मिलती है । जब कि सुभद्रा को बढ़िया छाछ व अन्य वस्तुएँ भी मिलती हैं ।

सुभद्रा की प्रशंसा सुनकर तीनों बहुएँ मन-ही-मन जलने लगीं ।

एक दिन धनसार ने बड़ी बहू को छाछ लाने के लिए आज्ञा की तो उसने जाने से इन्कार कर दिया और बोली, ``आपकी नजर में हम तो निर्भागी हैं, अतः आप सुभद्रा को ही भेजो । वे ही अच्छी वस्तुएँ लाती हैं और आपको वो ही अच्छी लगती है ।''

आखिर धनसार ने सुभद्रा को आज्ञा की । सुभद्रा धन्य के महल में गई ।

सुभद्रा के आने पर सौभाग्यमंजरी ने उसे प्रेम से पुकारा और कहा, **``आओ ! बैठो । तुम्हारे रूप-रंग से तो तुम किसी श्रेष्ठी की पुत्री प्रतीत होती हो, परंतु आज तुम्हारी यह दशा कैसे हो गई ?''**

सौभाग्यमंजरी के पूछने पर सुभद्रा ने अपनी सारी आपबीती सुना दी ।

अंत में कहा, ``रूप-रंग में तुम्हारे पति जैसे ही मेरे पति थे । परंतु बड़े भाइयों की ईर्ष्या वृत्ति और कलह-क्लेश के कारण वे हम सबको छोड़कर

चले गए । उनके चले जाने से हमारी सब संपत्ति भी चली गई । दरदर भटकते हुए नौकरी की तलाश में हम यहाँ आए हैं ।''

इसी बीच धन्यकुमार वहाँ आ गया और सुभद्रा से बोला, ``पति बिना तू अपने प्राण कैसे धारण करती है ? तू अपने यौवन को व्यर्थ क्यों गँवाती है ? विदेश गए अपने पति की आशा रखना व्यर्थ है ! क्यों न तू मुझे ही पति के रूप में स्वीकार कर ले ।''

धन्य की यह बात सुनकर सुभद्रा ने अपने दोनों हाथों से दोनों कान ढक लिये और बोली, ``आप ऐसे वचन क्यों बोलते हैं ? **सती स्त्री या तो पति के स्पर्श को पाती है अथवा अग्नि के स्पर्श को । परस्त्री-संग की अभिलाषा से तो वैभव और यश दोनों नष्ट हो जाते हैं ।** मेरे शील को लूटने में तो इंद्र भी समर्थ नहीं है ।''

सुभद्रा के निर्मल शीलयुक्त वचनों को सुनकर धन्यकुमार मनोमन खुश हो गया ।

फिर धन्य ने कहा, ``भद्रे ! मैं परस्त्री में आसक्त नहीं हूँ, मैंने तो सिर्फ तेरी परीक्षा के लिए ये वचन कहे हैं । तुझे दुःख हुआ हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ ।'' इतना कहकर फिर बोला, ``तू अपने पति को कैसे पहिचान पाएगी ।''

सुभद्रा ने कहा, ``पूर्व अनुभूत संकेतों से ।''

उसी समय धन्य ने अपने जीवन के बहुत से अनुभव बतला दिए जिसे सुनकर सुभद्रा को ख्याल आ गया कि ये धन्यकुमार ही उसके पति हैं ।

सौभाग्यमंजरी भी अपने पति के पूर्ववृत्तांत को जानकर खुश हो गई...उसे भी ख्याल आ गया कि यह सुभद्रा मेरी शोक्या ही है ।

धन्य की सूचना से सुभद्रा ने अपने सारे वस्त्र बदल दिए । उसने मूल्यवान वस्त्र और आभूषण धारण किए ।

9. शील कीमती है !

सती स्त्री अपने प्राणों से भी अपने शील को अधिक कीमती समझती है । काफी देर तक जब सुभद्रा छाछ लेकर वापस नहीं लौटी तो धनसार के मन में शंका पैदा हुई ।

(51) इलाचीकुमार-
पृष्ठ नं. 90

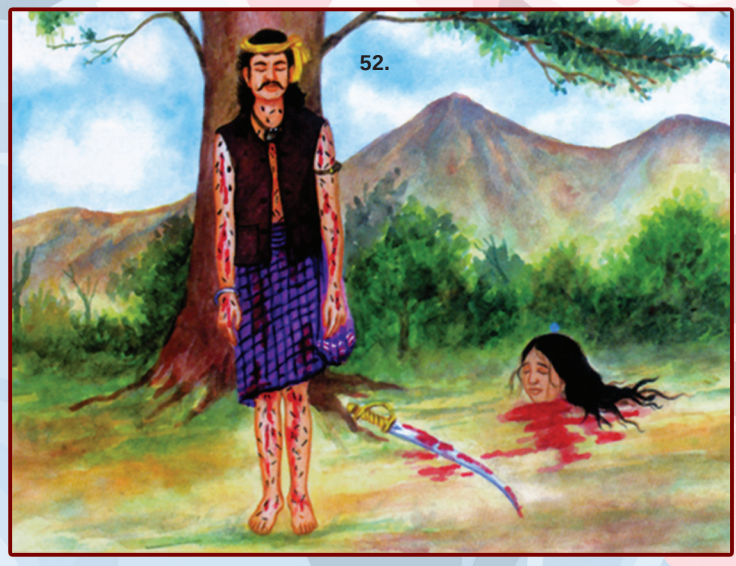

(52) चिलातीपुत्र-पृष्ठ नं. 94

श्री इलाचीकुमार की सज्झाय

नामे इलाची पुत्र जाणीअे, धनदत्त शेठनो पुत्र,
नटवी देखीने मोहीयो, नवि राख्युं घर सूत्र,
कर्म न छूटे रे प्राणीया, पूरव स्नेह विकार,
निज कुल छंडी रे नट थयो, नाणी शरम लगार. कर्म० १

मातापिता कहे पुत्रने, नट नवि थइअे रे जात,
पुत्र परणावुं रे पद्मिणी, सुख विलसो ते संघात. कर्म० २
कहेण न मान्युं रे तातनुं, पूरव कर्म विशेष,
नट थइ शीख्यो रे नाचवा, न मटे लख्या रे लेख कर्म० ३

अेक पूर आव्यो नाचवा रे, ऊंचो वांस विशेष
तिहां राय जोवाने आवीयो, मलीया लोक अनेक कर्म० ४
ढोल बजावे रे नटडी, गावे किन्नर साद,
पाय कल घुघरा रे घमघमे, गाजे अंबर नाद कर्म० ५

दोय पग पहेरी रे पावडी, वंश चढ्यो गज गेल,
नोंधारो थइ नाचतो, खेले नवा नवा खेल कर्म० ६
नटडी रंभा रे सारखी, नयणे देखे रे जाम,
जो अंतेउरमां अे रहे, जन्म सफळ मुज ताम कर्म० ७

तव तिहां चिंते रे भूपति, लुब्धो नटडीनी साथ,
जो नट पडे रे नाचतो, तो नटडी करुं मुज हाथ. कर्म० ८
कर्म वशे रे हुं नट थयो, नाचुं छुं निराधार,
मन नवि माने रे रायनुं, तो शुं करवो विचार कर्म० ९

दान न आपे रे भूपति, नटे जाणी ते वात,
हुं धन वंछु रे रायनुं, राय वंछे मुज घात कर्म० १०
दान लहुं जो हुं रायनुं, तो मुज जीवित सार,
अेम मनमांहे रे चिंतवी, चढीओ चोथी रे वार कर्म० ११

थाल भरी शुद्ध मोदके, पद्मिणी उभेली बार,
ल्यो ल्यो कहे छे लेता नथी, धन धन मुनि अवतार कर्म० १२
अेम तिहां मुनिवर वहोरता, नटे पेख्या महाभाग्य,
धिक् धिक् विषया रे जीवने, अेम नट पाम्यो वैराग्य कर्म० १३

संवर भावे रे केवली, थया ते कर्म खपाय,
केवल महिमा रे सुर करे, *लब्धिविजय* गुण गाय कर्म० १४

उसने सोचा, **``सुभद्रा एक पवित्र शीलवती नारी है, वह कभी भी इतनी देर तक धन्य के महल में रुकती नहीं है । आज इतनी देरी का कारण क्या होगा ? कोई अनहोनी घटना तो नहीं बनी है ?''** इस प्रकार विचारकर सेठ ने अपनी बड़ी पुत्रवधू को सुभद्रा की शोध करने के लिए धन्य के महल में भेजा ।

धनदेव की पत्नी धनश्री ने धन्य के महल में जाकर किसी नौकर को पूछा- ``क्या हमारी देवरानी को यहाँ देखा है ?''

इस बात को सुनकर वास्तविकता का ख्याल न होने से किसी ने कह दिया- ``वह तो धन्य के अंत:पुर में रानी बन गई है !'' यह सुनकर धनश्री को खूब आश्चर्य हुआ । वह दौड़ती हुई अपने श्वसुर के पास आई और सुभद्रा की सारी बातें कह दीं ।

धनसार की तीनों बहुएँ धनसार को ठपका देती बोलीं, ``आप उस सुभद्रा की प्रशंसा करते थकते नहीं थे, हमें तो पानी जैसी छाछ मिलती थी और वह तो बढ़िया छाछ और खाने-पीने की अच्छी वस्तुएँ लाकर आपको देती थी, आपकी नजर में वह खूब भाग्यशालिनी थी, अब देख लिया न उसका चरित्र ? रूप और यौवन का जहाँ सुभग मिलन हो, उस कन्या को राजभवन में भेजना कहाँ तक योग्य है ! परंतु आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, अत: आप उसे हमेशा प्रोत्साहित करते रहे । जो कुछ हुआ उसमें आपकी ही गंभीर भूल है ।''

बहुओं के इन ठपकों को सुनकर धनसार मूर्च्छित होकर भूमि पर ढल पड़ा । थोड़ी देर बाद जब वह होश में आया तो सोचने लगा, ``अहो ! अब मैं कहाँ जाऊँ और किससे बात करूँ ?''

आखिर सोच विचार कर वह नगर के व्यापारी वर्ग के पास गया और उन्हें सब घटना सुनाई । पहले तो कोई भी उसकी बात मानने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि धन्यकुमार के सच्चरित्र से वे सब परिचित थे ।

खूब विचार-विमर्श करने के बाद उन व्यापारियों ने एक प्रतिनिधि मंडल तैयार कर उसे धन्यकुमार के पास भेजा ।

प्रतिनिधि मंडल ने प्रणाम कर धन्यकुमार को कहा, **``स्वामिन् ! सूर्य**

का आगमन होने पर अंधकार रहता नहीं है, चंद्र कभी उष्णता देता नहीं है, उसी प्रकार आपके जीवन में कभी अनीति संभव नहीं है । परंतु आज धनसार ने आकर हमें कहा कि उसकी पुत्रवधू को धन्यकुमार ने रोक रखा है । हमें उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ, फिर भी आपके महल में किसी सेवक ने यह कृत्य किया हो तो उसे मुक्त कराने की कृपा करें ।''

महाजन प्रतिनिधि मंडल की यह बात सुनकर थोड़ा गुस्सा बताते हुए धन्य ने कहा, ``लगता है अभी-अभी नगर में कुछ लोग बहुत वाचाल हो गए हैं । वे सत्य-असत्य को जाने बिना ही दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप करने लग गए हैं । परंतु यह सब मुझे पता है और उन्हें योग्य दंड देने की योजना बना रहा हूँ ।''

इस प्रकार धन्यकुमार के अरुचिपूर्ण व्यवहार को देखकर वे व्यापारी एक-एक करके वहाँ से रवाना हो गए । बाहर आकर वे धनसार को ही ठपका देने लगे । ``भूल तुम्हारी ही है, अतः अब हम क्या कर सकते हैं ?''

धनसार निराश हो गया । आखिर सोच-विचारकर वह धन्यकुमार के महल के पास आया और जोर से चिल्लाने लगा, ``राजन् ! मेरी पुत्रवधू को छोड़ दो ।''

महल के गवाक्ष में बैठे धन्यकुमार ने यह दृश्य देखा । नौकरों को संकेतकर अपने पिता को महल में बुलवा दिया और उन्हें योग्य आसन पर बिठाकर उनके चरणों में नमस्कार कर बोला, ``पिताजी ! आप मेरे अपराध को क्षमा करें । मेरी इस बालचेष्टा से मन में दुःख न लगाएँ ।''

अब धनसार अपने पुत्र को पहिचान गए । उनके आश्चर्य का पार न रहा ।

धन्य की सूचना से धनसार को स्नान-विलेपन कराकर सुंदर वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत किया गया ।

इधर थोड़ी देर बाद धनसार की पत्नी शीलवती भी धन्य के महल के पास आई और अपने पति को मुक्त कराने के लिए प्रार्थना करती हुई करुण रुदन करने लगी ।

धन्यकुमार ने नौकरों को संकेत कर अपनी माता को भी महल में

बुलवा लिया और माँ के चरणों में नमस्कार कर उसका भी योग्य आदर सत्कार किया ।

धन्य को पहिचानकर माँ के आश्चर्य का पार न रहा ।

कुछ देर बाद अपने माता-पिता की शोध में धनदेव आदि भी आए...उन्हें भी महल में बुलवा लिया गया और उनका भी योग्य सत्कार-सम्मान किया गया ।

महासती सुभद्रा के लिए अंटसंट बोलने वाली तीनों भाभियों को थोड़ी शिक्षा देने की भावना से जब वे तीनों महल के पास आकर चिल्लाने लगीं तो धन्यकुमार की सूचना से महल के द्वार ही बंद कर दिए गए ।

वे तीनों अत्यंत दुःखी-दुःखी हो गईं । अपनी झोपड़ी में जाकर उन्होंने जैसे-तैसे रात व्यतीत की, फिर प्रातःकाल होने पर अत्यंत दुःखी बनी हुई वे शतानीक राजा के राजभवन में चली गईं और राजा को शिकायत करने लगीं कि इस धन्यपुर नगर के अधिपति ने हमारे पति व श्वसुर आदि को कब्जे में कर लिया है । अतः आप उन्हें मुक्त कराओ ।

उन तीनों स्त्रियों की इस प्रार्थना को सुनकर शतानीक राजा ने दूत द्वारा धन्यकुमार को संदेशा भिजवाया कि तुम्हारे जैसे के लिए इस प्रकार अन्याय करना उचित नहीं है, अतः जिन विदेशी लोगों को अपने कब्जे में रखा है, उन्हें मुक्त कर दो ।

दूत की बात सुनकर धन्यकुमार ने कहलाया, **``मैंने कभी सत्य मार्ग का लोप नहीं किया है । कदाचित् मैंने कुमार्ग का अनुसरण किया हो तो मुझे रोकने में कौन समर्थ है ?''**

धन्यकुमार के इस प्रत्युत्तर को सुनकर शतानीक राजा धन्य से लड़ने के लिए तैयार हो गया ।

शतानीक राजा ने अपनी सेना तैयार कर दी और उसने धन्यकुमार को युद्ध के लिए ललकारा ! धन्यकुमार भी युद्ध के लिए तैयार हो गया ।

दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गईं । युद्ध प्रारंभ हो गया ।

आखिर शतानीक के मंत्रियों ने सोचा, ``इस युद्ध का परिणाम अच्छा नहीं आएगा । जो धन्यकुमार इतना गुणवान और परोपकार परायण है, वह

इन विदेशी लोगों के साथ अन्याय कैसे करेगा ? इसमें जरूर कोई रहस्य होगा ।'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने राजा को युद्ध विराम के लिए प्रेरणा की और कहा, ``हमें धन्यकुमार के इस आचरण के पीछे रहे रहस्य को जानना चाहिए ।''

राजा की सहमति मिलते ही मंत्रियों ने उन स्त्रियों को बुलाकर पूछा, ``तुम कौन हो ? कहाँ से आई हो ? जो सत्य है, वह सब कह दो ।''

जब उन तीन स्त्रियों ने आदि से अंत तक की सारी घटनाएँ कह सुनाई तो मंत्रियों को समझते देर नहीं लगी कि यह धन्यकुमार तो उनका ही देवर है ।

मंत्रियों ने उन स्त्रियों को पूछा, ``अपने देवर को पहिचानने का कोई चिह्न ज्ञात है ?''

उन्होंने कहा, ``उनके दोनों पैरों में पद्म का निशान है ।''

वे मंत्री उन स्त्रियों को लेकर धन्यकुमार के पास आए ।

धन्यकुमार ने उनके आने का प्रयोजन पूछा ।

मंत्रियों ने कहा, ``इन स्त्रियों के अंतर-कलह के निवारण के लिए आए हैं ।

वे तीनों स्त्रियाँ धन्यकुमार को अच्छी तरह से पहिचान गईं और बोली, ``हे देवर ! आप हमें क्यों भूल गए ? क्या कल्पवृक्ष कभी किसी को दुःख देता है ?''

आखिर धन्यकुमार ने कपटलीला को छोड़कर उन तीनों भाभियों को अपने भवन में भेज दिया ।

धन्यकुमार ने युद्धविराम की घोषणा की । वह शतानीक राजा के पास आया । राजा ने भी उसका योग्य सत्कार कर कहा, ``तुमने अपनी भाभियों को इतना हैरान क्यों किया ?''

धन्यकुमार ने कहा, ``इन भाभियों ने ही हमारे भाई-भाई के बीच कलह कराया है । कलह करानेवाली इन भाभियों के अभिमान को दूर करने के लिए और उनकी वक्रता को दूर करने के लिए ही मैंने उन्हें थोड़ा कष्ट दिया

है । अन्य कोई कारण नहीं है । मेरे दिल में उनके प्रति लेश भी दुर्भाव नहीं है ।''

धन्य की यह बात सुनकर शतानीक को भी पूर्ण संतोष हो गया और वह भी अपने महल में चला गया ।

धन्यकुमार अपने माता-पिता, भाई-भाभी तथा दो पत्नियों के साथ आनंद पूर्वक दिन बिताने लगा ।

एक दिन उसने सोचा, **''आदमी की प्रकृति को बदलना अत्यंत ही कठिन है, अतः क्यों न अपने बड़े भाइयों को मुझ से ईर्ष्या कलह आदि हो, उसके पहले ही मैं अन्यत्र चला जाऊँ, इतने वैभव के बीच वे आनंद से तो रह सकेंगे !''** इस प्रकार विचार कर अपनी दोनों पत्नियों को साथ में लेकर विदेश भ्रमण की इच्छा से माता-पिता की अनुमति प्राप्तकर कोशांबी नगरी से निकल गया ।

10. संगीत कला

निरंतर प्रयाण करते हुए धन्यकुमार ने एक दिन **जितारि** महाराजा की राजधानी लक्ष्मीपुर में प्रवेश किया । जितारि महाराजा नाम से ही जितारि नहीं थे, उन्होंने अपने पराक्रम से अनेक दुश्मनों को भी परास्त कर दिया था ।

महाराजा के **गीतकला** नाम की राजपुत्री थी, जो संगीतकला में अत्यंत ही निपुण थी ।

एक बार गीतकला अपनी सखियों के साथ उद्यान में मधुर संगीत गा रही थी । उसके मधुर संगीत को सुनकर हिरण-हिरणी का टोला इकट्ठा हो गया । उत्साह में आकर गीतकला ने अपने गले में रहा सात सेरा हार किसी हरिणी के गले में डाल दिया । गीत बंद होते ही वह हरिणी वहाँ से भाग गई ।

महल में आने के बाद राजकुमारी ने अपने पिता महाराजा को कहा, **''पिताजी ! मेरे संगीत से आकर्षित हुई एक हरिणी के गले में मैंने अपना सातसेरा हार डाल दिया है । मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि जो पुरुष अपनी संगीत कला द्वारा उस हिरणी को आकर्षित कर उसके गले में रहे मेरे हार को निकालकर मुझे देगा, उसी व्यक्ति के साथ मैं पाणिग्रहण करूंगी ।''**

अपनी पुत्री की इस प्रतिज्ञा को सुनकर राजा असमंजस में पड़ गया ।

आखिर संगीतकला में निपुण ऐसे व्यक्ति की शोध के लिए उसने नगर में पटह बजवाया ।

कई दिन बीत गए, परंतु राजकुमारी की उस प्रतिज्ञा को वहन करने में कोई समर्थ नहीं था ।

धन्यकुमार अमूल्य वस्तु की भेंट लेकर राजदरबार में गया । राजा को प्रणाम कर उसने अमूल्य वस्तु राजा को भेंट धरी । राजा ने भी उसकी क्षेम-कुशलता पूछी ।

धन्यकुमार के तेजस्वी ललाट पट्ट आदि को देखकर राजा के मन में विशेष आकर्षण हुआ ।

बात ही बात में राजकुमारी की प्रतिज्ञा की बात निकली तो धन्यकुमार ने कहा, ``इसमें क्या बड़ी बात है, यह कार्य तो मैं आसानी से कर लूंगा ।''

राजा को बड़ी खुशी हुई ।

दूसरे ही दिन धन्यकुमार गंधर्व परिवार आदि के साथ वीणा लेकर जंगल में पहुँच गया ।

एक वृक्ष की छाया में बैठकर धन्यकुमार ने वीणा बजाना चालू किया ।

वीणा के मधुर स्वर से आकर्षित होकर चारों ओर से हिरणों के टोले धन्यकुमार के आसपास आकर इकट्ठे होने लगे ।

उस टोले में वह हिरणी भी आ गई जिसके गले में गीतकला ने अपना मूल्यवान हार डाला था ।

धन्यकुमार की वीणा के मधुर स्वर से वह हिरणी एकदम निकट आ गई । धन्यकुमार ने उसके गले में से वह हार निकाल लिया, उसके बाद वह वीणावादन करते हुए नगर की ओर आगे बढ़ा । उसके पीछे-पीछे हिरणों का टोला भी चलने लगा ।

राजमार्ग पर चारों ओर लोगों की भीड़ थी, परंतु कहीं भी क्षोभ पाए बिना वे हिरण संगीत की ध्वनि में मस्त बनकर धन्यकुमार के पीछे-पीछे चल रहे थे ।

धन्यकुमार ने नगर में प्रवेश किया । धन्यकुमार की इस अद्‌भुत संगीतकला को देखकर लोग दाँतों तले अंगुली दबाने लगे । थोड़ी ही देर में धन्यकुमार ने राजभवन में प्रवेश किया ।

वहाँ जाकर धन्यकुमार ने वह हार गीतकला को सौंप दिया ।

अपनी प्रतिज्ञा को पूरी हुई देखकर गीतकला ने धन्यकुमार के गले में वरमाला आरोपित की ।

जितारि महाराजा ने खूब धूमधाम के साथ अपनी पुत्री गीतमाला का पाणि-ग्रहण धन्यकुमार के साथ कराया ।

सभी प्रजाजन धन्यकुमार के रूप, सौभाग्य और बुद्धि-चातुर्य आदि की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ।

卐 卐 卐 卐 卐

जितारि महाराजा के **सुबुद्धि** नाम का मंत्री था, उस मंत्री के सरस्वती नाम की पुत्री थी, जो मानों साक्षात् सरस्वती की अवतार ही थी ।

उस राजकुमारी ने एक प्रतिज्ञा की थी **''जिसकी कही हुई बात मैं न समझ सकूँ और मेरी कही हुई बात जो अच्छी तरह से समझ सकता हो, उसी के साथ मैं पाणिग्रहण करूंगी ।''**

मंत्री-पुत्री की इस प्रतिज्ञा की बात सारे नगर में फैल गई...परंतु कोई भी व्यक्ति राजकुमारी को परास्त करने में समर्थ नहीं था ।

एक बार मंत्री-पुत्री ने अपनी बुद्धि की कुशलता बताने के लिए निम्न-लिखित दो श्लोक लिखकर राजसभा में भेज दिए -

गंगायां दीयते दानमेकचित्तेन भाविना ।
दाता सो नरकं याति, प्रतिग्राही न जीवति ।।1।।

अहो ! गंगा नदी में एकाग्र चित्त से दान देने वाला नरक में जाता है और दान लेने वाला जीवित नहीं रहता है ।

का सरोवराणं सोहा ? को अहिययरो दाण गुणे जाओ ?
अत्थगहणे को निउणो, मरुधरे केरिसा पुरिसा ? ।।2।।

सरोवर की शोभा क्या ? दान गुण में अधिक कौन हुआ ? धन उपार्जन करने में कौन निपुण है और मरुधर में कैसे लोग रहते हैं ?

राजसभा में बैठा कोई भी व्यक्ति इन प्रश्नों के जवाब देने में समर्थ नहीं था ।

धन्यकुमार ने जब ये दोनों श्लोक पढ़े तो उसने तुरंत ही प्रत्युत्तर लिखकर भेज दिया ।

उसने पहले प्रश्न के जवाब में लिखा-

``मीनो लाता गलो देयं, कन्ये ! दाताऽत्र धीवरः ।
फलं यज्जायते तत्र, लोके तदविदितं जने ।।

अर्थ : गंगा नदी के किनारे बैठकर एक मच्छीमार मछली पकड़ रहा है । काँटे में मांस का टुकड़ा लगाकर उसने वह काँटा नदी में डाला है । जो मछली उस मांस में लुब्ध बनती है, उसे मौत की सजा होती है और इस पाप के फलस्वरूप मांसयुक्त काँटा नदी में डालनेवाला मच्छीमार नरक में जाता है ।

दूसरे प्रश्न के जवाब में धन्य ने लिखा-**``सरोवर की शोभा जल से है, दानवीरों में अग्रणी बलिराजा है, धनग्रहण करने में वेश्या कुशल है और मरुधर में कंबलवाले लोग रहते हैं ।**

धन्यकुमार ने राजकुमारी के दोनों प्रश्नों के जवाब दे दिए और अपनी ओर से पूछा-

``न लगेन्नाग नारंगे निम्ब-तुम्बे पुनर्लगेत् ।
लगेत्युक्ते लगेन्नैव मेत्युक्ते च भृंश लगेत् ।।

राजकुमारी को अपने दोनों प्रश्नों के सही जवाब मिल गए । परंतु धन्यकुमार ने उसे जो प्रश्न पूछा, उसका वह जवाब नहीं दे पाई ।

आखिर राजकुमारी ने अपनी हार स्वीकार की और धन्यकुमार के द्वारा पूछे हुए प्रश्न का जवाब धन्यकुमार को ही पूछा ।

धन्यकुमार ने कहा, **'नाग' और 'नारंग' बोलते समय ऊपर-नीचे के होठ परस्पर नहीं लगते हैं, जबकि निंब और तुंब बोलते समय लगते हैं ।**

``लग'' कहने पर नहीं लगता है, जब कि ``मा'' कहने पर लगता है ।

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई देखकर **सरस्वती** ने धन्यकुमार के गले में वरमाला डाल दी ।

सुबुद्धि मंत्री ने बड़े धूमधाम के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण धन्यकुमार के साथ कराया ।

11. समस्या और समाधान

लक्ष्मीपुर नगर में बत्तीस करोड़ सुवर्ण मुद्राओं का मालिक पत्रमल्ल नाम का सेठ रहता था । उस सेठ के रामदेव, कामदेव, धर्मदेव और श्यामदेव नाम के चार पुत्र थे ।

पत्रमल्ल सेठ की उम्र हो चुकी थी, उन्हें अपने आयुष्य का कोई भरोसा नहीं था, अतः अपनी आत्म-समाधि के लिए तथा पीछे परस्पर पुत्रों में कलह-क्लेश न हो इसलिए उसने चारों पुत्रों को बुलाकर समझाते हुए कहा, **``मेरे दिल में तुम चारों के प्रति एक समान भाव है, किसी के प्रति मुझे पक्षपात नहीं है । मेरे जीवन का अब कोई भरोसा नहीं है, अतः मेरे जाने के बाद भी तुम सब परस्पर प्रेम से रहना । क्योंकि जिस घर में कलह होता है, उस घर से शांति चली जाती है । शांति के अभाव में संपत्ति का भी कोई मूल्य नहीं है ।**

``भविष्य में चारों भाइयों को अलग होना पड़े और धन की जरूरत पड़ जाय तो तुम चारों के नाम से अंकित चार कलश घर के चार कोनों में गाड़ दिए हैं । अपने-अपने नामवाले कलश ले लेना परंतु परस्पर झगड़ा मत करना ।''

अपने चारों पुत्रों को इस प्रकार की मीठी सलाह देकर...जगत् के सभी जीवों के साथ हार्दिक क्षमापना कर पत्रमल्ल ने सदा के लिए इस दुनिया से विदाई ले ली ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

इन चारों भाइयों का परिवार भी बढ़ गया । एक बार धन के बँटवारे की भावना से उन चारों ने घर के चारों कोने खोद डाले ।

बड़े पुत्र के नाम से जो कलश था, उसमें से कलम, कागज व अन्य लेखन-सामग्री निकली ।

दूसरे पुत्र के नाम के कलश में से मिट्टी-रेती आदि निकली । तीसरे पुत्र के नाम के कलश में से गाय-बैल आदि की हड्डियाँ निकलीं और चौथे पुत्र के नाम के कलश में से आठ करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ निकलीं ।

पहले तीन पुत्रों के कलशों में से अन्य-अन्य वस्तुएँ निकलीं, परंतु कुछ भी धन नहीं निकला, जब कि चौथे पुत्र के कलश में से सीधा धन निकला । सुवर्ण मुद्राएँ देखकर छोटा पुत्र खुश हो गया ।

कुछ भी धन नहीं मिलने से तीनों बड़े भाई नाराज हो गए और वे सब छोटे भाई से धन पाने के लिए लड़ने लगे । छोटा भाई भी अपने हिस्से में से कुछ भी देने के लिए राजी नहीं था ।

धन के लिए चारों भाइयों में झगड़े होने लगे । आखिर कुछ समाधान पाने के लिए वे चारों भाई राजदरबार में गए ।

चारों भाइयों के झगड़े का समाधान करने में अन्य कोई समर्थ नहीं था । आखिर यह मामला धन्यकुमार के पास आया ।

तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण धन्यकुमार ने उस समस्या का तत्काल समाधान कर लिया ।

सभी को योग्य समाधान देते हुए धन्य कुमार ने कहा, ``पिता ने सभी को 8-8 करोड़ सोना मोहर तुल्य वस्तुएँ प्रदान की हैं ।

``बड़े भाई के कलश में से जो कागज-कलम निकले हैं...इसका अर्थ है कि वह व्यापार कला में कुशल होने से व्यापार से प्राप्त संपत्ति उसे मिलेगी । वह रकम लगभग आठ करोड़ होनी चाहिए ।

``दूसरे भाई के कलश में से जो मिट्टी निकली है, उसका अर्थ है कि वह खेती में होशियार होने से जमीन और खेती से होनेवाली आय पर उसका अधिकार रहेगा, जिसका मूल्य लगभग 8 करोड़ होना चाहिए ।

``तीसरे पुत्र के कलश में से हड्डियाँ निकली हैं, इसका अर्थ है-तीसरा पुत्र पशुपालन में होशियार है, अतः पशु तथा पशु से होनेवाली आय पर उसका अधिकार रहेगा जिसकी कीमत 8 करोड़ होगी ।

``चौथा पुत्र छोटा एवं व्यापार आदि कला में होशियार नहीं होने से पिता ने उसे रोकड़ा ही धन दे दिया है ।''

धन्यकुमार के इस जवाब को सुनकर चारों पुत्र खुश हो गए ।

सभी ने पिता के द्वारा दिए संकेतानुसार वस्तुएँ ग्रहण कीं, जिनका मूल्य 8-8 करोड़ होता था ।

सभी ने धन्यकुमार की बुद्धिमत्ता की खूब प्रशंसा की ।

चारों भाइयों ने अपनी बहिन **लक्ष्मीवती** का विवाह धन्यकुमार के साथ करने का निश्चय किया ।

और एक शुभ दिन खूब उत्साह और उल्लास के साथ लक्ष्मीवती का विवाह धन्यकुमार के साथ हो गया ।

अपनी बहिन के लग्न प्रसंग में चारों भाइयों ने 1-1 करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ प्रदान कीं ।

12. कृपणता का कटु परिणाम

लक्ष्मीपुर नगर में धनकर्मा नाम का एक सेठ रहता था । **पापानुबंधी पुण्य के उदय के कारण उस धनकर्मा के पास अमाप संपत्ति थी । वह अत्यंत ही कृपण था । वह न तो अपनी संपत्ति का उपभोग करता था और न ही कभी दान करता था । वह धन के पीछे अत्यंत ही पागल था । रात और दिन धन को बढ़ाने में ही प्रयत्नशील था ।**

एक बार नगर में कुछ चारण इकट्ठे हुए । उनमें परस्पर चर्चाएँ होने लगीं । ईश्वरदत्त चारण बोला, ``मैंने अपनी बुद्धि के बल से अमुक राजा के हाथ से इतना दान लिया है ।''

तभी किसी ने कहा, ``तुम लक्ष्मीपुर के धनकर्मा सेठ के पास से कुछ दान ले आओ तो मैं समझूंगा कि तुम बहुत होशियार हो ।''

उसी समय ईश्वरदत्त चारण ने प्रतिज्ञा की कि, **``मैं धनकर्मा के हृदय को पिघलाकर जब तक अपनी ज्ञाति के सम्मेलन के खर्च जितना धन प्राप्त न कर लूँ, तब तक मैं चारण मंडल में से अपने दान का भाग नहीं लूंगा ।''**

इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर वह ईश्वरदत्त चारण धनकर्मा के पास आया और उसे उपदेश देते हुए कहने लगा, ``सेठजी ! **अपने आयुष्य का कोई भरोसा नहीं है । मृत्यु कभी भी आ सकती है । अतः मरने के पूर्व दान धर्म की**

आराधना कर लेनी चाहिए । इस जन्म में कुछ दान देंगे तो अगले जन्म में बहुत कुछ मिलेगा । अतः दान में विलंब नहीं करना चाहिए ।

भाग्य अनुकूल हो तो भी दान करना चाहिए, क्योंकि इससे पुण्य का बंध होता है और भाग्य प्रतिकूल हो तो भी दान कर लेना चाहिए, क्योंकि आखिर तो चला ही जानेवाला है ।

मधुमक्खी श्रम करके शहद इकट्ठा करती है, परंतु उसका स्वाद दूसरा ही लेता है, कृपण व्यक्ति श्रम करके धन इकट्ठा करता है, परंतु उसका उपभोग दूसरा ही करता है ।

भिखारी अपने द्वार पर आकर भीख नहीं माँगता है, बल्कि कुछ हितशिक्षा दे रहा है, ``मैंने गत भव में कुछ नहीं दिया तो आज मेरी यह हालत हुई है, तुम भी कुछ नहीं दोगे तो मेरे जैसी ही हालत होगी, अतः अवश्य दान करो ।''

इस प्रकार अनेक युक्तियों से समझाने पर भी धनकर्मा दान देने के लिए तैयार नहीं हुआ ।

दूसरे दिन वह चारण वापस आया और धनकर्मा से प्रार्थना करने लगा । ``मैं दुःखी हूँ...भूखा हूँ आप दयालु हो, मुझे कुछ दो ।'' इस प्रकार दीनता पूर्वक मांगने पर भी धनकर्मा का पत्थरहृदय पसीजा नहीं, आखिर बहुत आजिजी करने पर उसने इतना ही जवाब दिया, ``आज मैं बहुत व्यस्त हूँ, तुम कल आना ।''

ईश्वरदत्त ने सोचा, ``इसने कल आने का आश्वासन तो दिया है, एकदम मना नहीं किया है, चलो, कल आ जाऊंगा ।''

दूसरे दिन वापस जब वह चारण याचना करने लगा तो धनकर्मा ने कहा, ``मैंने तुझे क्या कहा था, **``कल''** दूंगा, तो फिर तू आज क्यों आ गया ?''

ईश्वरदत्त निराश हो गया ।

उसने सोचा, ``यह सेठ ऐसे ही दान देनेवाला नहीं है, अतः अब मुझे माया का आश्रय लेना होगा ।''

वह नगर छोड़कर बाहर आ गया । नगर बाहर आकर चंडिका के

मंदिर में जाकर उसने चंडिका देवी की साधना प्रारंभ की । मंत्र-जप के साथ उसने इक्कीस उपवास किए । देवी प्रसन्न होकर बोली- ``बोल, क्या चाहिए ?''

उसने कहा, ``मुझे रूप परावर्तनी विद्या और भूतकाल का स्मरण हो, ऐसी शक्ति दो ।''

देवी ने हाँ भर दी ।

एकबार धनकर्मा सेठ व्यापारिक कार्य से कुछ दिनों के लिए अपने घर से निकल गया ।

इधर ईश्वरदत्त ने अपनी विद्या के बल से धनकर्मा का रूप किया और वह अपने घर आकर अपने पुत्रों को कहने लगा, ``आज अच्छे शकुन नहीं होने से बीच मार्ग से ही मैं वापस घर लौट आया हूँ...परंतु वापस लौटते समय मुझे एक त्यागी-तपस्वी महात्मा के दर्शन हो गए ।

``मैंने उनको भावपूर्वक नमस्कार किया । उन्होंने मेरे कल्याण के लिए उपदेश देते हुए कहा, **``धन पुण्य से मिलता है, श्रम से नहीं । परंतु अज्ञानी जीव उस धन को पाने के लिए अनेक प्रकार के पापाचरण करते हैं और फिर भविष्य में महा दुःखी होते हैं ।**

पापानुबंधी पुण्य के उदय से लक्ष्मी प्राप्त भी हो जाय तो भी वह अच्छी नहीं है, क्योंकि वह जीव को पाप में ही जोड़ती है ।

धन का सच्चा उपयोग तो दान ही है, जो दान नहीं करता है, उसकी लक्ष्मी या तो स्वयं के उपभोग में आती है, या ऐसे ही नष्ट हो जाती है ।

``कृपण व्यक्ति की लक्ष्मी तो उसके लिए कुछ भी काम की नहीं, वह न तो दान कर पाता है और न ही उपभोग कर पाता है ।

``पृथ्वी का भूषण पुरुष है, पुरुष का आभूषण लक्ष्मी है, लक्ष्मी का भूषण सुपात्रदान है ।''

``अतः देवदुर्लभ ऐसे मानव जन्म को सफल बनाने के लिए दान आदि धर्म की अवश्य आराधना करनी चाहिए ।''

मुनि भगवंत की इस हितकारिणी देशना को सुनकर मेरा हृदय पिघल

गया है । मुझे लगा, ``मैंने अपना जीवन व्यर्थ ही खो दिया है, धन के पीछे मैंने पागलपन करके इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ा है, अब तो मेरा थोड़ा ही जीवन बाकी रहा है, अतः क्यों न दान आदि कर अपने शेष जीवन को सफल बना दूँ ।''

``हे बेटो ! आज तक मैंने धन के दान व उपभोग में खूब अंतराय किया, आज मुझे मेरी मूल समझ में आ गयी है, तुम इस धन का छूट से उपभोग करो और खूब दान करो ।''

इस प्रकार कहकर उस मायावी धनकर्मा ने गरीबों को दान देना चालू किया । उसके यहाँ याचकों की भीड़ बढ़ने लगी । कुछ ही दिनों में इसने सारी सुवर्ण मुद्राएँ खर्च कर दीं ।

नगर में चारों ओर धनकर्मा के दान की चर्चा होने लगी । उदार बने धनकर्मा की कुछ लोग प्रशंसा करने लगे । कुछ लोगों को धनकर्मा की इस उदारता से आश्चर्य भी हुआ । ``एक पैसे का भी कभी दान नहीं करनेवाला वह इतना दान कैसे कर रहा है, क्या उसका दिमाग तो बिगड़ नहीं गया है ।''

एक दिन वह नकली धनकर्मा अमूल्य वस्तु लेकर राजदरबार में गया । उसने राजा को अमूल्य वस्तु भेंट दी । राजा भी उसकी उदारता देख खुश हो गया । उदारता का कारण पूछने पर उसने कहा, ``यह सब मुनि-देशना के श्रवण का फल है ।''

सेठ की बात सुनकर राजा भी खुश हो गया ।

धनकर्मा की उदारता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी । जिस नगर में जिस दुकान पर असली धनकर्मा सौदा कर रहा था, उसके पास में खड़े दो याचक भी धनकर्मा की जी भरकर प्रशंसा कर रहे थे । इसी बीच तीसरा याचक आ गया ।

एक याचक ने उसे कहा, **``तू अपना दारिद्र्य दूर करना चाहता है तो लक्ष्मीपुर चला जा, वहाँ धनकर्मा नाम के अत्यंत ही उदार सेठ हैं, जो याचकों को मुंहमांगा धन देते हैं ।''**

यह बात जैसे ही असली धनकर्मा ने सुनी, उसके आश्चर्य का पार न रहा । वह सोचने लगा, ``मैं खुद धनकर्मा यहाँ हूँ तो ये लोग किसकी बात कर रहे हैं ?''

धनकर्मा ने उसको पूछा, ``तुम लोग किसकी बात कर रहे हो ? झूठ तो नहीं बोल रहे हो ?''

उन्होंने कहा, ``हम लक्ष्मीपुर के धनकर्मा की बात कर रहे हैं । उस सेठ ने अनेक गरीबों को निहाल कर दिया है ।''

धनकर्मा सोच में पड़ गया । सत्य वस्तु को जानने के लिए वह अपने गाँव की ओर चल पड़ा ।

असली धनकर्मा के आगमन के एक दिन पहले ही नकली धनकर्मा ने अपने पुत्र आदि को बुलाकर कहा, ``आजकल इस गाँव में कई धूर्त लोग आए हुए हैं, जो किसी का भी रूप धरके किसी के घर में घुस जाते हैं, अतः ऐसे धूर्त लोगों से तुम्हें सावधान रहना चाहिए ।'' इस सूचना के ठीक दूसरे ही दिन सच्चा धनकर्मा अपने गाँव में आया ।

उस धनकर्मा को देख लोग अचरज में पड़ गए । ``अरे ! यह धनकर्मा वापस अपने पूर्व वेष में कैसे आ गया ?''

असली धनकर्मा जैसे ही अपने घर पहुँचा तो पूर्व सूचनानुसार किसी ने उसका आदर बहुमान भी नहीं किया । वह अपने ही घर में घुसने लगा तो उसे बाहर ही रोक दिया और पूछा, `तुम किसके घर में घुस रहे हो ?'

वह कहने लगा, ``अरे ! तुम कौन हो मुझे रोकने वाले ! यह तो मेरा ही घर है । क्या तुम लोग मुझे भूल गए ?''

नौकरों ने कहा, ``हमारा धनकर्मा सेठ तो घर में है, तुम धूर्त हो और हमें ठगने आए हो, चले जाओ यहाँ से ।''

कुछ ही देर में आसपास से अनेक लोग इकट्ठे हो गए ।

असली धनकर्मा कहने लगा, ``मैं इस घर का मालिक हूँ ।''

लोग अचरज में पड़ गए । दोनों में असली कौन है ?

अंदर रहे धनकर्मा को भी बाहर बुलाया गया । दोनों के चेहरे रूप रंग आवाज सब कुछ मिलता-जुलता था ।

वे दोनों एक दूसरे पर आक्षेप करने लगे, ``मैं सच्चा हूँ...तुम झूठे हो ।''

नगर में चारों ओर चर्चाएँ होने लगीं । एक असली धनकर्मा है और दूसरा नकली । परंतु असली कौन और नकली कौन ? यह भेद करने में कोई समर्थ नहीं था ।

आखिर इस कलह के निवारण के लिए यह मामला राजदरबार में पहुँचा ।

राजा भी अचरज में पड़ गया । असली-नकली के भेद को जानने के लिए कुशल मंत्रियों ने उन्हें भूतकाल संबंधी कई अटपटे प्रश्न पूछे, परंतु उन दोनों ने सभी प्रश्नों के सही जवाब दिए ।

आखिर नगर में पटह बजवाया गया, **''जो बुद्धिशाली व्यक्ति असली-नकली धनकर्मा का भेद बतलाएगा, उसे राजा की ओर से बड़ा इनाम दिया जाएगा और उसके साथ धनकर्मा की पुत्री का विवाह कराया जाएगा ।''**

नगर में से एक भी व्यक्ति इस समस्या को सुलझाने के लिए तैयार नहीं हो पाया ।

जब यह पटह धन्यकुमार ने सुना तो उसने सोचा, ''अहो ! इसमें क्या बड़ी बात है !''

दूसरे ही दिन धन्यकुमार राजसभा में आ गया । उसने असली-नकली दोनों धनकर्मा को राजसभा में बुला लिया ।

दोनों धनकर्मा राजसभा में उपस्थित हो गए । धन्यकुमार ने कहा, **''इस जगत् में सत्य समान दूसरा कोई धन नहीं है ।** सत्य को जानने के लिए इन दोनों से दिव्य कराया जाएगा । जो सत्य होगा, वह आसानी से दिव्य कर पाएगा ।''

उसके बाद धन्यकुमार ने कहा, ''नलीवाला एक बहुत बड़ा कलश यहाँ बीच में स्थापित किया जाय ।''

धन्य की आज्ञानुसार एक बड़ा कलश वहाँ रख दिया गया ।

फिर धन्य ने कहा, ''इनमें से जो असली होगा, वह कलश की नली में से बाहर आ जाएगा ।''

इस बात को सुनकर असली धनकर्मा चिंता में पड़ गया । ''अहो ! यह कार्य तो मेरे लिए असंभव है ।''

परंतु नकली धनकर्मा धन्यकुमार की इस बात को सुनकर खुश हो गया । उसने सोचा, ``मेरे पास दैविक सहायता है, अतः मेरे लिए क्या अशक्य है ?''

धन्यकुमार ने उन दोनों को कहा, ``तुम इस प्रकार बोलो, ``यदि मैं सच्चा धनकर्मा हूँ तो इस नली में से बाहर निकलने के लिए देवता मुझे सहायता करें ।''

थोड़ी ही देर में जो नकली धनकर्मा था, वह अपनी दैविक सहायता से उस कलश की नली में से बाहर आ गया और जो असली धनकर्मा था, वह ऐसे ही बाहर खड़ा रहा ।

उसी समय धन्यकुमार ने नकली धनकर्मा को चोटी से पकड़ लिया ।

चोटी पकड़े जाने से नकली धनकर्मा कमजोर हो गया ।

उसी समय धन्यकुमार ने कहा, ``राजन् ! यह नकली धनकर्मा है ।''

राजा ने तुरंत ही उस नकली धनकर्मा को फाँसी पर चढ़ा देने का आदेश कर दिया ।

उस नकली धनकर्मा ने अपना मायावी रूप बदलकर अपना मूल स्वरूप प्रगट किया ।

राजा ने उसको पूछा, ``तुमने ऐसा धंधा क्यों किया ?''

उसने कहा, ``राजन् ! मैंने अपनी चारण मंडली के आगे प्रतिज्ञा की थी कि इस धनकर्मा से कुछ दान प्राप्त कर अपने ज्ञातिजनों को भोजन दूंगा ।''

``मैंने इस धनकर्मा को दान देने के लिए खूब-खूब प्रेरणाएँ कीं, परंतु यह किसी तरह दान देने के लिए राजी नहीं था, इसीलिए मैंने दैवी विद्या के बल से इसके धन का दानादि कार्यों में सदुपयोग कराया है ।''

ईश्वरदत्त चारण की यह बात सुनकर राजा ने उसे बंधनमुक्त कर दिया ।

राजा ने असली धनकर्मा को भी दानादि धर्म की आराधना के लिए योग्य प्रेरणा की ।

धनकर्मा ने भी अपनी पुत्री **गुणमालिनी** का पाणिग्रहण धन्यकुमार के साथ कराया ।

कुछ दिनों तक लक्ष्मीपुर नगर में राजा आदि का आतिथ्य स्वीकार कर धन्यकुमार अपनी छह पत्नियों के साथ राजगृही नगरी की ओर आगे बढ़ा ।

बीच मार्ग में भी धन्यकुमार को खूब मानसम्मान मिला ।

इस प्रकार आगे बढ़ते हुए धन्यकुमार ने एक दिन राजगृही नगरी में प्रवेश किया ।

श्रेणिक महाराजा को जैसे ही अपने दामाद के आगमन के समाचार मिले, उसने भी धन्यकुमार का भव्य स्वागत किया ।

अपने पीहर गई हुई सोमश्री और कुसुमश्री भी धन्यकुमार के पास आ गईं ।

श्रेष्ठ महल में रहता हुआ धन्यकुमार मानव देह में भी दिव्य सुखों का अनुभव करने लगा ।

13. देशना-श्रवण

इधर कोशांबी से धन्यकुमार के चले जाने के बाद धनसार आदि परिवार की पुनः बुरी हालत हो गई । वे पुनः निर्धन हो गए । पापोदय के कारण उनकी सारी संपत्ति नष्ट हो गई ।

एक बार पुनः धनसार ने अपने पुत्रों के आगे धन्यकुमार की प्रशंसा की तो वे कठोर शब्दों में पिता का ही तिरस्कार करने लगे और बोले, **''अभी भी आपको उसी से प्रेम है ? यदि वह गुणवान होता तो आपको छोड़कर क्यों चला जाता ? सभी का भरण-पोषण तो हम करते हैं और आप उसी की प्रशंसा करते हो ?''**

कुछ दिनों के बाद उन्हें अपना पेट भरना भी मुश्किल हो गया । वे अपनी स्त्रियों के आभूषण आदि बेचकर अपना जीवन निर्वाह करने लगे ।

आखिर कोशांबी छोड़कर मालवा देश की ओर आगे बढ़े । वे क्रमशः मालवा देश में पहुँच गए । वहाँ जाकर वे एक किसान के यहाँ नौकरी करने लगे ।

एक बार वे अधिक लाभ कमाने की इच्छा से बैलगाड़ी में अनाज भरकर राजगृही नगरी में गए...परंतु वहाँ पर भी उन्हें कोई विशेष फायदा

नहीं हुआ । धन्यकुमार बड़े आडम्बर के साथ में राजसभा से अपने महल की ओर जा रहा था, तभी अचानक उसने अपने पिता व भाइयों को देखा ।

वह सोचने लगा, इतनी संपत्ति छोड़कर मैं यहाँ आया था, वापस उन लोगों की यह हालत हो गई ? कर्म की गति बड़ी विचित्र है । उसे बदलने की ताकत अन्य किसी में नहीं है ।

धन्यकुमार अपने महल में आ गया और उसने अपने सेवकों को आदेश देकर उन्हें महल में बुलाया ।

पहले तो वे घबरा गए और अपने अपराध आदि की माफी माँगने लगे । परंतु जब सेवकों ने कहा, **``आपको डरने की जरूरत नहीं है, हमारा स्वामी तो किसी को दुःख में मदद ही करता है ।''**

इस प्रकार आश्वासन देने पर वे तीनों भाई धन्यकुमार के महल में आए । वे धन्यकुमार को पहिचान नहीं पाए...परंतु धन्यकुमार उन्हें पहिचान गया । उसने बड़े भाई के चरणों में नमस्कार किया और पूरे परिवार को वापस अपने महल में बुला लिया ।

धनसार पुनः अपने सभी पुत्र-पुत्रवधुओं के साथ धन्यकुमार के महल में रहने लगा ।

कुछ ही दिनों के बाद ईर्ष्या से जल रहे तीनों बड़े भाइयों ने धन्यकुमार को कहा, **``तुम हम से छोटे हो, अतः तुम्हारे साथ रहने में हमको लज्जा आती है । हम अलग रहना चाहते हैं, अतः हमें अपना भाग दे दो ।''**

धन्य ने कहा, ``तुम्हें जैसे शांति हो वैसे कर सकोगे ।''

धन्यकुमार ने खजांची को कहा, ``इन भाइयों को 14-14 करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ दे दो ।''

बड़े भाइयों के इस विचित्र व्यवहार को देखकर लोग उनकी निंदा और धन्यकुमार की प्रशंसा करने लगे ।

जैसे ही वे तीनों बड़े भाई धन्य के खजाने में से धन उठाने लगे उसी समय अधिष्ठायक देव ने आकर उन्हें रोक दिया ।

उन्हें ठपका देते हुए देव ने कहा, ``अरे दुष्टो ! धन्य के इस धन पर तुम्हारा क्या अधिकार है ? यह धन तो धन्य के उपभोग के लिए है । यदि तुम

धन्य के साथ रहोगे तो उसकी कृपा से इस धन का उपभोग कर सकोगे, परंतु धन्य को छोड़कर तुम इस धन का उपभोग नहीं कर पाओगे । चार-चार बार तुम्हें कटु अनुभव हो गया फिर भी तुम सुधरते नहीं हो ? यदि तुम्हें सुखी होना हो तो उसी की सेवा करो ।''

इस प्रकार देवता के ठपके को सुनकर वे तीनों भाई सावधान हो गए और अपनी भूल को स्वीकार कर धन्य के आगे माफी माँगने लगे ।

उदार दिलवाले धन्य ने उन्हें लेश भी ठपका नहीं दिया ।

धन्यकुमार अपने माता-पिता व बड़े भाइयों के साथ आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

एक बार अपने विशाल परिवार के साथ आचार्यश्री धर्मघोषसूरिजी म. राजगृही नगरी के बाहर पधारे ।

पूज्य आचार्य भगवंत के आगमन को सुनकर धनसार भी अपने पुत्र आदि परिवार के साथ आचार्य भगवंत के पास आया ।

आचार्य भगवंत ने भी उन सबके कल्याण के लिए धर्मदेशना दी और दानधर्म की महिमा का वर्णन किया ।

धर्मदेशना के अंत में धनसार सेठ ने हाथ जोड़कर पूछा, **''भगवंत ! किस कर्म के उदय के कारण धन्यकुमार को अमाप संपत्ति की प्राप्ति हुई और किस कर्म के उदय के कारण मेरे धनदत्त आदि तीनों पुत्र होशियार होने पर भी...संपत्ति प्राप्त करके भी निर्धन बने रहे ।''**

धनसार के इस प्रश्न को सुनकर आचार्य भगवंत ने धन्यकुमार आदि के पूर्वभव का वर्णन करते हुए कहा-**''इसी भरत क्षेत्र के प्रतिष्ठानपुर नगर में एक अत्यंत ही गरीब बुढ़िया रहती थी, उस बुढ़िया के इकलौता बेटा था । वह छोटा लड़का जंगल में पशुओं को चराकर अपना जीवन निर्वाह करता था ।**

एक बार किसी पर्व के दिन उस बालक ने घर-घर में अपने बाल-मित्रों को खीर खाते हुए देखा । खीर खाकर सभी मित्रों ने उससे कहा, ''आज तो पर्व का दिन होने से सिर्फ खीर ही खाई जाती है, अन्य भोजन नहीं करने का है ।''

वह बालक अपने घर जाकर माँ से खीर मांगने लगा । माँ ने कहा,

``बेटा ! रोटी भी बड़ी मुश्किल से मिलती है तो मैं तेरे लिए खीर कहाँ से लाऊँ ?''

खीर नहीं मिलने से बालक जोरों से रोने लगा । बालक को रोता देख, उसकी माँ भी रोने लगी । माँ-बेटे को रोते देख आस पास की पड़ोसिन स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं ।

रोने का कारण पूछने पर बुढ़िया ने कहा, ``मेरा बेटा खीर खाने के लिए जिद कर रहा है । जब रोटी भी बड़ी मुश्किल से मिल पाती है तो मैं खीर कहाँ से बनाऊँ ?''

बुढ़िया की यह बात सुनकर उन स्त्रियों को दया आ गई । किसी ने उस बुढ़िया को दूध दिया, किसी ने चावल दिए और किसी ने शक्कर दी ।

बुढ़िया ने अपने बेटे की इच्छा पूर्ति के लिए खीर बना दी ।

बुढ़िया ने बालक को खीर परोसी । फिर वह बुढ़िया किसी प्रयोजन से पड़ोसिन के घर चली गई ।

इधर वह बालक अपनी थाली में रही खीर को ठंडी कर रहा था, तभी मासक्षमण के एक तपस्वी महात्मा उस मोहल्ले में पधारे । महात्मा को देख वह बालक एकदम खुश हो गया । उसने अत्यंत ही आदर व बहुमानपूर्वक महात्मा को गोचरी के लिए विनती की । बालक के भाव देखकर वे महात्मा उसके घर पधारे । उस बालक ने अत्यंत ही आदर भाव से, मुनि के मना करने पर भी वह सारी खीर महात्मा को वहोरा दी । महात्मा **धर्मलाभ** देकर चले गए ।

वह बालक उस दान धर्म की पुनः पुनः अनुमोदना करने लगा । वह सोचने लगा, ``अहो ! आज मेरा महान् भाग्योदय है...ऐसे तपस्वी महात्मा की भक्ति करने का मुझे सुंदर अवसर लगा है । सचमुच, आज बादल बिना ही वृष्टि हो गई है ।'' इस प्रकार पुनः पुनः अनुमोदना करने से उसने अपने पुण्य का गुणाकार कर दिया ।

वह बालक थाली को चाटने लगा । थोड़ी ही देर बाद वहाँ आई माँ ने बालक को थाली चाटते हुए देखा तो वह सोचने लगी, ``मेरा बेटा थाली भरकर खीर खा गया फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह थाली चाट रहा

है । क्या वह रोज इतनी भूख सहन करता है ?'' इस प्रकार विचार कर उसने थाली में दूसरी बार खीर परोसी ।

बालक ने वह खीर खा ली ।

रात्रि में अजीर्ण हो जाने से उस बालक की मृत्यु हो गई । वह बालक ही मरकर तुम्हारा पुत्र धन्यकुमार बना है । मुनिदान के प्रभाव से उसे यह अमाप संपत्ति की प्राप्ति हुई है ।

धनदत्त आदि के पूर्व भव का वर्णन करते हुए आचार्य भगवंत ने कहा, **''सुग्राम नाम के गाँव में अत्यंत निर्धन तीन मित्र रहते थे । धन के अभाव में वे जंगल में से लकड़ी काटकर शहर में बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते थें ।**

एक बार वे तीनों अपने घर से भोजन सामग्री लेकर जंगल में लकड़ियाँ काट रहे थें तभी दोपहर के समय में मासक्षमण के पारणे के लिए नगर में गोचरी के लिए जा रहे क्षमासार नाम के मुनि को देखा ।

मुनि को देखते ही उन्होंने सोचा, ''अहो ! ये मुनि दूर जंगल से आ रहे हैं । भयंकर गर्मी में वे गाँव में कैसे जाएंगे ? गाँव में भी उन्हें निर्दोष भिक्षा मिलेगी या नहीं ? क्यों न हमारे पास रहा भोजन उन्हें दे दें ।'' इस प्रकार विचार कर उन तीनों ने अपने पास रहा भोजन महात्मा को दान में दे दिया ।

गोचरी वहोरकर ''धर्मलाभ'' की आशिष देकर महात्मा जंगल में चले गए ।

सायंकाल में उन तीनों को अत्यंत भूख लगी । पास में खाने की सामग्री थी नहीं, घर आने पर आहार नहीं मिलने से सोचने लगे, ''अरे ! मुनिदान का फल (भूखा मरना) तो हमें प्रत्यक्ष मिल गया । पता नहीं आगे क्या होगा ? उन महाराज ने हमें ठग लिया । उन को तो तप का अभ्यास होने से वे भूख सहन कर सकते थे, परंतु हमें तो भूख सहन नहीं हो रही है । सब कुछ देकर हमने मूर्खता ही की है ।''

इस प्रकार दान देकर भी उन्होंने चार बार पश्चात्ताप किया । इस पश्चात्ताप के फलस्वरूप वे अपने दान के वास्तविक फल को हार गए ।

वे तीनों मरकर धनदत्त आदि तुम्हारे पुत्र हुए । लक्ष्मी मिलने पर भी वे निर्धन बने रहे ।

धन्यकुमार ने अपने पूर्व भव में मुनि को जब खीर का दान दिया था,

तब पड़ोसिन स्त्रियों ने उसके दान की अनुमोदना की थी, उस अनुमोदना के फलस्वरूप ही वे आठों स्त्रियाँ धन्य की आठ पत्नियाँ बनीं ।

``अपने पूर्व भव में इस सुभद्रा ने धन के गर्व में अपनी सखी को गुस्से में आकर कहा था, ``अरे ! दासी ! तू मिट्टी को वहन कर ।'' इस तिरस्कार के पाप के कारण, शालिभद्र की बहिन के रूप में पैदा हुई सुभद्रा को मिट्टी वहन करनी पड़ी थी ।''

इस प्रकार गुरु भगवंत के मुख से अपने पूर्व भव को जानकर सभी के दिल में शुभ भाव उत्पन्न हुए ।

धनसार ने खड़े होकर गुरुदेव को चारित्ररत्न प्रदान करने के लिए विनती की ।

उसी समय धनदत्त आदि तीन पुत्र भी दीक्षा के लिए तैयार हो गए ।

धनसार आदि चारों ने भागवती दीक्षा अंगीकार की और धन्यकुमार ने श्रावक धर्म स्वीकार किया ।

14. संयम की कठोर साधना

महावीर प्रभु की एक ही धर्मदेशना के श्रवण से शालिभद्र को सांसारिक भोग तुच्छ प्रतीत होने लगे ।

वह अपने घर आया और माता के पास दीक्षा के लिए अनुमति माँगने लगा ।

शालिभद्र की दीक्षा की बात सुनकर मोहवश माता मूर्च्छित होकर भूमि के ऊपर ढल पड़ी । दासियों ने जब जल का छिड़काव किया तो वह करुण विलाप करती हुई बोली, **``बेटा ! तू ने यह क्या बात कही है ? तेरा शरीर तो अत्यंत ही कोमल है, इस शरीर से संयम का पालन कैसे होगा ? अति दृढ़ शरीर वाले के लिए भी संयम का पालन दुष्कर है तो तू इस कोमल शरीर से कैसे संयम पालन कर पाएगा !''**

माँ की बात सुनकर शालिभद्र ने कहा, ``माताजी ! जिसे मोक्ष की लगन लगी हो उसके लिए संयम के कष्ट कुछ भी नहीं हैं । संसार के क्षणिक सुखों को पाने के लिए संसार में भी आत्मा कितने कष्ट सहन करती है !''

माँ ने शालिभद्र को संयम मार्ग से रोकने के लिए खूब प्रयत्न किया,

परंतु शालिभद्र अपने निश्चय से लेश भी विचलित नहीं हुआ ।

आखिर माँ ने कहा, ``बेटा ! संयम ही लेना है तो तू उसका थोड़ा थोड़ा अभ्यास कर ।''

शालिभद्र ने माँ की बात मान ली और वह प्रतिदिन अपनी एक-एक स्त्री का त्याग करने लगा ।

इधर धन्यकुमार की आठों स्त्रियाँ धन्यकुमार को स्नान करा रही थीं । उस समय सुभद्रा अपने पति के मस्तक में तैल आदि डाल रही थी । अचानक उसे भाई की याद आ गई । वह सोचने लगी । अहो ! मेरा भाई रोज एक-एक स्त्री का त्याग कर रहा है...कुछ ही दिनों बाद वह दीक्षा ले लेगा । मेरे भाई का मुझे सदा के लिए वियोग हो जाएगा । इस प्रकार सोचते-सोचते उसकी आँखों में आँसू आ गए । आँसू की वे बूंदें धन्यकुमार के स्कंध पर गिरीं । उसने ऊपर नजर की ।

सुभद्रा की आँखें अश्रुभीनी देख धन्यकुमार ने कहा, ``प्रिये ! आज तेरी आँखों में आँसू क्यों ? क्या किसी ने तेरी आज्ञा का भंग किया है ? अथवा किसी ने तेरा अपमान किया है ? या तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है ? इतनी सुख-सामग्री के बीच भी तुझे क्या कष्ट आ पड़ा है जिस कारण आज तेरी आँखों में आँसू दिखाई दे रहे हैं ? तूने तो पहले मिट्टी के भार को भी वहन किया है । तू सहनशील है, फिर तेरी आँखों में ये आँसू क्यों ?''

सुभद्रा ने कहा, ``स्वामीनाथ ! ये किसी दुःख या वेदना के आँसू नहीं हैं । परंतु मेरा भाई संसार-सुख से उद्विग्न बना है । वह रोज एक-एक स्त्री का त्याग कर रहा है-कुछ ही दिनों बाद वह दीक्षा ले लेगा । बस, उसके वियोग के ये आँसू हैं ।''

शालिभद्र के बारे में यह सुनकर धन्य ने कहा, ``तेरा भाई दीक्षा ले रहा है, वह बहुत ही अच्छी बात है, परन्तु वह रोज एक एक स्त्री का त्याग कर रहा है । **यह सुनकर मुझे लगता है कि वह कायर है, कायर ! सत्त्वशाली पुरुष तो जो मन में निर्धारित कर लेते हैं, वह करके ही रहते हैं । शुभ कार्य तो यथाशीघ्र कर लेना चाहिए । उसमें विलंब करना उचित नहीं है ।''**

अपने पति की यह बात सुनकर सुभद्रा और अन्य स्त्रियों ने भी कहा, ``स्वामीनाथ ! **भुजाओं के बल पर सागर को तैरना आसान है किंतु चारित्र धर्म**

का पालन करना अत्यंत ही दुष्कर है । संसार में अनेक प्राणी दुःखी हैं, परंतु दीक्षा के लिए कौन तैयार होता है ? अग्नि-पान की तरह दीक्षा का पालन भी अत्यंत कठिन ही है । आपको यह दीक्षा सुगम लगती हो तो आप इन भोगों को छोड़ दीक्षा के लिए क्यों तैयार नहीं होते हो ?''

अपनी पत्नियों के इस कटाक्ष को सुनकर धन्य ने कहा, ``तुम धन्यवाद की पात्र हो, कुलवती स्त्रियों को छोड़ त्याग की बात अन्य कौन स्त्रियाँ कर सकती हैं । मैं तो शालिभद्र से भी ज्यादा भाग्यशाली हूँ ।'' **``स्त्रियाँ पुरुष के लिए बंधन रूप बनती हैं, जबकि तुम मुझे सहायक बन रही हो ।''**

उसी समय धन्य दीक्षा के लिए तैयार हो गया । उसने उसी दिन से आठ दिन के लिए परमात्म-भक्ति महोत्सव चालू करा दिया । दीन-दुःखी को दान देना चालू किया ।

सुभद्रा आदि आठों स्त्रियाँ भी धन्य के साथ दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गईं ।

सुभद्रा ने अपनी माता से बात की ! पहले तो मोहवश होकर वह भी सुभद्रा को दीक्षा नहीं लेने के लिए समझाने लगी । परंतु उसकी दृढ़ता को देख उसने भी उसे अनुमति दे दी ।

और एक शुभ दिन बड़े आडम्बर के साथ धन्यकुमार ने दीक्षा ग्रहण करने के लिए अपने घर से प्रयाण किया । धन्यकुमार की आठों स्त्रियाँ भी अपने पति के मार्ग का अनुसरण करने लगीं ।

धन्यकुमार की दीक्षा के समाचार जब श्रेणिक महाराजा को मिले तो उसे खूब आश्चर्य हुआ । उसने अपनी पुत्री के बारे में जाँच की तो पता चला कि वह भी दीक्षा के लिए तैयार हो गई है ।

श्रेणिक ने सोचा, ``धन्यकुमार धन्यवाद का पात्र है । मेरी पुत्री का उसके साथ हुआ संबंध भी सफल हुआ है । **पति के संयम मार्ग में पत्नी विघ्नकारक बनती है, जबकि यहाँ सहायक बन रही है ।''**

धन्यकुमार के इस अद्‌भुत पराक्रम, अद्‌भुत त्याग की सभी नगर-वासी भूरि भूरि अनुमोदना करने लगे । क्रमशः आगे बढ़ता हुआ धन्यकुमार गुणशैल चैत्यवन में आया ।

इधर धन्यकुमार की दीक्षा की बात सुनकर शालिभद्र भी शीघ्र दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गया । उसने पुनः माता को समझाया ।

शालिभद्र की अतिदृढ़ता देख माता ने उसे दीक्षा के लिए अनुमति दे दी ।

श्रेणिक महाराजा और गोभद्र देव ने शालिभद्र की दीक्षा का भव्य महोत्सव किया और वह भी बड़े आडंबर के साथ महावीर प्रभु के चरणों में उपस्थित हो गया ।

उन दोनों ने प्रभु को भागवती दीक्षा प्रदान करने के लिए विनती की ।

प्रभु ने कहा, ``जैसे आत्महित हो वैसा करना चाहिए ।''

प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्यकर वे दोनों ईशान कोण में गए । अशोक वृक्ष के नीचे उन दोनों ने अपने शरीर पर रहे सारे आभूषण उतार दिए ।

कुलवृद्धाओं ने उन्हें शुभाशिष प्रदान करते हुए कहा, ***''तुम उत्तम कुल में पैदा हुए हो । चारित्र का पालन अतिदुष्कर है । यह चारित्र, गंगा के प्रवाह में सम्मुख जाने तुल्य है । असिधारा पर चलने और लोहे के चनें चबाने से भी यह चारित्रपालन अतिदुष्कर है, अतः जिस उल्लास से यह चारित्र अंगीकार कर रहे हो, उसी उत्साह से इस चारित्र धर्म का पालन करना ।''***

उसी समय उन दोनों ने पंचमुष्टि लोच किया । उसके बाद श्रेणिक और अभयकुमार द्वारा दिए साधु वेष को स्वीकार कर प्रभु महावीर के पास आए । प्रभु ने उन दोनों और सुभद्रा आदि आठों स्त्रियों को भागवती दीक्षा प्रदान की ।

प्रभु ने शालिभद्र और धन्य मुनि स्थविर मुनि को सौंप दिए ।

दीक्षा अंगीकार कर वे दोनों तप-त्याग और संयम की निर्मल साधना करने लगे । इस प्रकार अप्रमत्त भाव से इच्छाओं को जीतते हुए मासक्षमण-दो मासी-तीन मासी और चार मासी उपवास करने लगे । इस प्रकार कठोर तप पूर्वक संयम की साधना करते हुए उन्हें बारह वर्ष बीत गए ।

महावीर प्रभु का राजगृही नगरी में आगमन हुआ । बारह वर्ष तक अन्य अन्य क्षेत्रों में विचरण कर मासक्षमण तप के पारणे में शालिभद्र और धन्य मुनि प्रभु के चरणों में उपस्थित हुए और प्रभु को विनय पूर्वक प्रणाम करने लगे ।

भिक्षा का समय होने पर प्रभु ने कहा, **``आज अपनी माता के हाथ से तुम्हारा पारणा होगा ।''** प्रभु के वचन में संदेह को कोई स्थान नहीं है, अतः वे दोनों मुनि राजगृह नगरी में क्रमशः आगे बढ़ते हुए भद्रा माता के महल के पास आए और उन्होंने ``धर्मलाभ'' कहा । परंतु किसी ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया ।

इधर भद्रामाता को जैसे ही समाचार मिले कि आज शालिभद्र और धन्य मुनि प्रभु के साथ राजगृही में पधारे हैं तो वह सोचने लगी । ``मैं प्रभु के पास जाकर दोनों मुनियों को भिक्षा के लिए विनती करूंगी और उनकी उत्तम द्रव्यों से भक्ति करूंगी ।'' इन विचारों में खोई होने के कारण भद्रामाता अपने द्वार पर आए पुत्र मुनि को नहीं पहिचान पाई ।

शालिभद्र व धन्य मुनि कुछ क्षण तक वहाँ रुककर लौट गए ।

मासक्षमण के पारणे में भिक्षा नहीं मिलने पर भी वे लेश भी आकुल-व्याकुल नहीं हुए । मन में किसी प्रकार का दुर्ध्यान या दुर्भाव नहीं आया । अति परिचित व्यक्ति भी उन्हें पहिचान नहीं पाए...उनकी ओर से भी कोई आदर-सत्कार नहीं मिला तो भी उन्हें दुर्ध्यान नहीं हुआ ।

``आहार मिले तो संयमवृद्धि और न मिले तो तपोवृद्धि'' के प्रभुवचन को आत्मसात् किए हुए दोनों मुनियों की कोई अपूर्व ही समता थी ।

भद्रामाता के महल से जब वे वापस लौट रहे थे, तब बीच मार्ग में उन्हें एक बुढ़िया मिली जो दही बेचने के लिए नगर में जा रही थी ।

शालिभद्र मुनि को देखते ही उस बुढ़िया का हृदय प्रेम से भर आया ।

उसने महात्मा को भिक्षा लेने के लिए विनती की । बुढ़िया के पास सिर्फ दही था । निर्दोष जानकर दोनों मुनियों ने दही बहोरा !

दही बहोरकर वे प्रभु के पास आए । प्रभु के पास आकर प्रभु को वंदन कर शालिभद्र ने पूछा, ``प्रभो ! गोचरी जाने के पूर्व आपने कहा था कि माँ के हाथ से पारणा होगा, परंतु आपके कथन का भाव मैं समझ नहीं पाया ?''

प्रभु ने कहा, ``शालिभद्र ! आज तुझे जिस स्त्री ने दही वहोराया था, वह गत भव की तुम्हारी माता थी ।''

प्रभु ने गत भव का सारा वृत्तांत सुना दिया ।

शालिभद्र व धन्नाजी ने मात्र दही से मासक्षमण का पारणा किया-

तत्पश्चात् कर्म की विचित्रता को जानकर दोनों ने अनशन व्रत स्वीकार करने के लिए प्रभु से प्रार्थना की ।

उनकी भावना जानकर प्रभु ने सहर्ष सहमति प्रदान की ।

शालिभद्र और धन्नाजी मुनि वैभारगिरि पर्वत पर चढ़ गए और वहाँ जाकर उन्होंने पादपोपगमन अनशन स्वीकार किया ।

शालिभद्र व धन्नाजी के अनशन व्रत स्वीकार करने के बाद इधर शालिभद्र की माता प्रभु के पास आई और बोली, ``शालिभद्र और धन्य मुनि कहाँ हैं ?

प्रभु ने कहा, ``मासक्षमण के पारणे में वे दोनों मुनि तुम्हारे आवास पर आए थे, परंतु वहाँ तुम उन्हें पहिचान नहीं पाई ! वे आहार लिये बिना ही वापस लौट आए ।'' बीच मार्ग में गत भव की माता ने उन्हें दही बहोराकर लाभ लिया ।

वे दोनों मुनि दही से पारणा करके वैभारगिरि पर्वत पर गए हैं । वहाँ उन्होंने पादपोपगमन अनशन स्वीकार किया है ।''

महावीर प्रभु के मुख से इस वृत्तांत को जानकर भद्रा माता वैभारगिरि पर्वत पर चली गई । अपने पुत्रों को अनशन स्वीकार किए देखकर करुण कल्पांत रुदन करने लगी ।

``अहो ! मेरे घर आए अपने पुत्र मुनि को भी मैं पहिचान नहीं पाई । अहो ! मुझे धिक्कार हो ।''

``यद्यपि तुमने संसार का त्याग कर दिया था फिर भी मुझे आशा थी कि तुम मुझे अपने दर्शन द्वारा आनंद प्रदान करोगे, परंतु देहत्याग के ध्येय से प्रारंभ किए अनशन व्रत के द्वारा मेरी उस आशा पर भी पानी फिर गया है ।''

इस प्रकार भद्रा माता को विषादग्रस्त देखकर उसे आश्वासन देते हुए श्रेणिक और अभय ने कहा, **``तुम्हें इस प्रकार विषाद करना योग्य नहीं है । स्त्रियाँ अनेक पुत्रों को जन्म देती हैं, परंतु शालिभद्र जैसे पुत्ररत्न को जन्म देने का तुझे परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है । तू तो रत्नकुक्षिधारिका बनी है ।**

``तुम्हारे पुत्र ने तो चक्रवर्ती से भी बढ़कर दिव्य सुखों का अनुभव किया है । सुवर्ण व रत्नों के आभूषणों को निर्माल्य समझकर दूसरे दिन उसका

उपभोग नहीं करना, यह आजतक कभी सुना नहीं है। परंतु तुम्हारे पुत्र ने ये दिव्य सुख भोगे हैं।

''इतना ही नहीं, इन दिव्य सुखों का सर्वथा मोह उतारकर अपनी आत्मा को पावन किया है, अतः तू व्यर्थ ही दुःख का अनुभव करती है।''

अभयकुमार ने भी अनेक रीतियों से भद्रा माता को समझाने की कोशिश की।

अभय के वचनों से भद्रा माता का मोह दूर हो गया। वह भी शोकमुक्त बनी। दोनों मुनियों को भावपूर्वक वंदन कर उनके अपूर्व गुणों को याद करती हुई अपनी पुत्रवधुओं के साथ घर आई।

एक माह की संलेखना करके वे दोनों मुनि अत्यंत समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में 33 सागरोपम की आयुष्यवाले देव बने।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों को 33000 वर्ष बीतने के बाद ही आहार की इच्छा होती है और इच्छा मात्र से ही उनको तृप्ति हो जाती है।

वे देवता 33 पक्ष बीतने के बाद श्वास लेते हैं।

सर्वार्थसिद्ध विमान में जानेवाले देवताओं के पूर्वभव में यदि एक छट्ठ जितना तप अधिक होता अथवा 7 लव जितना आयुष्य अधिक होता तो वे शेष कर्मों को खपाकर मोक्ष में चले गए होते।

देवलोक के इस दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर वे महाविदेह क्षेत्र में मानव-जन्म धारण करेंगे और वहाँ चारित्र धर्म अंगीकार कर सभी घाति-अघाति कर्मों का क्षय कर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

❑ ❑ ❑

51. निमित्त प्रभावक-इलाचीकुमार

'काम' का आकर्षण बड़ा विचित्र है ।
उसमें व्यक्ति नात-जात सब कुछ भूल जाता है ।

❑ एक नटकन्या के रूप-लावण्य में
आसक्त बने श्रेष्ठी-पुत्र इलाचीकुमार !
एक नटी को पाने के लिए
इलाची कुमार नट की सभी शर्तो का
पालन करने के लिए तैयार हो गए ।

❑ अपना घर छोड़ा, परिवार छोड़ा और
नृत्यकला में निपुण बने ।

❑ परंतु एक छोटे से निमित्त ने
उनके जीवन की राह-चाह बदल दी !

❑ रूप, रूप की अंबार-पद्मिनी जैसी एक कन्या
गुरु भगवंत को गोचरी बहोरा रही थी
और उस समय गुरुदेव की दृष्टि
भूमि पर थी ।
बस, इस छोटे से निमित्त ने
राग को विराग में बदल दिया ।

❑ परिणाम की धारा में चढ़े हुए
इलाची को वही पर केवलज्ञान हो गया ।

❑ एक नृत्य मंडप
केवलज्ञान का मंडप बन गया ।

अनित्यत्वादिकां शुद्धां, भावनां स्मरतो हृदि ।
इलातीतनयस्येव पुंसः स्यात् केवली मुनिः ।।

इलावर्धन नाम का भव्य नगर !

प्राकृतिक-सौन्दर्य और सम्पत्ति से भरा पूरा नगर !

नाट्य कला में प्रवीण नटों का आगमन ! नाट्य कला के प्रदर्शन से सम्पूर्ण नगरवासी आकर्षित हो गए । रूपवती नट-कन्या को देखकर नगरसेठ के पुत्र इलाचीकुमार की आँखों में विकार पैदा हो गया और अंत में मन-ही-मन नटकन्या से पाणिग्रहण करने का निश्चय कर लिया ।

इलाची ने नट-कन्या के पिता से कन्या की प्रार्थना की, परन्तु नट-कन्या के पिता लंखिकर ने इस शर्त पर कन्यादान स्वीकार किया कि सर्वप्रथम तुम इस नट-विद्या को सीखकर किसी राजा को प्रसन्न करके इनाम प्राप्त करो ।

नट-कन्या में मोहित बने इलाची ने सभी शर्तें स्वीकार कर लीं और माता-पिता और स्वजनों का विरोध होने पर भी उसने घर छोड दिया और नटों के समूह के साथ रहकर नटविद्या सीखने लगा ।

कन्या-प्राप्ति की तीव्र उत्सुकता के कारण बारह वर्ष में इलाची नाट्य-कला में इतना प्रवीण हो गया कि गुलाब के बाग की सुगंध की भाँति चारों ओर दूर-सुदूर तक उसकी कीर्ति फैल गई । उसकी नटविद्या के प्रदर्शन को देखने के लिए चारों ओर से मानव समुदाय एकत्र होने लगा ।

अनेक नगरों में अपनी नट विद्या के प्रदर्शन के बाद उसने बेना नदी के किनारे आये हुए नगर के राजा को प्रसन्न करने का निश्चय किया ।

बारह वर्ष की कठोरतम साधना के बाद इलाची के हृदय में तीव्र उत्सुकता थी और पूरा विश्वास था कि आज वह राजा को खुश कर अवश्य पुरस्कार प्राप्त कर लेगा ।

नट-कन्या को भी इलाची से प्रेम हो गया था । नट-कन्या ने इलाची को अच्छी तरह सुसज्जित किया और स्वयं भी आकर्षक वेशभूषा से सुसज्जित बन नटविद्या प्रदर्शन के लिए तैयार हो गई । आँखों में काजल और भाल पर कुंकुम का तिलक किया ।

राज-चौक में नटों ने ऊँचे-ऊँचे दौर खड़े किये और राजकर्मचारियों ने प्रजाजन के बैठने की सुन्दरतम व्यवस्था की ।

नगरजन और सामन्तजन आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये । राजा भी आ गया और सिंहासन पर बैठ गया ।

इलाची और नट-कन्या ने हाथ जोड़कर राजा को प्रणाम किया । मंगल गीत से नट-विद्या का प्रदर्शन शुरू हो गया ।

नट-कन्या ने पटह बजाया और इलाची एक ही झटके में डोरी पर चढ़ गया । चारों ओर वाह ! वाह ! की ध्वनि सुनाई देने लगी ।

मात्र डोरी पर नाच ही नहीं, परन्तु नट-कन्या द्वारा फेंकी हुई ढाल और तलवार को लेकर रणांगण के योद्धा की भाँति युद्ध का प्रदर्शन भी शुरू कर दिया । और शाबाश ! शाबाश ! की आवाजों से चारों ओर गगनमंडल गूँज उठा ।

इलाची ने अद्‌भुत प्रदर्शन पूर्ण करके राजा को प्रणाम किया और पारितोषिक की याचना की ।

राजा ने कहा, ``हे कुमार ! तुम्हारी नट-विद्या के प्रदर्शन को मैंने ध्यानपूर्वक नहीं देखा, क्योंकि मेरा मन राज्य-चिंताओं में व्यग्र था, इसलिए कल पुनः तुम्हारा खेल देखूंगा ।''

दूसरे दिन पुनः इलाची ने दुगुने उत्साह से नटकला का प्रदर्शन किया । आज तक नहीं देखी कलाओं का सुन्दरतम प्रदर्शन हुआ । परन्तु राजा ने सिरदर्द का बहाना निकालकर आज भी पारितोषिक नहीं दिया ।

तीसरे दिन भी प्रदर्शन हुआ, परन्तु राजा ने आज भी नया बहाना शोध कर इलाची को इनाम नहीं दिया ।

इलाची अब कारण की शोध करने लगा और अंत में उसे ख्याल आ गया कि जिस रूप के राग में उसकी बुद्धि मोहित बनी है, उसी रूप में राजा मोहित बना हुआ है, और उसकी यह इच्छा है कि यदि यह नट नाच करता हुआ भूमि पर गिर पड़े और उसके प्राण-पखेरू उड़ जायें तो यह नट-कन्या मुझे मिल सकती है और इसी कारण कोई-न-कोई बहाना निकाल कर इनाम देने की बात को टालता जा रहा है ।

नट-कन्या ने पुनः इलाची को आश्वासन दिया और कहा कि मैं आपकी ही हूँ और आप मेरे हैं । आप निश्चिंत रहें और एक बार पुनः प्रयत्न कर लें ।

इलाचीकुमार ने पुनः दूसरे दिन अपनी कला का भारी प्रदर्शन किया ।

कुमार एक के बाद एक नई-नई कला का प्रदर्शन करता जा रहा था और अचानक उसका देह स्तब्ध हो गया । उसकी दृष्टि एक हवेली पर स्थिर हो गई । उसने एक महान् आश्चर्य देखा । उस आश्चर्य ने उसके अन्तः पटल खोल दिये । अब उसके हृदय में विवेक का दीप प्रज्वलित हो गया ।

डोरी पर नाचते हुए इलाची ने देखा, `एक तरुण नवयुवा योगी, जिनके मुख पर ब्रह्मचर्य का दिव्य तेज और आँखों में निर्विकारता है, वे भिक्षा के लिए हवेली में आये हैं । ``धर्मलाभ'' की आशिष के बाद एक तरुण युवती हाथ में मोदक के थाल को लेकर मुनिश्री को बहोराने के लिए सुसज्ज है ।

नवयौवना बहुत ही भक्तिभाव से मुनिश्री को बहोराने के लिए आग्रह कर रही है, परन्तु मुनिश्री तो `नहीं ! नहीं !' ही कर रहे हैं । मुनिश्री की दृष्टि नीचे थी । मुनिश्री के जीवन में कंचन और कामिनी के अद्‌भुत त्याग और उनकी विरक्तता को देखकर इलाची का हृदय परिवर्तित हो गया ।

ओहो ! जिस कामिनी के लिए मैंने माँ का त्याग किया, पिता का त्याग किया, माँ के प्यार और पिता की आज्ञा का तिरस्कार किया, घर छोड़ा, गाँव छोड़ा, व्यापार छोड़ा, अरे जिस कामिनी के प्रति मुझे इतनी आसक्ति, उसी के प्रति विरक्ति के दर्शन ! ओहो ! यह राजा भी इस कामिनी में आसक्त होकर मुझे मारने का प्रयास कर रहा है ।

धिक्कार है, मेरे इस हाड़-चाम से मढ़े कामिनी के प्रति रहे राग भाव को ! इसी भावना में चढ़ते-उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । इलाची का मन भोग-सुखों से विरक्त हो गया । वे शुभ ध्यान की श्रेणी पर चढ़ते गये और कुछ समय बाद विरक्त में से वीतराग बन गए ।

इलाचीकुमार के हृदय से अज्ञान का पर्दा हट गया । वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये । देवताओं ने तत्काल पुष्पवृष्टि की और इन्द्रप्रदत्त साधु वेष धारण कर इलाची कुमार अब इलाचीमुनि बन गये ।

अपनी पवित्र देशना से अनेक का उद्धार करते हुए पृथ्वीतल को पावन करने लगे और अंत में मुक्तिपद के स्वामी बन गये ।

धन्य है, उन महामुनि की विरक्तता को !

52. चिलातीपुत्र

श्रेष्ठी पुत्री सुसीमा के रूप में
मोहित बने चिलातीपुत्र ने
उसका मात्र अपहरण ही नहीं किया,
बल्कि उसके मस्तक को भी
काट लिया था ।
उसके बाद मुनि को
धर्म का स्वरूप पूछने पर
उन्होंने मात्र **'उपशम-विवेक और संवर'** कहा ।
मात्र इस त्रिपदी का श्रवण कर
चिलातीपुत्र साधु बन गए ।

❑ खून से लथपथ शरीर होने से जब
चींटियों ने आकर उन्हें दंश दिए
तो भी वे अपनी समता की साधना से
लेश भी च्युत नहीं हुए ।

❑ भयंकर वेदना में भी
परम समाधि भाव की साधना द्वारा
उन्होंने सद्गति हासिल की ।

❑ क्रमशः मानव भव प्राप्त कर
शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करेंगे ।

दासी पुत्र से
डाकू बने चिलातीपुत्र के जीवन में
एक छोटे से निमित्त को पाकर
जबरदस्त मोड़ (Turning Point) आ गया ।

◆ महामुनि के मुख से सुने हुए
तीन शब्दों ने
'उपशम-विवेक-संवर'
चिलातीपुत्र के हृदय को
झकझोर दिया ।
वह महाकामी-कामांध मिटकर
संयमी साधक बन गया ।
काम की गुलामी को छोड़कर
कामविजेता बन गया ।

◆ संत-पुरुषों का समागम
जीवात्मा को
कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है,
उसका जीता-जागता
उदाहरण चिलातीपुत्र है ।
आइए,
हम भी इस घटना से कुछ प्रेरणा लेकर अपने
जीवन का उत्थान करें ।

52. चिलातीपुत्र

कृत पापोऽपि संसारान् मुच्यते भूरि कर्मभिः ।
चिलाती पुत्रवत् स्वर्गादि सुखै व्रियते पुनः ।।

राजगृही नगरी !

धन श्रेष्ठी की दासी चिलाती की कुक्षि में देवलोक से एक आत्मा का अवतरण हुआ । क्रमशः दासी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया । दासी का पुत्र होने से लोक में वह **''चिलातीपुत्र''** के नाम से प्रख्यात हो गया ।

धन श्रेष्ठी की पत्नी ने पाँच पुत्रों के बाद एक पुत्री को जन्म दिया । उसका नाम **''सुसीमा''** रखा गया । धीरे-धीरे समय बीतने लगा । चिलाती-पुत्र व सुसीमा बड़े होने लगे ।

पूर्व जन्म के संबंध के कारण चिलातीपुत्र के दिल में सुसीमा के प्रति अनुराग पैदा हुआ । धीरे-धीरे वह स्नेह काम-राग में बदलने लगा । एक बार चिलातीपुत्र के असभ्य वर्तन को देखकर धनसेठ ने चिलातीपुत्र को घर से बाहर निकाल दिया ।

घर छोड़कर चिलातीपुत्र जंगल में जा पहुँचा । वह चोरों की पल्ली में पहुँच गया । **मानव-मन पर संगति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है ।** इसके फलस्वरूप वह चिलातीपुत्र कुख्यात डाकू बन गया । चोरी-लूट व विलासिता यह उसके जीवन का नित्य-क्रम बन गया ।

लूटने का धंधा करते हुए भी वह सुसीमा को नहीं भूल पाया । सुसीमा की छवि उसके हृदयपट पर अंकित हो चुकी थी ।

एक दिन उसने अपने साथियों के साथ राजगृही नगर के धनसेठ को लूटने का निश्चय किया । उसने अपने साथियों को कहा, **''धनसेठ को लूटकर**

जितना धन मिलेगा, उस धन के मालिक तुम होंगे परन्तु सेठ की पुत्री सुसीमा के ऊपर मेरा अधिकार रहेगा ।''

साथियों ने चिलातीपुत्र की बात में हाँ भर दी ।

बस, एक दिन चिलातीपुत्र ने अपने साथियों के साथ धनसेठ के घर में प्रवेश कर दिया । सेठ को अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया गया ।

चिलातीपुत्र ने सेठ के घर को बुरी तरह से लूटा । वे सब साथी धन लेकर रवाना हुए । इसके साथ ही चिलातीपुत्र ने सुसीमा को उठा लिया और उसे उठाकर वह जंगल की ओर आगे बढ़ने लगा ।

कुछ समय बाद धनसेठ की निद्रा भंग हुई । उसे पता चला कि चोरों ने आकर उसके घर को साफ कर दिया है...उसके दुःख का पार न रहा । उसने अपने पुत्रों को जगाया और नगर के सैनिकों के साथ चोरों का पीछा करना प्रारंभ किया ।

सैनिकों को पीछे आते देखकर कई चोर धन को बीच मार्ग में ही छोड़कर अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगे । उसके बाद वह सेठ अपने पुत्रों के साथ सुसीमा की शोध करने लगा ।

सेठ व सेठ के पुत्रों को पीछे आते हुए देखकर चिलातीपुत्र ने सोचा, **''इस कन्या का भार उठाना अब शक्य नहीं है ।''** इस प्रकार विचार कर चिलातीपुत्र ने सुसीमा के मस्तक को धड़ से अलग कर दिया । उसने सुसीमा के धड़ को वहीं छोड़ दिया और उसके मस्तक को लेकर भागने लगा ।

धनसेठ ने जब सुसीमा के मृत देह को देखा तो उसे अत्यंत ही आघात लगा । वह अत्यंत ही करुण विलाप करने लगा । अब चिलातीपुत्र का पीछा करने का कोई अर्थ नहीं था । जिसको पाने के लिए वे भाग रहे थे, उसकी तो मौत हो चुकी थी ।

सेठ अपने पुत्रों के साथ अपने घर लौट आया ।

दूसरे ही दिन महावीर प्रभु का राजगृही नगरी में आगमन हुआ । वह सेठ भी प्रभु की धर्मदेशना सुनने के लिए समवसरण में आया ।

प्रभु ने अपनी धर्मदेशना में संसार की असारता समझाई । संसार के

संबंधों की अनित्यता समझाई । इसके फलस्वरूप सेठ के दिल में असार संसार के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ ।

मोह के बंधनों का परित्याग कर धन सेठ ने प्रभु के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

चिलातीपुत्र सुसीमा के कटे हुए मस्तक को हाथ में लेकर दौड़ रहा था । सुसीमा के कटे मस्तक में से खून बह रहा था और उस खून से चिलातीपुत्र का देह लथपथ हो चुका था ।

आगे बढ़ने पर चिलातीपुत्र ने एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े एक महात्मा को देखा ।

महात्मा को देखते ही चिलातीपुत्र ने महात्मा को कहा, ``मुझे जल्दी धर्म कहो अन्यथा यह तलवार तुम्हारे मस्तक को उड़ा देगी ।''

चिलातीपुत्र के इन शब्दों को सुनकर महात्मा ने देखा कि **``यह जीव भले ही क्रोधावेश में है, परन्तु साधु-धर्म के लिए यह पूर्णतया योग्य है ।''**

इस प्रकार विचार कर महात्मा ने अति संक्षेप में धर्म का स्वरूप बतलाते हुए कहा–

``उपशम विवेक संवर''

मात्र ये तीन शब्द कहकर, एक नवकार मंत्र बोलकर वे मुनि आकाश मार्ग में उड़ गए ।

मुनि के मुख से इन शब्दों को सुनकर चिलातीपुत्र एक-एक पद के बारे में सोचने लगा, **``अहो ! मुनि ने उपशम को धर्म कहा है, परन्तु मुझ में उपशम तो है नहीं, मेरे भीतर तो क्रोध की आग धधक रही है । अहो ! क्रोध के अधीन बनी मेरी आत्मा को धिक्कार हो ।''** इस प्रकार विचार कर उसने अपने हाथ में रही तलवार भूमि पर फेंक दी ।

उसके बाद वह ``विवेक'' पद का अर्थ सोचने लगा ! सोचते-सोचते उसे ``विवेक'' का अर्थ ख्याल में आ गया । **विवेक अर्थात् कर्तव्य का पालन और अकर्तव्य का त्याग । जीवन में विवेक से ही धर्म होता है, विवेकहीन व्यक्ति धर्म की आराधना नहीं कर सकता है ।** इस प्रकार विचार कर उसने अपने हाथ में रहे अविवेक के प्रतीक रूप सुसीमा का मस्तक भूमि पर फेंक दिया ।

उसके बाद वह धर्म के तीसरे पद ``संवर'' का विचार करने लगा । **संवर अर्थात् पाँच इन्द्रियों और मन का निरोध करना । पाँच इन्द्रियों के अनुकूल प्रवृत्ति आत्मा को संसार में भटकानेवाली है, उनका निरोध न करना आत्मा को दुर्गति में ले जाता है ।** मेरे जैसे स्वेच्छाचारी को संवर कहाँ से हो ?'' इस प्रकार विचार कर उसने उसी समय मुनि भाव को स्वीकार कर लिया । वे मुनि वहीं पर कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हो गए ।

चिलातीपुत्र का शरीर खून से लथपथ था, अतः उस खून से आकर्षित होकर कई चींटियाँ आने लगीं । देखते-ही-देखते हजारों चींटियाँ आकर उनके शरीर को खाने लगीं ।

चींटियों के तीक्ष्ण दंश को चिलातीपुत्र अत्यंत ही समतापूर्वक सहन करने लगे ।

उन चींटियों ने चिलातीपुत्र के देह को चलनी जैसा बना दिया ।

भयंकर शारीरिक वेदना में भी चिलातीपुत्र ने अपने समत्व-भाव को खंडित नहीं होने दिया ।

इस प्रकार समता भाव के फलस्वरूप चिलातीपुत्र मुनि कालधर्म पाकर आठवें देवलोक में देव बने ।

53.
युगबाहु मुनि

सरस्वती देवी की
आराधना के फलस्वरूप
विशिष्ट ज्ञान-शक्ति प्राप्त की ।
ज्ञान पंचमी की
निर्मल आराधना कर
अपने जीवन को
सम्यग् ज्ञान से रंग डाला ।
अंत में
चारित्र धर्म को स्वीकार कर
निरतिचार चारित्र का
पालन किया ।
जिसके फलस्वरूप
घाति-अघाति कर्मों का क्षयकर
केवलज्ञान को प्राप्त किया ।
अनेक भव्य जीवों को
मोक्षमार्ग प्रदान कर
शाश्वत सुख के
भोक्ता बने ।

(53) युगबाहुमुनि-
पृष्ठ नं. 100

(54-55) आर्य महागिरि एवं आर्य सहस्तिसूरिजी-पृष्ठ नं. 110

(56) विभाजक आर्यरक्षित म.-पृष्ठ नं. 117

तीव्रेण तपसा कर्म कृतं दुष्टमपि स्फुटम् ।
युगबाहोरिवोपैति, क्षयं शीघ्रं शरीरिणः ।।

पाटलीपुर नगर ।

विक्रम राजा । मदनरेखा महारानी ।

एक बार महारानी को चिंतातुर देखकर राजा ने कहा-``प्रिये ! आज तेरे चेहरे पर चिंता दिखाई दे रही है, कारण क्या है ?''

महारानी ने कहा-``स्वामीनाथ ! आपके होते हुए अन्य तो मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं है, परंतु लग्न के इतने वर्ष बीतने पर भी अभी तक मुझे माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है ।''

राजा ने कहा-``प्रिये ! चिंता मत करो । इसके लिए मैं योग्य उपाय करूंगा ।''

राजा ने त्रिकाल कुलदेवता की आराधना प्रारम्भ की । दैविक प्रभाव से महारानी गर्भवती बनी और एक शुभ दिन उसने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । बालक का नाम **'युगबाहु'** रखा गया ।

धीरे-धीरे बालक बड़ा होने लगा । यौवन वय प्राप्त होने पर वह समस्त शस्त्र और शास्त्र कला का अभ्यास करने लगा ।

एक बार उपाध्याय ने कहा-``शस्त्र और शास्त्र कला में जिसने निपुणता प्राप्त की हो, उसे उत्तम पुरुष समझना चाहिए ।''

उपाध्याय की यह बात सुनकर वह राजपुत्र नगर के बाहर जंगल में पहुँच गया । जंगल में रहे किसी मुनि को उसने पूछा-``लोकोत्तर कला की प्राप्ति कैसे होती है ?''

मुनि ने कहा-**``शुभ कर्म के उदय से सभी शुभ विद्याओं की प्राप्ति होती है और अशुभ कर्म के उदय से जीवात्मा को दुःख की प्राप्ति होती है ।''**

आगे चलकर मुनि ने कहा-``ज्ञान पंचमी की आराधना, तपश्चर्या से मनुष्य को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है जिसके फलस्वरूप मुक्तिसुख प्राप्त होता है ।

``जिस प्रकार सूर्य से अंधकार का नाश होता है, उसी प्रकार तप से आत्मा पर लगे हुए भयंकर पापकर्मों का भी नाश हो जाता है ।''

गुरु भगवंत की अमृतमयी धर्मदेशना का पान कर युगबाहु ने छह मास तक दीर्घ तपश्चर्या की ।

छह मास के तप की पूर्णाहुति के बाद अचानक आकाश मंडल बादलों से घिर गया और भयंकर जलवृष्टि हुई ।

वर्षा के जल से नदी-तालाब सब भर गए ।

इस प्रकार बादलों की वृष्टि को देखकर किसी ने राजा को कहा- **``राजन् ! गंगा का जलप्रवाह नगर में फैल रहा है ।''**

गंगा के जलप्रवाह को रोकने के लिए जैसे ही राजा तैयार हुआ, वैसे ही राजपुत्र युगबाहु ने कहा, ``पिताजी ! इस कार्य के लिए आपको जाने की आवश्यकता नहीं है, आप मुझे आदेश करें, यह कार्य तो मैं भी कर सकूंगा ।''

राजा ने कहा, ``तुम सुवर्ण पुरुष को लेकर गंगा तट पर जाना ! वहाँ इसकी पूजा कर इसे जल में डाल देना ।'' राजपुत्र ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की ।

राजकुमार सुवर्ण पुरुष को लेकर नदीतट पर गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक गंगा नदी की पूजाविधि की, जिसके फलस्वरूप जल का उपसर्ग शांत हो गया ।

उसी समय उसे किसी स्त्री का करुण स्वर सुनाई दिया । वह स्त्री नदी के जलप्रवाह में प्रकट होकर बोली, ``क्या कोई राजा या राजपुत्र है जो डूबती हुई मुझे बचाने में समर्थ हो ।''

वह स्त्री पुनः बोली, ``हे पृथ्वी ! रत्नगर्भा होने पर भी क्या तू वंध्या है ? मेरे प्राणों का रक्षण हो सके, ऐसे किसी पुत्र को तुमने जन्म नहीं दिया ?''

उस स्त्री के इन करुण शब्दों को सुनकर वह युगबाहु उस स्त्री को बचाने के लिए नदी में कूद गया ।

तैरता हुआ वह राजकुमार ज्यों-ज्यों उस स्त्री के निकट जाने लगा, त्यों-त्यों वह स्त्री नदी में और दूर-दूर भागने लगी ।

नदी तट पर खड़े सैनिक यह दृश्य देख ही रहे थे कि थोड़ी ही देर में वह राजकुमार अदृश्य हो गया ।

इधर सूर्य भी अस्ताचल की गोद में छिप गया ।

उस समय युगबाहु के अपहरण को देख सभी लोग चक्रवाक पक्षी की तरह आक्रंदन करने लगे ।

सैनिकों ने जाकर राजकुमार के अपहरण की बात राजा को कही, तब राजा के आघात का पार न रहा !

पुत्रवियोग की पीड़ा से राजा मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ।

शीतल जल का छिड़काव करने पर जैसे ही राजा होश में आया, वह राजपुत्र को याद करते हुए करुण स्वर से रुदन करने लगा ।

तब आश्वासन देते हुए किसी मंत्री ने राजा को कहा-``राजन् ! व्यर्थ ही शोक न करें । इस संसार में सभी प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार सुख-दुःख का अनुभव करते हैं ।

``इष्ट वस्तु का वियोग सज्जनों के लिए वैराग्य का कारण बनता है, जबकि वही वस्तु मोहांध व्यक्ति के लिए शोक का कारण बनती है ।

``इस जगत् में प्राणियों के भाग्य को बदलने में कौन समर्थ है ?''

मंत्री के इन वचनों को सुनकर राजा को गुस्सा आ गया ।

गुस्से में आकर राजा ने कहा, **``तुम मेरे दृष्टिपथ से दूर हट जाओ ।''**

राजा के इन वचनों को सुनकर मंत्री ने हाथ जोड़ कर कहा, ``राजन् ! मेरा अपराध क्षमा करें । आपका पुत्र आपको अवश्य प्राप्त होगा ।''

इधर बात-ही-बात में रात्रि बीत गई । प्रातः काल होते ही मधुर ध्वनि सुनाई दी । किसी ने आकर राजा को समाचार दिये-``हे राजन् ! भाग्य योग से युगबाहु का आगमन हो रहा है ।'' राजपुत्र के क्षेम कुशल आगमन की बात सुनकर राजा के हर्ष का पार न रहा ।

निकट आते ही राजकुमार ने राजा के चरणों में प्रणाम किया ।

राजा ने पुत्र का आलिंगन करते हुए कहा-``बेटा ! तुम कहाँ चले गये थे ? अभी तुम कैसे और कहाँ से आ रहे हो ?''

युगबाहु ने कहा-``पिताजी ! गंगा के प्रवाह को मोड़ने के लिए मैं गंगा तट पर गया, तब मैंने किसी डूबती हुई स्त्री का करुण स्वर सुना । उसे सुनकर मेरा हृदय दया से भर आया । उसे बचाने के लिए मैं नदी में कूद पड़ा-आगे चलते हुए मैं मूर्च्छित हो गया । थोड़ी देर बाद जब मेरी मूर्च्छा दूर हुई तब मैंने अपने आपको नदी की रेती में खड़े देखा । वहाँ न तो गंगा थी और न ही नदी । न वह कन्या थी और न ही अन्य कोई वस्तु !

``मैं सोच में पड़ गया-अरे ! यह क्या ? यह कोई इन्द्रजाल तो नहीं है ? इस प्रकार सोचते हुए मैं जैसे ही थोड़ा आगे बढ़ा मैंने वहाँ कल्पवृक्षों का उपवन देखा ।

आगे बढ़ने पर सात मंजिल का एक महल देखा । कुतूहल वृत्ति से मैं छह मंजिल तक चढ़ा, तब मुझे अत्यन्त ही मधुर संगीत सुनाई दिया ।

उसी समय वहाँ एक प्रतिहारी आ गया और बोला, **``मैं शारदा देवी का प्रतिहारी हूँ और आपको बुलाने के लिए ही मैं आया हूँ ।''**

वह मुझे शारदा देवी के पास ले गया । वहाँ मैंने शारदा माँ सरस्वती को देखा । मैंने आदर पूर्वक सरस्वती माँ को नमस्कार किया ।

देवी ने मुझे अपने पादपीठ पर बिठाया । अत्यंत ही विनीत राजपुत्र को संबोधित करते हुए बोली, ``तुम्हारे सत्त्व की परीक्षा करने के लिए मैंने ही गंगा कन्या भेजी थी और अपने ही प्रतिहारी को भेजकर तुम्हे यहाँ बुलाया गया है ।

``तुम सत्त्वशाली हो, तुम्हारे तप से मैं खुश हूँ । पूर्वभव में की गई आराधना से मैं प्रसन्न हूँ ।''

इतना कहकर देवी ने युगबाहु को उसका पूर्वभव बताते हुए कहा-

`गत भव में तुम पुष्पपुर नगर में अत्यंत ही निर्धन पुरुष थे । एक बार कौमुदी महोत्सव में जाते हुए समृद्ध लोगों को देखकर तुमने सोचा, `अहो ! मैं कितना मंदभागी हूँ । इस धरती पर मेरे जैसा दुःखी कोई नहीं होगा । इस प्रकार का महोत्सव होने पर भी मुझे भिक्षा भी नहीं मिल रही है । मेरे प्राण भी मुझे नहीं छोड़ रहे हैं ।

``सचमुच मेरे पाप कर्म का उदय है कि जिसके कारण मुझे भिक्षा भी नहीं मिल रही है । मैंने पूर्वभव में कुछ भी सुकृत नहीं किया है, उसी का यह

परिणाम है कि आज मैं दुःखी हो रहा हूँ । अब मैं कहाँ जाऊँ ?'' इस प्रकार सोचकर तुम आत्मघात करने के लिए किसी पर्वत पर चढ़ गए । इष्ट देवता को नमस्कार कर झंपापात करने के लिए तुम चारों ओर देख रहे थे, तभी तुम्हें किसी मुनि के दर्शन हो गए । तुमने पंचांग प्रणिपातपूर्वक मुनि को नमस्कार किया । अपना ध्यान पूर्ण कर मुनि ने तुम्हें धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया और अवधिज्ञानी ऐसे उन महात्मा ने तुम्हारे कल्याण के लिए धर्मदेशना देने के पूर्व पूछा, ``तुम कौन हो और कहाँ से आए हो ?''

तुमने कहा-``मैं अत्यंत ही गरीब हूँ और मरने के लिए यहाँ आया हूँ । परंतु अब आपके दर्शन से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ ।''

मुनिवर ने कहा, ``भाग्यशाली ! इस जगत् में धन-धान्य आदि सब कुछ सुलभ हैं परंतु चिंतामणि रत्न की तरह यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है । यह असार देह तो नष्ट हो जानेवाला है, अतः तुम तप-साधना कर इस देह को सफल करो ।

पाप कर्मों के नाश के लिए तप तो अग्नि के समान है । पूर्व भव के दुष्कर्मों के नाश के लिए तुम्हें ज्ञान पंचमी की आराधना करनी चाहिए ।

यह तप तो पूर्व भव के दुष्कर्म रूपी वृक्ष को काटने के लिए तीक्ष्ण कुठार के समान है । जिसने भावपूर्वक तप धर्म की आराधना की है, सचमुच, उसने दान और शील धर्म की भी आराधना की है ।

``इस पंचमी तप से तुम्हारे सारे अंतराय दूर होंगे और तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे ।'' इस प्रकार मुनि की धर्मदेशना सुनकर तुमने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया । उसके बाद सद्भाव पूर्वक **पंचमी तप** की आराधना कर अपने जीवन को सफल बनाया है ।

उसी पंचमी तप की आराधना के प्रभाव से तुम मरकर युगबाहु के रूप में पैदा हुए हो ।

इस प्रकार देवी के मुख से अपने पूर्वभव को सुनकर मैं खुश हो गया ।

आगे चलकर खुश होकर देवी ने कहा, `तुम शस्त्र और शास्त्र कला में निपुण बनोगे ।''

उसी समय सभी प्रकार की कलाओं में कुशलता प्रदान करनेवाला एक **'काममंत्र'** देवी ने प्रदान किया ।

देवी के मुख से 'काम मंत्र' ग्रहण कर मैं खुश हो गया ।

तभी एक चमत्कारसा हो गया और मैं गंगा तट पर आ गया ।

खुश होकर आपको नमस्कार करने के लिए तुरंत यहाँ आ गया हूँ ।

युगबाहु के मुख से इस वृत्तांत को सुनकर राजा के आनंद और आश्चर्य का पार न रहा ।

प्रसन्न होकर राजा ने युगबाहु को **युवराज** की पदवी प्रदान की ।

उसके बाद युगबाहु माता-पिता की भक्ति के साथ पंचमी तप की आराधना एवं प्रभुभक्ति करता हुआ समय व्यतीत करने लगा ।

एक बार युगबाहु रात्रि के समय अपने शयनखंड में निद्राधीन बना हुआ था, तभी उसे किसी स्त्री का अत्यंत ही करुण रुदन सुनाई दिया । तत्क्षण हाथ में नंगी तलवार लेकर युगबाहु उस दिशा की ओर चल पड़ा ।

जंगल में जाकर उसने ग्लानमुखवाली अत्यंत ही रूपवती कन्या को देखा । वहाँ एक नवयुवक उस कन्या के सामने भोग की प्रार्थना कर रहा था । उनके परस्पर के वार्तालाप को सुनने के लिए युगबाहु किसी वृक्ष के अंतराल में छिप गया ।

उस युवक ने कहा-``तुम यदि मुझे स्वीकार नहीं करती हो तो तुम इस नंगी तलवार को देख लो और अपने इष्ट देव का स्मरण कर लो ।''

कन्या ने कहा-``मेरे हृदय में युगबाहुकुमार का वास है, अतः उन्हें छोड़ मैं अन्य किसी को याद नहीं करती हूँ । मेरे मंद भाग्य से उनके मुझे दर्शन नहीं हुए तो आगामी जन्म में मेरा उनके साथ मिलन हो ।''

उस कन्या के मुख से अपने नाम को सुनकर युगबाहु एकदम स्तब्ध हो गया । 'अहो ! यह कन्या कौन है ? यह कन्या मुझे पहिचानती है ।''

उसी समय हाथ में नंगी तलवार लेकर युगबाहु उस युवक के सामने आ गया और बोला ! ``अरे पापी ! स्त्री हत्यारा ! तू कहाँ जाएगा ?''

उस युवक ने कहा, ``तुम यहाँ से हट जाओ । तुम व्यर्थ ही क्यों मरना चाहते हो ?''

युगबाहु ने कहा, **``प्राण तो आज नहीं तो कल जाने ही वाले हैं, परंतु प्राण जाने के पूर्व कोई परोपकार का कार्य हो जाय तो अच्छा ही है न !''**

``इस लोक और परलोक के विरुद्ध ऐसे कुकर्म को करने के लिए तुम क्यों तैयार हुए हो ?''

उस युवक ने कहा, ``तुम मुझे उपदेश देनेवाले कौन हो ?'' इस प्रकार कहकर वह युगबाहु के साथ लड़ने के लिए तैयार हो गया ।

बस, चंद क्षणों में ही उन दोनों के बीच भयंकर युद्ध छिड़ गया ।

उस युवक ने कुमार पर दंदशुक अस्त्र फेंका । उसी समय युगबाहु ने शारदा माँ के दिए मंत्र को याद कर अंत में **स्तंभनी विद्या** के द्वारा उसे स्तंभित कर दिया ।

युगबाहु के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देख वह कन्या सोचने लगी, ``क्या वो ही राजपुत्र युगबाहु तो नहीं आया है, जिसने इस नराधम को योग्य शिक्षा दी है ?''

उसके बाद युगबाहु ने उस युवक को बंधन से मुक्त कर दिया । वह युगबाहु के चरणों में गिर पड़ा ।

तभी आकाशमार्ग से एक विमान वहाँ आया । उस विमान में से एक विद्याधर बाहर आया । उस विद्याधर ने कहा-``हे युगबाहु ! मेरी बात आप ध्यान पूर्वक सुनें ।

``भरत क्षेत्र में आए वैताढ्य पर्वत के उत्तर में गगनवल्लभ नाम का एक श्रेष्ठ नगर है । उस नगर में मणिचूड़ नाम का विद्याधर रहता है । उसकी पत्नी का नाम मदनावली है । उसकी पुत्री का नाम अनंगसुंदरी है । यौवन को प्राप्त अनंगसुंदरी स्त्रियों की 68 कलाओं में निपुण है ।

उस अनंगसुंदरी ने एक प्रतिज्ञा की है कि जो मेरे चार प्रश्नों का जवाब देगा, वो ही भूचर या विद्याधर मेरा पति होगा ।

अनंगसुंदरी की इस शर्त को सुनकर इसके रूप-सौंदर्य से मोहित बने अनेक राजकुमार वहाँ पर आए परंतु एक भी विद्याधर या राजकुमार उसके प्रश्नों का संतोषजनक जवाब नहीं दे पाया ।

पुत्री के वर की चिंता से चिंतित बने राजा ने एक बार किसी नैमित्तिक को पूछा-``इस कन्या का वर कौन होगा ?''

नैमित्तिक ने कहा-``इसका वर राजपुत्र युगबाहु होगा ।''

नैमित्तिक की यह बात सुनकर यह अनंगसुंदरी युगबाहु को पाने के लिए उत्कंठित बनी ।

यह पवनवेग शंखपुर का स्वामी विद्याधर है । इसका मैं मामा हूँ । यह पवनवेग मेरा भाणेज है । मेरा नाम मणिचूड़ है ।

मणिचूड़ ने आगे कहा, ``हे युगबाहु ! मुझे मेरी पुत्री प्राण से भी अधिक प्यारी है । नैमित्तिक को पूछने पर उसने कहा था कि युगबाहु इसका पति बनेगा । अतः आपको यह प्रदान करते हुए मुझे बहुत खुशी है । परंतु इसकी प्रतिज्ञा का भी पालन हो जाय तो बहुत अच्छा रहेगा ।

उसी समय विक्रमबाहु राजा भी वहाँ पर आ गया ।

पवनवेग ने युगबाहु के चरणों में नमस्कार करके कहा, स्त्रीहरण का मैंने जो पाप किया है, उसे आप क्षमा करें ।

मणिचूड़ सभी विद्याधरों को अपने नगर में लाया । वहाँ उसने भव्य मंडप की रचना की ।

अनंगसुंदरी भी सज-धज कर लग्न मंडप में आ गई ।

मणिचूड़ ने घोषणा की ! मेरी पुत्री के चार प्रश्नों का जो जवाब देगा, वही इसका पति होगा ।

अनंगसुंदरी ने चार प्रश्न किये–

1. कला सहित कौन है ?

2.सद्बुद्धिमान् कौन है ?

3. सौभाग्यशाली कौन है ?

4. विश्वजयी कौन है ?

सभा में से अन्य कोई भी इन प्रश्नों के जवाब न दे सका, तब युगबाहु खड़ा हुआ । उसने सोने की पुतली का स्पर्श किया । वह पुतली बोली–

1. जो सुकृतरुचि वाला है, वह कलावान है ।

2. जो करुणा में तत्पर है, वह बुद्धिशाली है ।

3. जो अच्छा बोलता है, वह सौभाग्यशाली है ।

4. जो क्रोध का विजेता है, वह विश्वविजेता है ।

इन जवाबों को सुनकर अनंगसुंदरी प्रसन्न हो गई । समस्यापूर्ति होते ही चारों ओर जय-जय ध्वनि होने लगी । अनंगसुंदरी ने युगबाहु के गले में वरमाला डाल दी ।

शुभ वेला में भव्य महोत्सव के साथ युगबाहु और अनंगसुंदरी का पाणिग्रहण हुआ ।

मणिचूड़ ने पधारे हुए सभी राजाओं का सत्कार-सम्मान किया ।

एक शुभ दिन विक्रमबाहु ने जिनभक्ति महोत्सव कर युगबाहु को राजगद्दी सौंपकर गुरुचरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

राजा बनने के बाद युगबाहु ने पितृविद्या के बल से अनेक राजाओं को अपने वश में कर लिया ।

दीक्षा के लिए इच्छुक बने मणिचूड़ ने भी युगबाहु को विद्याधरों का नायक बनाया ।

एक शुभ दिन अनंगसुंदरी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । बालक का नाम `रत्नबाहु' रखा गया । धीरे-धीरे बड़ा होने पर वह भी सभी कलाओं में निपुण बना ।

आचार्य पदारूढ़ बने विक्रमबाहु मुनि का आगमन हुआ । विक्रमबाहु मुनि की धर्मदेशना का श्रवण कर युगबाहु भी संसार से विरक्त हो गया ।

अपने पुत्र रत्नबाहु को राज्यभार सौंपकर उसने भी विक्रमबाहु गुरुदेव के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया ।

फिर निरतिचार संयम धर्म का पालन कर छट्ठ, अट्ठम, मासक्षमण आदि तप कर सभी कर्मों का क्षयकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया ।

❑ ❑ ❑

54-55. आर्य महागिरि एवं आर्य सुहस्तिसूरिजी

- जंबु स्वामी के निर्वाण के बाद
  जिनकल्प का उच्छेद होने पर भी
  जिनकल्प से तुलना करनेवाले साधक
  दशपूर्वधर महर्षि
  आर्य महागिरि को कोटि-कोटि वंदना ।

- एक रंक को
  भागवती दीक्षा प्रदान कर
  उसे अद्‌भुत समाधि देकर
  रंक से राजा बनाने वाले
  आर्य सुहस्तिसूरि को
  कोटि-कोटि वंदना ।

- कृतज्ञता के रूप में
  प्राप्त राज्य को
  गुरुचरणों में अर्पित करने के इच्छुक
  संप्रति राजा ने
  गुरु-उपदेश को शिरोधार्य कर
  सवा लाख जिनमंदिरों का एवं
  सवा करोड़ जिनप्रतिमाओं का निर्माण कराया, ऐसे
  संप्रति राजा के सुकृतों की
  भूरि-भूरि अनुमोदना ।

लभन्ते भविनः सौख्यं, कुर्वाणा धर्म्ममार्हतम् ।
आर्य महागिरि-सुहस्तिनाविवावनी तले ।।

स्तुति

जिनकल्प की तुलना करे, आर्य महागिरि गुरुवरा,
समकाल में हुए राजाश्री, संप्रति के प्रबोधका,
आचार्य श्री सुहस्ति सूरिवर, आठवें दो पट्टधरा,
प्रभु वीर पाट परंपरा को, भाव से करूं वंदना ।।

आर्य महागिरि का जन्म वीर निर्वाण संवत् 145 में एलापत्य गोत्र परिवार में तथा आर्य सुहस्ती का जन्म वीर संवत् 191 में हुआ था ।

दोनों का बाल्यकाल में लालन पालन आर्या यक्षा साध्वीजी के सान्निध्य में हुआ था, **इस कारण उनके नाम के आगे आर्य शब्द लगा ।**

`दोनों ने 30 वर्ष की उम्र में दीक्षा अंगीकार की थी ।

आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति से उम्र व दीक्षा में 46 वर्ष बड़े थे ।

आर्य महागिरि 11 अंग व 10 पूर्वों के ज्ञाता थे ।

स्थूलभद्रस्वामी के आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति नाम के दो प्रधान शिष्य थे । वे दोनों दशपूर्वी थें । पृथ्वीतल पर विचरण कर वे अनेक भव्यजीवों को प्रतिबोध देते थें । अपने धर्मोपदेश द्वारा आर्य महागिरि ने अनेक शिष्यों को तैयार किया था ।

उस समय जिनकल्प का विच्छेद हो चुका था, फिर भी जिनकल्प से तुलना करने के लिए उन्होंने अपने गच्छ का भार आर्य सुहस्ति को सौंप दिया और स्वयं एकाकी विहार करने लगे ।

भव्यजीवों को धर्मदेशना देते हुए वे एक बार पाटलीपुत्र नगर में पधारे । उसी नगर में आर्य सुहस्ति ने वसुभूति नाम के सेठ को प्रतिबोध दिया । इसके फलस्वरूप वह सेठ जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञाता बना था । उसके बाद वह सेठ अपने परिवारजनों को धर्मबोध देने लगा, परन्तु उन्हें बोध नहीं हुआ । इसलिए सेठ ने आर्य सुहस्ति म. को विनती करते हुए कहा, ``हे प्रभो ! मेरे समझाने पर भी मेरे परिवारवाले प्रतिबोध नहीं पा रहे हैं, कृपया आप उन्हें समझाने की कोशिश करें ।''

सेठ की प्रार्थना स्वीकार कर आचार्य भगवंत उसके घर पधारे और

उन्होंने वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना प्रारंभ की । इसी बीच भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए आर्य महागिरि म. ने सेठ के घर में प्रवेश किया ।

आर्य महागिरि को देखते ही आर्य सुहस्ति अपने आसन से खड़े हो गए और उन्होंने उन्हें भावपूर्वक वंदना की ।

उसी समय श्रेष्ठी ने पूछा, ``क्या आपके भी ये गुरु हैं ?''

आर्य सुहस्ति म. ने कहा, **``ये मेरे गुरुदेव हैं, भिक्षा में अंत-प्रांत व नीरस आहार ग्रहण करते हैं । योग्य भिक्षा प्राप्त नहीं होने पर उपवास कर लेते हैं । ये महर्षि परम वंदनीय हैं, इनकी चरणरज भी स्पर्शनीय है ।''**

इस प्रकार आर्य महागिरि की स्तवना कर उन्होंने पूरे परिवार को धर्मबोध दिया । उसके बाद आर्य सुहस्ति उपाश्रय में चले गए ।

उस श्रेष्ठी ने अपने परिवारजनों को कहा, **``ऐसे त्यागी मुनियों को अत्यंत ही भक्ति और बहुमान पूर्वक दान देना चाहिए । ऐसे त्यागी मुनियों को दान देने से महान् लाभ होता है, अतः ऐसे महात्माओं के आगमन पर खूब भक्ति करनी चाहिए ।''**

दूसरे दिन आर्य महागिरि भिक्षा के लिए जब उस श्रेष्ठी के घर पधारे, तब अत्यंत ही भक्ति भाव से वह गोचरी बहोराने लगा ।

अपने श्रुतज्ञान के उपयोग से आर्य महागिरि ने वह भिक्षा दोषयुक्त जानी । वे भिक्षा लिये बिना ही वसति (उपाश्रय) में आ गए !

उपाश्रय में आकर आर्य महागिरि ने आर्य सुहस्ति को ठपका देते हुए कहा, ``कल तुमने मेरा जो विनय किया, उससे मेरी भिक्षा अनेषणीय हो गई । वे तुम्हारे उपदेश से भिक्षा देने के लिए तैयार हुए हैं ।''

आर्य सुहस्ति ने उसी समय क्षमायाचना की और भविष्य में पुनः ऐसी भूल न करने का संकल्प लिया ।

शासन-प्रभावना

एक बार जीवंत स्वामी की प्रतिमा की रथयात्रा हेतु आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति अवंती नगरी में पधारे । महा उत्सव के साथ जीवंतस्वामी की रथयात्रा नगर में आगे बढ़ने लगी । दोनों आचार्य भगवंत उस रथयात्रा के साथ आगे बढ़ रहे थे ।

उस समय संप्रति राजा उज्जयिनी में राज्य करते थे । जिस समय

वह रथ राजमहल के निकट पहुँचा, उस समय संप्रति राजा राजमहल के झरोखे में बैठकर नगर के दृश्य को देख रहे थे । अचानक आर्य सुहस्ति को देखकर वे सोच में पड़ गये, **``अहो ! इनको मैंने कहीं देखा है ।''** इस प्रकार विचार करता हुआ राजा तत्काल मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा । मंत्रीजनों ने उनका शीतोपचार किया । थोड़ी देर बाद राजा की मूर्च्छा दूर हुई । जातिस्मरण ज्ञान से उन्हें अपना पूर्वभव दिखाई दिया ।

तत्क्षण वे महल से नीचे उतर गये । आचार्य भगवंत को तीन प्रदक्षिणा देकर बोले, ``प्रभो ! जिनधर्म की आराधना का क्या फल है ?''

आचार्य भगवंत ने कहा, **``जिनधर्म की आराधना का सुपक्व फल मोक्ष और अपक्व फल देवलोक आदि के सुख हैं ।''**

पुनः राजा ने पूछा, ``प्रभो ! सामायिक का क्या फल है ?''

आचार्य भगवंत ने कहा, **``हे राजन् ! अव्यक्त सामायिक का फल राज्य आदि की प्राप्ति है ।''**

संप्रति महाराजा ने आचार्य भगवंत की बात हृदय से स्वीकार की । तत्पश्चात् राजा ने कहा, ``प्रभो ! क्या आप मुझे पहिचानते हो ?''

श्रुतज्ञान का उपयोग लगाकर आचार्य भगवंत ने कहा, ``हे राजन् ! मैं तुम्हें अच्छी तरह से पहिचान गया हूँ । पूर्वभव में तुम मेरे शिष्य थे । तुम अपने पूर्वभव की कथा सुनो ।''

``हे राजन् ! एक बार आर्य महागिरि और मैं अपने परिवार के साथ विहार करते हुए कोशांबी गए । वहाँ पर छोटी-छोटी वसति होने से हम अलग-अलग उपाश्रय में ठहरे । उस समय वहाँ भयंकर दुष्काल था, फिर भी लोग साधुओं के प्रति अत्यंत भक्तिवाले थें ।

एक बार संघाटक मुनियों ने एक श्रेष्ठी के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया । उनके पीछे-पीछे द्वार पर खड़ा भिखारी भी भीख माँगने लगा ।

वह श्रेष्ठी उन मुनियों को अत्यंत ही आदर-बहुमान पूर्वक लड्डू बहोराने लगा । श्रेष्ठी लड्डू लेने के लिए मुनियों को पुनः पुनः आग्रह करने लगा, परन्तु वे मुनि पुनः पुनः निषेध करने लगे ।

सामने से मिष्टान्न मिलने पर भी मुनियों के द्वारा निषेध करने पर उस भिखारी को बहुत ही आश्चर्य हुआ । उसने उन महात्माओं से भिक्षा याचना करने का निश्चय किया ।

जैसे ही वे महात्मा श्रेष्ठी के घर से बाहर निकले, वह भिखारी उनके पास भिक्षा की याचना करने लगा ।

महात्माओं ने कहा, **``इस भिक्षा पर हमारा अधिकार नहीं है, इस भिक्षा पर तो हमारे गुरुदेव का अधिकार है । अतः उनकी आज्ञा के बिना हम कुछ भी देने में असमर्थ हैं ।''**

मुनियों के मुख से इस जवाब को सुनकर वह भिखारी उन महात्माओं के पीछे-पीछे वसति में आया और गुरुदेव के पास याचना करने लगा । उस समय मैंने अपने ज्ञानोपयोग के द्वारा देखा कि यह भिखारी भविष्य में जिनशासन का महान् प्रभावक बनेगा । इस प्रकार विचारकर मैंने कहा, **``यदि तुम दीक्षा अंगीकार करो तो तुम्हें भोजन मिल सकता है ।''**

भिखारी ने सोचा, ``ऐसे भी मैं तकलीफ में हूँ, अतः व्रत ग्रहण करने से मुझे भोजन मिलता हो तो यह व्रत भी मुझे स्वीकार है ।'' इस प्रकार विचार कर वह दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गया ।

तत्पश्चात् मैंने उसे दीक्षा प्रदान की । दीक्षा स्वीकार करने के बाद उसे मोदक आदि खिलाये गए । स्वादिष्ट भोजन की प्राप्ति होने के कारण उसने भूख से भी अधिक भोजन कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप उसे रात को शूल की पीड़ा हुई । उस समय अन्य मुनि व श्रेष्ठी आदि नूतन मुनि की सेवा-शुश्रूषा करने लगे । सभी साधुओं ने उसे निर्यामणा कराई-वह मुनि अत्यंत ही समाधि पूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए और मरकर कुणाल राजा के पुत्र, तुम संप्रति बने हो ।

अपने पूर्व भव को सुनकर वह संप्रति राजा अत्यंत ही खुश हो गया ।

`आप की कृपा से प्राप्त यह राज्य आपको समर्पित करता हूँ !'** पूज्य आचार्य भगवंत ने कहा, **`हमने तो धन का सर्वथा त्याग किया है । हमको राज्य से क्या लेना देना ?'

`आप राज नहीं लेते हो तो मेरे योग्य अन्य आदेश करें ।

``हे प्रभो ! यह राज्य भी आपकी कृपा का फल है । उस समय आपके दर्शन नहीं हुए होते तो मुझे संयम की प्राप्ति कहाँ से होती ? गत भव में आप मेरे गुरु थे - इस भव में भी आप ही मेरे गुरु हो । हे प्रभो ! आप मुझे योग्य आदेश करें ।''

आर्य सुहस्ति ने कहा, ``राजन् ! इस लोक और परलोक में सुख देने वाले जिनधर्म को हृदय से स्वीकार करो ।''

उसी समय गुर्वाज्ञानुसार संप्रति राजा ने श्रावकधर्म स्वीकार किया । वह त्रिकाल जिनपूजा करने लगा और जैनशासन की अद्‌भुत आराधना व प्रभावना करने लगा । उसने समस्त पृथ्वी को जिनमंदिरों से विभूषित कर दी । उसने अपने जीवन में 1¼ लाख जिन मंदिर बनवाए । 36000 जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया और 1¼ करोड जिन-प्रतिमाए भरवाई-इस प्रकार उसने जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना की !

अनार्य देश में भी जिनधर्म के प्रचार हेतु उसने अनेक श्रावकों को यतिवेष प्रदान कर उस भूमि में भेजा और वहाँ के प्रजाजनों को साधु की आचार-मर्यादा आदि का शिक्षण दिलाया । इस प्रकार संप्रति राजा ने अनार्य देश के अनार्य प्रजाजनों को भी जैनधर्म से भावित बनाकर जैन शासन की अपूर्व प्रभावना की ।

संप्रति राजा ने अपने जीवन में अनेक दानशालाएँ खुलवाईं ।

संप्रतिराजा ने अनेक सामंत आदि को प्रशिक्षण देकर जैनधर्म के प्रचार कार्य में जोड़ा था । आंध्र प्रदेश, तामिलनाडू, कर्णाटक, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा, राजपुताना आदि में तो धर्मप्रचार किया ही था, परंतु भारत के बाहर चीन, बर्मा, श्री लंका, अफगानिस्तान, नेपाल, भूटान आदि में भी जैन धर्म का प्रचार कराया था ।

असंभोगिक-कल्प

एक बार संप्रति राजा ने भोजनशाला–दानशालाओं के रसोइयों को पूछा, `सभी के भोजन होने के बाद शेष भोजन कौन ग्रहण करता है ?'

रसोइयों ने कहा, `उसे हम लेते हैं ।'

संप्रति ने कहा, `वह अवशिष्ट अन्न तुम अकृत अकारित के अर्थी साधु-भागवंतों को दान करना, उसके बदले में मैं तुम्हें धन दूंगा ।'

राजाज्ञा होने से वे रसोइयें साधु-साध्वी की खूब भक्ति करने लगे ।

एक बार श्रमणोपासक संप्रति ने घी-तैल-मिठाई बेचनेवालों को भी कहा, `साधुओं को जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, वह उन्हें भक्ति से देना, उसका मूल्य मैं दूंगा ।'

इस प्रकार संप्रति ने साधु-साध्वी की खूब सेवा भक्ति की ।

वह आहार दोष युक्त होने पर भी शिष्यों के अनुराग के कारण आचार्य सुहस्ति वह आहार लेते थे ।

एक बार आर्य महागिरि ने उन्हें ठपका देते हुए कहा, `जिसका मूल्य राजा देता है, वह आहार क्रीत आदि दोष युक्त होने पर भी तुम क्यों ग्रहण करते हो ?'

आर्य सुहस्ति ने कहा, `यथा राजा तथा प्रजा' । राजा का अनुकरण कर नगरजन दान करते हैं, ऐसा मैं जानता हूँ ।'

`यह माया करता है !' ऐसा जानकर महागिरि कुपित होकर बोले । आज से आहार आदि का अपना व्यवहार अलग होगा । क्योंकि समान सामाचारी वालों को ही साथ में रहना योग्य है ।

सामाचारी भिन्न होने से अब तुम्हारे साथ रहना योग्य नहीं है ।

यह बात सुनकर आर्य सुहस्ति ने कहा, `हे भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करें । अब मैं ऐसा नहीं करुंगा ।'

महागिरि ने कहा, `इसमें तुम्हारा दोष नहीं है । क्योंकि पहले प्रभु महावीर ने कहा था कि स्थूलभद्र के बाद मेरी शिष्य संतति आचार पालन में शिथिल बनेगी ।'

इस प्रकार आर्य महागिरि असंभोगी कल्प (परस्पर गोचरी व्यवहार बंद) की स्थापना की । आर्य महागिरि अवंति की ओर चले गए ।

(57-58) राजर्षि उदायन-पृष्ठ नं. 167

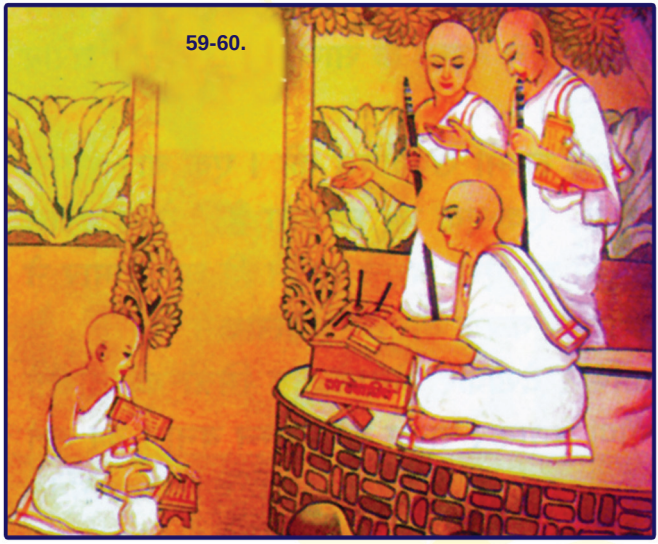

(59-60) शय्यंभवसूरि और मणक-पृष्ठ नं.176

શ્રી મનકમુનિની સજ્ઝાય

નમો નમો મનક મહામુનિ બાળપણે વ્રત લીધો રે,
પ્રેમે પિતાશું રે પરઠીયો, માયશું મોહ ન કીધો રે.
નમો નમો મનક મહામુનિ. (આંકણી)...૧

પૂરવ ચૌદ પૂરવધણી, સિજ્જંભવ જસ તાતો રે,
ચોથો પટધર વીરનો, મહિયલ માંહી વિખ્યાતો રે. નમો. નમો૦ ૨

શ્રી સિજ્જંભવ ગણધરે, ઉદ્દેશી નિજ પુત્રો રે,
સયળ સિદ્ધાંતથી ઉદ્ધરી, દશવૈકાલિક સૂત્રો રે. નમો. નમો૦ ૩

માસ છ એ પૂરવ ભણ્યો, દશ અધ્યયન રસાળો રે,
આળસ અંગથી પરહરી, ધન ધન એ મુનિ બાળો રે. નમો નમો૦ ૪

ચારિત્ર પટ માસવાડ હો, પાળી પુણ્ય પવિત્રો રે,
સ્વર્ગ સમાધિ સિધાવીઓ, કરી જગ જનને મિત્રો રે. નમો નમો૦ ૫

પુત્ર મરણ પામ્યા પછી, સિજ્ઝંભવ ગણધારો રે,
બહુ શ્રુત દુઃખ મનમાં ધરે, તેમ નયણે જળધારો રે. નમો. નમો૦ ૬

પ્રભુ તમે બહુ પ્રતિબોધિયા, સમ સંવેગીયા સાધ રે,
અમે આંસુ નવિ દીઠડાં, તુમ નયણે નિરાબાધ રે. નમો. નમો૦ ૭

અમને એ મુનિ મનકલો, સુત સંબંધથી મળીયો રે,
વિણસે અર્થ કહ્યા થકાં, પણ તેણે નવિ કળીયો રે. નમો. નમો૦ ૮

શું કહીએ રે સંસારીને, એ એહવી સ્થિતિ દીસે રે,
તન દીઠો મન ઉલ્લસે, જોતાં હિયડલું હીસે રે. નમો. નમો૦ ૯

લબ્ધિ કહે ભવિયણ તુમે, મ કરો મોહ વિકારો રે,
તો તુમે મનક તણી પરે, પામો સદ્‌ગતિ સારો રે. નમો. નમો૦ ૧૦

56. अनुयोग विभाजक आर्यरक्षित म.

चौदह विद्याओं में
पारगामी बनने के बाद भी
एक मात्र माँ के वचन के पालन के खातिर
सांसारिक भौतिक सुखों को त्यागकर
श्रमण धर्म को स्वीकार कर लेना,
कोई सामान्य घटना नहीं है ।
दीक्षा अंगीकार करने के बाद
उन्होंने
नौ पूर्वों से भी अधिक
शास्त्रों का अध्ययन तो किया ही,
इसके साथ ही
अपनी प्रवचन-लब्धि द्वारा
अपने परिवार का भी उद्धार किया ।
इतना ही नहीं,
समस्त आगमों को उन्होंने
चार अनुयोगों में विभक्त कर
भावी प्रजा पर
महान् उपकार किया है ।
समस्त जैनसंघ पर
आपका असीम उपकार है ।

स्वकुटुम्बं भवाम्भोधौ, पतन्तं वाणी बेडया ।
उत्तार्य भविकैरार्यरक्षितेनेव वेगतः ।।

1. माँ ! तू प्रसन्न क्यों नहीं ?

संगीत के सूरीले स्वरों में अन्तर के भावों को अभिव्यक्त करने की शक्ति रही हुई है । परमात्मभक्ति के रस में निमग्न भक्त जब वीणा के मधुर स्वरों के साथ तन्मय बन जाता है...तब उसे पता ही नहीं चलता है कि समय कितना बीत चुका है ।

संगीत के स्वरों ने किसको आकर्षित नहीं किया ? भोगी और योगी, दोनों के आकर्षण का केन्द्र बना है संगीत ।

भोगी को पसंद है कामोत्तेजक संगीत ।

योगी को पसंद है भक्ति और समर्पण का संगीत ।

किसी का समर्पण होता है...विशुद्ध आत्मा के चरणों में...तो किसी का समर्पण होता है जड़ के रंगों से रंजित भौतिक देह और देही के प्रति ।

समर्पण आनंद भी देता है और विषाद भी ।

शाश्वत तत्त्व के प्रति किया गया समर्पण आनंद में परिणत होता है ।

क्षणिक पदार्थों के प्रति किया गया समर्पण अन्त में विषाद को जन्म देता है ।

प्रातः काल की मधुर वेला में प्रकृति का सौंदर्य सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था । पूर्व दिशा में लालिमा छा चुकी थी । उषा देवी सूर्यनारायण के स्वागत के लिए आतुर थी । कोयल के सूरीले संगीत से वातावरण मनमोहक बन रहा था । धरती माता सूर्यकिरणों की चादर ओढ़ने के लिए उत्सुक थी ।

दशपुर की जनता में आज आनंद समा नहीं रहा था । प्रजाजनों के हृदय सरोवरों में आनंद की ऊर्मियाँ उछल रही थीं ।

महाराजा से लेकर सामान्य जन तक सब के हृदय में बड़ी भारी उत्सुकता थी ।

स्नान आदि से निवृत्त होकर, सुंदर व बहुमूल्य वस्त्रों व अलंकारों को धारण कर सभी प्रजाजन नगर के बाहर स्थित **मनोरम** उद्यान की ओर जा रहे थें । नारियाँ गीत गा रही थीं । हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चल रहे लोगों से

वातावरण प्रफुल्लित बना हुआ था । कभी हाथी की गर्जना...तो कभी घोड़े का हेषारव बालकों के दिल को प्रसन्न कर रहा था ।

प्रजावत्सल महाराजाधिराज **उदायन** भी रथ में आरूढ़ हो चुके थे । वे भी मनोरम उद्यान की ओर आगे बढ़ रहे थे । वीणा, बाँसुरी, ढोलक, मृदंग व अन्य वाद्ययंत्रों के स्वर से वातावरण संगीतमय बना हुआ था । सभी नर-नारियों के मुखमंडल पर प्रसन्नता थी । जयजयकार के नारों से समूचा आकाश मण्डल गूंज रहा था । चारों ओर स्वागत की शहनाइयाँ बज रही थीं ।

गत दिन नगर में चारों ओर नगर-रक्षकों के द्वारा आर्यरक्षित के आगमन व स्वागत की यह उद्घोषणा हो चुकी थी–

''दशपुर नगर के शणगार समा विप्रवर सोमदेव पुरोहित के पुत्र पण्डितवर्य आर्यरक्षित चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर पाटलीपुत्र नगर में पधार रहे हैं । ज्ञान की गंगोत्री समान आर्यरक्षित के स्वागत के लिए महाराजा स्वयं नगर के बाहर पधारेंगे...अतः सभी प्रजाजन को इस स्वागत यात्रा में पधारने के लिए महाराजा की आज्ञा है ।''

नगर के नर-नारियों के हृदय में नया उत्साह व नयी उमंग थी । सबसे अधिक आनंद तो विप्रवर **सोमदेव** को था । सोमदेव के हृदय में आनंद समा नहीं रहा था ।

लगभग बारह वर्ष के बाद पिता-पुत्र का मिलन होनेवाला था । सोमदेव अपने दिलोदिमाग में अनेक कल्पना-चित्र संजो रहा था ।

आज वह अपने पुत्र के प्रति गर्व ले रहा था । ``मेरा पुत्र चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आ रहा है,...वह राजसभा की शोभा में चार चांद लगाएगा...मेरी कीर्ति का ध्वज दिग्-दिगन्त तक फैलाएगा ।''

वह भी सज–धज कर अपने मित्र परिवार के साथ मनोरम उपवन में जाने के लिए निकल पड़ा था ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश के राजा महाराजा भी विद्वानों का आदर-सत्कार और सम्मान करते थें । ''विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'' की उक्ति को वे प्राचीन राजा-महाराजा अपने जीवन में सार्थक करते थें । वाद-संवाद-संगोष्ठी तथा प्रवचन आदि के माध्यम से प्रजाजन में संस्कारों के सिंचन के लिए वे अत्यंत जागरूक रहते थें ।

दशपुर के राजा उदायन भी विद्वत्-प्रिय थे । वे अपनी राजसभा में विद्वानों को योग्य स्थान देते थे और उन्हें गौरव व सम्मान देते थे ।

कुछ ही दिनों पूर्व राजा को आर्यरक्षित की प्रतिभा के समाचार मिले थे...तभी से उनके दिल में आर्यरक्षित के स्वागत की तीव्र इच्छा थी । अपनी भावना के अनुरूप महाराजा ने आर्यरक्षित के स्वागत के लिए सम्पूर्ण नगर में घोषणा करवा दी थी ।

दशपुर की प्रजा भी विद्याव्यासंगी थी । विद्वानों के प्रति प्रजा के दिल में सद्भावना थी । इसी का फल था कि सभी प्रजाजन मनोरम उद्यान की ओर जा रहे थें ।

पंडितवर्य आर्यरक्षित पास ही के गाँव से आ रहे थे...उनके दो परिचित मित्र भी उनके साथ थे ।

बराबर शुभ-मुहूर्त में आर्यरक्षित मनोरम उद्यान में आ पहुँचे ।

उनके आगमन के साथ ही **``पण्डितवर्य आर्यरक्षित की जय हो''** के नाद से सम्पूर्ण आकाश मंडल गूँज उठा ।

महाराजा उदायन और विप्रवर सोमदेव अग्र पंक्ति में खड़े थे ।

आर्यरक्षित ने सर्वप्रथम महाराजा और अपने उपकारी पिता सोमदेव के चरणों में प्रणाम किया ।

वर्षों बाद पिता-पुत्र का वह अद्भुत मिलन था । दोनों की आँखों में हर्षाश्रु बह रहे थें । पुत्र के दिल में समर्पण और सम्मान का भाव था । पुत्र के इस नम्र व्यवहार से सोमदेव का हृदय आनंद से भर आया...पिता ने पुत्र को हृदय से आशीर्वाद दिए ।

त्याग, नम्रता और समर्पण आर्य संस्कृति के जीवंत प्रतीक हैं । राजा ने आर्यरक्षित को आशीर्वाद दिया...और उसे हाथी पर आरूढ़ किया । वाद्य-यंत्रों की ध्वनि और जय-जयकारों से सारा आकाशमंडल गूंज उठा ।

नगरवासियों ने आर्यरक्षित का हार्दिक स्वागत और अभिनंदन किया । आर्यरक्षित भी हाथ जोड़कर सभी का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे । स्वागत-यात्रा धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी ।

सभी के दिल में आनंद और उत्साह था । चारों ओर भीड़ जमा थी ।

सभी के मुख पर प्रसन्नता थी...परन्तु आर्यरक्षित कुछ विचारों में खो गये थे । उनकी नजर चारों ओर घूम रही थी । ज्यों-ज्यों उनकी नजर दौड़ रही थी...त्यों-त्यों उनका दिल व्यथा से भर रहा था । भीड़ के बीच स्वजन-कुटुम्बी व मित्रजन सभी दिखाई दे रहे थें...परन्तु **वात्सल्यमूर्ति माँ के कहीं दर्शन नहीं हो पा रहे थे !**

माँ तो वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति होती है । उसके रोम-रोम में सन्तान के प्रति प्रेम और वात्सल्य होता है ।

विशाल भीड़ के बीच माँ के दर्शन न होने से आर्यरक्षित का मन व्यथित हो उठा । सभी स्वजन मित्रजन आ गए...परन्तु माँ क्यों नहीं आई ?

'क्या माँ को मेरा स्वागत पसंद नहीं ? क्या माँ के दिल में अब मेरा कोई स्थान नहीं ? क्या माँ के प्रति मुझ से कोई अविनय हो गया ? क्या माँ स्वस्थ नहीं है ?' इत्यादि अनेक विचारों ने आर्यरक्षित के मन को घेर रखा था ।

ज्यों-ज्यों स्वागत यात्रा-आगे बढ़ रही थी...त्यों-त्यों माँ के दर्शन की उत्कंठा तीव्र बनती जा रही थी...परन्तु अफसोस ! नगर के किसी भी द्वार पर आर्यरक्षित को अपनी माँ के दर्शन नहीं हो सके ।

माँ के बिना उसे यह स्वागत आडम्बर, नीरस प्रतीत हो रहा था ।

आर्यरक्षित के मन में माँ के प्रति अद्‌भुत समर्पण और सम्मान था ।

उनकी हर नजर माँ को शोध रही थी...परन्तु उनकी दर्शन-पिपासा किसी भी तरह से शान्त नहीं हो पा रही थी ।

बाह्य चक्षुओं से आर्यरक्षित सभी के अभिवादन को स्वीकार कर रहे थे...परन्तु उनके अभ्यन्तर नेत्र तो माँ के दर्शन के लिए तड़प रहे थे ।

स्वागत-यात्रा राजमार्गों से गुजर रही थी...धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ वह जुलूस राजमहल की ओर मुड़ा । राजमहल के पास ही विशाल सभामंडप तैयार था । राजभवन में शोभायात्रा की समाप्ति हुई और वह स्वागत यात्रा राजसभा में बदल गई ।

उदायन महाराजा अपने राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुए । तालियों की गड़गड़ाहट से सभामंडप गूंज उठा ।

महामंत्री ने सभा का संचालन प्रारंभ किया ।

पंडितवर्य आर्यरक्षित ने योग्य आसन ग्रहण किया ।

प्रजाजन भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गए ।

सर्वप्रथम खड़े होकर महामंत्री ने हाथ जोड़कर महाराजा को प्रणाम किया । तत्पश्चात् परमात्मा की जय बुलवाकर सभा को शान्त किया । फिर वे बोले ``प्रिय प्रजाजन ! आज आपके दिल में आनंद-उल्लास देखकर मेरा मन-मयूर नाच उठा है । आप सबको ज्ञात है कि विप्रवर सोमदेव पुरोहित के ज्येष्ठ पुत्र **आर्यरक्षित** चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर अपने नगर में पधारे हैं । आज हमने आर्यरक्षित का भव्य स्वागत किया । निकट भविष्य में ही आर्यरक्षित हमारी राजसभा के एक विशिष्ट अंग बनेंगे...और उनकी बुद्धि, प्रतिभा से समस्त प्रजा लाभान्वित बनेगी ।''...इसके पश्चात् महामंत्री ने आर्यरक्षित का विशेष परिचय दिया ।

महामंत्री के बाद स्वयं महाराजा ने खड़े होकर आर्यरक्षित को पुष्पहार पहिनाकर उसका हार्दिक स्वागत और अभिनन्दन किया और कहा-``आज से हमारी सभा को एक अनमोल रत्न की प्राप्ति हुई है, जिससे हमारी राजसभा की शोभा में चार चांद लगेंगे ।''

अंत में आर्यरक्षित ने अत्यंत विनम्र भाव से कहा- ***''वास्तव में मैं इस स्वागत के योग्य नहीं हूँ । महाराजा तथा पूजनीय माता-पिताश्री के शुभाशीर्वाद से ही मैं थोड़ा-बहुत ज्ञानार्जन कर सका हूँ...वास्तव में यश के हकदार तो वे ही हैं...उनकी ही कृपा से मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान मिला है, अतः इस सम्मान के अधिकारी तो वे पूज्यवर हैं ।''***

इतना कहकर आर्यरक्षित ने अपना आसन ग्रहण किया । तत्पश्चात् नगर के मुख्य व्यक्तियों ने आर्यरक्षित की प्रशस्ति करते हुए काव्यपाठ प्रस्तुत किए ।

थोड़ी ही देर बाद महामन्त्री ने प्रजाजनों का आभार मानकर सभा विसर्जित कर दी ।

आर्यरक्षित अपने स्वजन-मित्रजन वर्तुल के साथ अपने घर की ओर आगे बढ़ने लगे । हर दृष्टि-हर नजर में वे अपनी माँ को खोज रहे थे...परन्तु कहीं आगे भी उन्हें अपनी प्यारी माँ के दर्शन नहीं हो पाए । तीर्थसमा माँ की चरण-रज के स्पर्श के लिए उनके दिलो-दिमाग में तड़पन थी । जल बिना मछली की भाँति उन्हें इस स्वागत में भी कोई आनंद नहीं आ रहा था ।

आर्यरक्षित ने सोचा, **'शायद घर के द्वार पर माँ खड़ी होगी...माँ के दर्शन कर मैं पावन बन सकूंगा।'** परन्तु घर भी आ गया। आर्यरक्षित की आशा के बादल बिखर गए...माता के दर्शन की पिपासा शान्त न हो पाई... पड़ौस की स्त्रियों ने अक्षत और कुंकुम का तिलक कर आर्यरक्षित का स्वागत किया।

आर्यरक्षित ने घर आंगण में प्रवेश किया...परन्तु कहीं भी उन्हें अपनी प्राणप्यारी माँ दिखाई नहीं दी...आखिर मन में घुमड़ रहा वह प्रश्न वाचा के द्वारा व्यक्त हो ही गया।

आर्यरक्षित ने पुकारा-``माँ...माँ...माँ...ओ माँ !''

परन्तु घर के किसी कोने से कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

आखिर आर्यरक्षित ने पूछ ही लिया. ``माँ कहाँ है ?''

पता चला, माँ ऊपरी खंड में बैठी है और सामायिक कर रही है। माँ की ममता का प्यासा आर्यरक्षित अत्यंत तेजी से ऊपरी खंड में पहुँच गया। दूर से ही उसने माँ के दर्शन किए और उसकी आँखें हर्ष व आनन्द से भीग गईं।

आर्यरक्षित ने दूर से ही माँ के चरणों में प्रणाम किया।

परन्तु आश्चर्य ! माँ ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया।

माँ रुद्रसोमा उच्चतम संस्कारों से युक्त महासती सन्नारी थी। बचपन से ही उसने जैन धर्म का गहन अभ्यास किया था। जीव क्या है ? पुण्य और पाप क्या हैं ? इत्यादि तत्त्वों की वह पूर्ण ज्ञाता थी। तत्त्व की वह मात्र शुष्क ज्ञाता ही नहीं थी, उसने जैन तत्त्वज्ञान को जीवन में आत्मसात् भी किया था...उसके रोम-रोम में जिनेश्वर परमात्मा के प्रति अपूर्व भक्ति और समर्पण का भाव था। उसका हृदय मैत्री के भाव से भावित था। ईर्ष्या, द्वेष व अहंकार की कालिमा को उसने प्रेम-मैत्री व नम्रता के जल से धो दिया था। जगत् के यथार्थ स्वरूप का उसे ज्ञान था। जगत् के कर्मजन्य वैचित्र्य भावों को देखकर भी वह समत्व भाव में स्थिर थी।

सम्यग्दर्शन का प्रदीप उसकी अंतरात्मा में प्रज्वलित था। आत्मबंधन रूप राग-द्वेष के यथार्थ स्वरूप की वह ज्ञाता थी। **``ममत्व ही बंधन है।''** इस सनातन सत्य को मात्र उसने जाना ही नहीं था, बल्कि उसे जीवन में आत्मसात् भी किया था...और इसी के फलस्वरूप उसे यह भौतिक संसार एक बंधन-सा प्रतीत हो रहा था। जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा बताए हुए

सनातन सत्य के प्रति उसके दिल में अपूर्व श्रद्धा थी। **''संसार के भौतिक सुख क्षणिक हैं, नाशवंत हैं, इन सुखों की प्राप्ति से, आत्मा कभी तृप्त होने वाली नहीं है''**, -यह बात उसके दिल में जम चुकी थी।

रुद्रसोमा के मन में त्याग-तप और विरक्ति की भावना थी। वह अनेक बार सोचती थी, **''इस संसार के बंधन से मैं कब छूटूंगी ?...वह दिन कब आएगा जब मैं संसार के नश्वर सम्बन्धों से मुक्त होकर शाश्वत पदार्थ-आत्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ सकूंगी ! क्या मेरी संतान इसी भौतिक मार्ग पर चलेगी ? अहो ! क्या मेरी संतान भी भौतिकवाद के रंग में रंग जाएगी ? क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे मैं अपनी संतान को संसार के इस भयंकर जाल से मुक्त कर सकूँ ?''**

वह सदा परमात्मा की पूजा-भक्ति करती और प्रभु से भव-निर्वेद, मोक्ष-संवेग, मार्गानुसारिता आदि गुणों की प्रार्थना करती थी।

माँ रुद्रसोमा को भी ये समाचार मिल चुके थे कि उसका पुत्र चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आज नगर में प्रवेश कर रहा है...और महाराजा की ओर से उसका स्वागत होनेवाला है...परन्तु उस स्वागत यात्रा में वह नहीं गयी थी। थोड़ी ही देर बाद रुद्रसोमा की सामायिक पूर्ण हुई। सामायिक में वह मौन थी...उसने अपने पुत्र आर्यरक्षित को कुछ भी नहीं कहा था क्योंकि वह जानती समझती थी कि सामायिक में संसार सम्बन्धी किसी भी प्रकार का चिंतन नहीं करना चाहिए। उस नियम के पालन में वह दृढ़ थी।

आर्यरक्षित भी जानता था कि माँ सामायिक में है, अतः उनके चरणों का स्पर्श नहीं हो सकता है...अतः वह भी माँ के सामने मौन खड़ा था।

रुद्रसोमा ने सामायिक पूर्ण की और तत्क्षण आर्यरक्षित प्यारी माँ के चरणों में गिर पड़ा। उसकी आँखों से आनन्द के अश्रु प्रवाहित होने लगे। आर्यरक्षित ने देखा, `माँ के चेहरे पर कोई प्रसन्नता सूचक चिह्न नहीं है।'

उसने पूछा-**''माँ ! ओ माँ ! आज नगर के समस्त प्रजाजन के दिलों में आनन्द की ऊर्मियाँ उछल रही हैं। सभी खुश हैं...परन्तु तेरी आँखों में विषाद क्यों ?''**

उसने सोचा-''इतने शास्त्रों के अध्ययन के बाद भी यदि मैं अपनी माँ को खुश नहीं कर सका...तो मुझे धिक्कार है।''

इतना सोचकर उसने कहा-``ओ माँ ! तेरी अप्रसन्नता का कारण क्या है ? ...तेरे मुख पर विषाद देखकर मेरा दिल काँप रहा है, माँ ! जो भी कारण हो, मुझे कह, मैं तेरे मुख की विषादावस्था को देखने में असमर्थ हूँ।

माँ ! मेरी जो भूल हो...मुझे बता। मैं तेरी आज्ञा शिरोधार्य करूंगा। दुनिया को प्रसन्न करने में मुझे आनन्द नहीं है, मैं तो तेरी प्रसन्नता चाहता हूँ।'' बोलते-बोलते आर्यरक्षित का गला भर आया...वह आगे कुछ भी नहीं बोल पाया। श्रमणोपासिका माँ रुद्रसोमा ने अपने पुत्र में मातृभक्ति का आदर्श देखा,...शान्त और गम्भीर स्वर से अपनी वाचा प्रकट करते हुए वह बोली-

``बेटा, मैं तेरी माँ हूँ...इसलिए अप्रसन्न हूँ।''

माँ के शब्द आर्यरक्षित ने सुने...परन्तु वह कुछ भी समझ नहीं पाया।

उसने कहा-``माँ होकर...अप्रसन्नता का कारण ? मेरी समझ में नही आ रहा है।''

``बेटा ! आर्यरक्षित ! मेरे दिल में तेरे प्रति प्रेम है...स्नेह है...वात्सल्य है। मेरे हृदय में तेरी हितचिन्ता का झरना बह रहा है...मैं चाहती हूँ, तू पूर्णता प्राप्त करे।''

``माँ ! तुझे पता नहीं है, मैं चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आया हूँ...राजा और प्रजा सभी का सम्माननीय बना हूँ। क्या मेरी इस विद्या में अपूर्णता दिखाई दे रही है ?''

``बेटा ! मेरे दिल में मात्र इस जीवन की चिन्ता नहीं है। तू जानता है कि **इस देह में रहा आत्म-तत्त्व शाश्वत है। इस देह के विनाश के साथ आत्मा का कोई नाश होने वाला नहीं है। देह क्षणिक है, देही (आत्मा) शाश्वत है। देह की चिन्ता / देह के सौन्दर्य की चिन्ता के लिए जीवन नहीं है...इस जीवन की सार्थकता तो आत्मा की पूर्णता पाने में है।''**

``बेटा ! तू जिस विद्या को पढकर आया है...वह तो विनाशी तत्त्व की विद्या है। इस विद्या के अभ्यास से पद, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की प्राप्ति हो सकती है...परन्तु वह सब क्षणिक है। क्षणिक पदार्थों में आनन्द पाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। तू जानता ही है कि इस दुनिया के भौतिक पदार्थों का सौन्दर्य व अस्तित्व क्षणिक और विनाशी है।''

``बेटा ! मेरे दिल में तेरे प्रति अपार स्नेह है...मुझे आनन्द होता

यदि तू शाश्वत तत्त्व की विद्या सीख कर आता । क्षणिक तत्त्व का आनन्द विनाशी है...शाश्वत तत्त्व का आनन्द अविनाशी है ।''

``यह जीवन अल्पकालीन है...इस जीवन में यदि शाश्वत तत्त्व से अनुराग न जन्मे तो फिर किस जीवन में आत्म-तत्त्व की साधना कर पायेंगे ? अतः बेटा ! इस दुर्गतिप्रद विद्या के अध्ययन से मैं कैसे प्रसन्न बनूँ ?'' माँ ने अपने दिल की व्यथा व्यक्त की ।

``माँ ! ओ माँ ! तेरे दिल में मेरे प्रति स्नेह है...और मेरे दिल में तेरे प्रति भक्ति है...मेरे लिए तो तू ही तीर्थ है...तू ही सर्वस्व है...तू जो आज्ञा करेगी, वह मुझे स्वीकार्य है, बोल ! मैं कौन-सा अध्ययन करूँ तो तुझे प्रसन्नता होगी ? ...मुझे तेरा आशीर्वाद प्राप्त होगा ?'' बेटे ने कहा ।

``बेटा ! तेरी इस समर्पण भावना से मुझे प्रसन्नता है । बेटा ! तू यदि **दृष्टिवाद** का अध्ययन करे तो मुझे बडी प्रसन्नता होगी ।''

माँ के मुख से `दृष्टिवाद' का नाम सुनकर आर्यरक्षित प्रसन्न हो उठा । उसने सोचा, `दृष्टिवाद' नाम ही कितना सुन्दर है ! तो फिर उसके अध्ययन में तो कितना आनन्द आएगा ?''

``माँ ! ओ प्यारी माँ ! मुझे बता...यह `दृष्टिवाद' मुझे कौन पढा-एगा ?''

माँ ने कहा, **``हे वत्स ! मेरी बात तू ध्यानपूर्वक सुनना । इस `दृष्टिवाद' के ज्ञाता जैनमुनि होते हैं । वे महासत्त्वशाली होते हैं, सन्मार्गगामी होते हैं...और उस मार्ग पर चलते समय बीच में कितने ही परिषह-उपसर्ग आएँ तो भी वे सन्मार्ग से च्युत नहीं होते हैं । आत्म-साधना ही उनका जीवनमंत्र होता है । भौतिक जगत् से वे परे होते हैं । अब्रह्म और परिग्रह के पाप से वे सर्वथा मुक्त होते हैं । संसार में जीवात्मा को इन्हीं दो पापों का आकर्षण होता है...परन्तु ये जैनमुनि इन दोनों पापों से सर्वथा मुक्त होते हैं- इतना ही नहीं वे अपने जीवन में, जीवन-निर्वाह के लिए भी किसी जीव की हिंसा नहीं करते हैं । उनके जीवन में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा होती है । उनका मन परमार्थ में स्थित होता है । दुनिया के क्षणिक और भौतिक सुखों के वे त्यागी होते हैं...जीवन का हर पल वे आत्मा के शुद्धिकरण में व्यतीत करते हैं । इतना ही नहीं वे सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र की साक्षात् मूर्ति होते हैं ।**

इस प्रकार जैनमुनि के जीवन का वृत्तान्त कहने के बाद रुद्रसोमा ने कहा, ``बेटा ! इस ``दृष्टिवाद'' के ज्ञाता तोसलीपुत्र आचार्य हैं ।''

``माँ ! ओ माँ ! मुझे जल्दी कह...वे आचार्य कहाँ बिराजमान हैं ?''

``बेटा ! वे आचार्य भगवंत अभी इक्षुवाटिका में बिराजमान हैं ।''

``माँ ! वे मुझे ``दृष्टिवाद'' पढ़ाएंगे न ?''

``हाँ ! बेटा ! वे तुझे अवश्य दृष्टिवाद सिखाएंगे...तू नम्र है...तू विनीत है ...आज्ञांकित है...तू अवश्य उनका कृपापात्र बनेगा । बेटा ! जा, मेरा शुभाशिष है, तू दृष्टिवाद का अध्ययन कर ।''

``माँ ! तेरी इस मंगल-भावना को पूर्ण करने के लिए मैं कल ही प्रातःकाल आचार्य भगवंत के पास जाऊंगा ।'' आर्यरक्षित ने कहा ।

माँ की आँखों में हर्षाश्रु आ गए । आर्यरक्षित माँ के चरणों में गिर पड़ा । रुद्रसोमा ने पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर शुभ आशीर्वाद दिया ।

माँ-पुत्र ने शाम का भोजन किया । तत्पश्चात् आर्यरक्षित अपने शयनकक्ष में पहुँच गया ।

2. दीक्षा स्वीकार

स्वप्न की दुनिया बड़ी विचित्र है । स्वप्न-सृष्टि मानव हृदय में अनेक प्रकार के उत्पात मचाती है और आशा की उज्ज्वल किरणें भी चमका देती है । स्वप्न की अगम्य कल्पना में मानव कभी नन्दनवन में पहुँच जाता है...तो कभी मरुभूमि के भयावह रेगिस्तान में भी । कभी हर्ष से नाच उठता है...तो कभी शोक से क्रन्दन कर बैठता है । स्वप्न की रंगीली दुनिया में कभी उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच जाता है तो कभी गहरी खाई में गिर जाता है ।

पण्डितवर्य आर्यरक्षित शय्या पर सोया हुआ था...परन्तु उसकी आँखों में तन्द्रा या निद्रा नहीं थी...वह अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाओं में डूबा हुआ था । जैनाचार्य के पवित्र चरित्र के श्रवण के बाद उसके मन में नई आशा और नई किरण प्रस्फुटित हो रही थी ।

आकाश में पूर्णिमा का चंद्र अपनी सोलह कलाओं के साथ खिला हुआ था । चंद्र की निर्मल ज्योत्स्ना धरती के अन्धकार पट को चीर रही थी ।

वातावरण में नीरवता व्याप्त थी । आर्यरक्षित के मन में जैनाचार्य से मिलने की तीव्र उत्सुकता उत्कंठा थी । आर्यरक्षित विचारों में खोया हुआ

था...धीरे-धीरे रात्रि आगे बढ़ने लगी...और आर्यरक्षित निद्राधीन हो गया । वह एक नवीन स्वप्नसृष्टि में खो गया ।

नदी के नीर की भाँति समय का प्रवाह अस्खलित गति से बहता रहता है । हाँ ! कोई उस प्रवाह के बीच नवीन सृजन कर देता है...तो कोई प्रमाद के वशीभूत होकर समय को व्यर्थ गँवा देता है ।

रात्रि व्यतीत हुई...मुर्गे ने बाँग दी...मंगल ब्राह्ममुहूर्त में आर्यरक्षित की निद्रा खुली...शय्या पर बैठकर उसने परमात्मा का नाम-स्मरण किया । ब्रह्मअर्चना की । स्नानादि से निवृत्त होकर फिर वह माँ के चरणों में पहुँच गया । उसने माँ के चरणों में बहुमानपूर्वक प्रणाम किया । माँ ने पुत्र को आशिष दी । माँ का मन प्रसन्नता से भर आया ।

ऊषा रानी का सोनेरी पालव सरोवर के सुमधुर जल पर फैल गया था । पूर्व दिशा में मृदु और शीतल वायु चारों दिशाओं में नवीन जीवन भर रहा था । कोयल का कूजन प्रारंभ हो चुका था ।

माँ की शुभाशिष लेकर आर्यरक्षित ने इक्षुवाटिका की ओर प्रस्थान किया ।

मन में उत्साह और उमंग हो तो चरणों में भी सहज गति होती है और मन यदि विषादग्रस्त हो तो गति में भी सतत ब्रेक लगा रहता है ।

आर्यरक्षित के दिल में उमंग और उत्साह था...अतः वह अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ रहा था ।

आर्यरक्षित की ख्याति और उसके आगमन को सुनकर अनेक मित्रजन आर्यरक्षित को बधाई और भेंट देने के लिए दशपुर आ रहे थें । गत दिन भी दूर-दूर से अनेक मित्रजनों ने आकर आर्यरक्षित का अभिवादन किया था ।

सोमदेव पुरोहित के एक मित्र, जो खेती का व्यवसाय करता था, उसे कल देरी से आर्यरक्षित के आगमन के समाचार मिले थे, अतः वह आज सूर्योदय के पूर्व ही अपने गाँव से निकलकर सोमदेव पुरोहित के घर आ रहा था । बीच मार्ग में उसे आर्यरक्षित मिल गया, उसने आर्यरक्षित का हार्दिक स्वागत किया और उसे गन्ने के टुकडें भेंट देने लगा । आर्यरक्षित ने इक्षुदण्ड गिने । बराबर साढ़े नौ टुकड़े थें ।

आर्यरक्षित ने कहा-``पूज्यवर ! मैं माता की आज्ञा से बाहर जा रहा हूँ...कार्य समाप्ति के बाद शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा । आप मेरे घर पधारें और माता पिता को यह भेंट प्रदान करें ।''

आर्यरक्षित की यह बात सुनकर उस मित्र ने नगर की ओर प्रस्थान किया ।

संसार के रंगमंच पर होने वाली घटनाओं के पूर्वसंकेत बतलाने में शकुन-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । शकुन किसी भी घटना का सर्जक नहीं है...किन्तु सूचक अवश्य है । शुभ-अशुभ शकुन से हम भविष्य में होनेवाली घटनाओं का अनुमान कर सकते हैं ।

आर्यरक्षित सोचने लगा-``इक्षुवाटिका की ओर मैं जा रहा हूँ और मुझे इक्षुखण्ड के जो शकुन हुए हैं...वे अत्यंत शुभ लगते हैं । जहाँ तक मुझे लगता है 9½ गन्नों के संकेतानुसार मुझे दृष्टिवाद के 9½ अध्याय अथवा पूर्वों का बोध हो सकेगा । इससे अधिक बोध सम्भव नहीं है ।''... इत्यादि सोचते हुए आर्यरक्षित आगे बढ़ने लगा । थोड़ी देर में वह इक्षुवाटिका में पहुँच गया ।

इक्षुवाटिका के एक खण्ड में तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत विराजमान थे । उस खण्ड में अनेक मुनिवर स्वाध्याय और ध्यान में तल्लीन थे । स्वाध्याय की शब्दध्वनि सुनकर आर्यरक्षित द्वार पर ही खड़ा हो गया और असमंजस में डूब गया, ``अहो ! ये जैन मुनि स्वाध्याय में मग्न बने हुए हैं । इनके पास कैसे जाना चाहिए ? क्या बोलना चाहिए ? किस प्रकार बात-चीत करनी चाहिए ? इत्यादि विधि से तो मैं अनभिज्ञ हूँ ।'' जिससे ज्ञान पाना है-उनके औचित्य का किसी प्रकार से भंग न हो जाए'' यह चिन्ता आर्यरक्षित को सताने लगी ।

वह सोचने लगा-``अन्दर जाऊँ ? या न जाऊँ ?''

पुण्यशाली को किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए कोई विशिष्ट प्रयत्न और पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता है, उसके लिए तो लक्ष्मी स्वयं द्वार पर आकर खड़ी होती है ।

आर्यरक्षित चिन्तामग्न था कि मैं आचार्य भगवंत के पास कैसे जाऊँ?...उसे भय था कि कोई अविधि हो जाए तो कहीं लाभ के बदले नुकसान न हो जाए !

थोड़ी ही देर में नगर से एक **``ढड्ढर''** सुश्रावक आचार्य भगवंत को वन्दन करने के लिए इक्षुवाटिका में आया । उसने आचार्य भगवंत के खंड में प्रवेश किया । द्वार पर छिपकर आर्यरक्षित ``ढड्ढर'' श्रावक की प्रत्येक क्रिया को सूक्ष्मता से देखने लगा । ढड्ढर श्रावक ने गुरुदेव के चरणों में विधिपूर्वक वन्दन किया ।

बुद्धिनिधान आर्यरक्षित ने ढड्ढर श्रावक की गुरुवन्दन विधि को बराबर याद कर लिया ।

जिस व्यक्ति पर सरस्वती की कृपा बरसती हो...उस पुण्यधन आत्मा को, एक ही बार सुनने से याद हो जाए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आर्यरक्षित में अवधारणा की कोई अपूर्व शक्ति थी ।

गुरुवन्दन कर ढड्ढर श्रावक गुरु-चरणों में बैठ गया ।

बस ! मन में अत्यन्त ही शुभभाव को धारण कर आर्यरक्षित ने गुरुदेव के खण्ड में प्रवेश किया और सर्वप्रथम मस्तक पर अंजलि स्थापित कर, मस्तक झुकाते हुए **``मत्थएण वंदामि''** बोला । तत्पश्चात् अत्यंत ही विनम्र भाव से उसने विधिपूर्वक गुरु को वन्दन किया और वन्दन करने के बाद वह गुरुचरणों में बैठ गया ।

``सर्व साधुओं को वन्दन करने के बाद गुरु-चरणों में बैठे हुए श्रावक को भी प्रणाम करना चाहिए''** इस विधि का ज्ञान नहीं होने के कारण आर्यरक्षित ने वहाँ बैठे हुए ढड्ढर श्रावक को प्रणाम नहीं किया । आर्यरक्षित की इस अपूर्ण क्रिया को देखकर तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत ने सोचा, **``यह कोई नवीन श्रावक लगता है'', अतः आचार्य भगवंत ने उसे पूछा-**``हे महानुभाव ! किससे धर्म की प्राप्ति हुई है ?''**

आर्यरक्षित ने पास में ही बैठे ढड्ढर श्रावक की ओर इशारा किया ।

इसी बीच एक मुनिवर ने आकर कहा-``भगवन् ! यह तो श्रमणोपासिका रुद्रसोमा का पुत्र है । कल ही राजा ने इसका नगरप्रवेश करवाया था । चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आया है...परन्तु यहाँ इसके आगमन का क्या कारण है ? यह पता नहीं है ।''

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न होकर आर्यरक्षित ने कहा-``गुरुदेव ! मेरी माता ने मुझे दृष्टिवाद के अध्ययन के लिए आपके पास भेजा है...मैं आपके पास दृष्टिवाद के अध्ययन के लिए आया हूँ ।''

आचार्य भगवन्त सोचने लगे-``धन्य है उस माता को । धन्य है उस श्राविका को, जो इस प्रकार स्नेह के बन्धनों को तोड़कर पुत्र के आत्महित की चिन्ता कर रही है । वास्तव में यह पुत्र बड़भागी है, जिसे मोक्षमार्ग में प्रेरक ऐसी माता मिली है ।''

आर्यरक्षित के मुखपर प्रसन्नता थी...वाणी में मधुरता थी...और हृदय में समर्पण का शुभभाव था । मन-वचन-काया के पवित्र शुभ योगों ने आचार्य भगवन्त के दिल में एक आकर्षण जमा दिया ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त सोचने लगे, ``यह महानुभाव अपने पवित्र आचारों से अत्यन्त कुलीन प्रतीत होता है । **``आकृतिर्गुणान् कथयति''** की उक्ति के अनुसार इसमें अनेकविध योग्यताएँ रही हुई हैं । यह आस्तिक / श्रद्धालु प्रतीत होता है और इसमें अपनी मातृ तुल्य उचित कोमलता दिखाई दे रही है...अतः यह जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा बताए हुए मार्ग के लिए योग्य है ।''

इस विचार के साथ ही गुरुदेव तोसलीपुत्र ने श्रुत का उपयोग दिया और वे श्रुतज्ञान के बल से आर्यरक्षित का भविष्य देखने लगे-**``अहो ! युगप्रधान वज्रस्वामी के पश्चात् ये जिनशासन की यश-पताका को दिग्-दिगंत तक फैलानेवाले महाप्रभावक होने वाले हैं ।''**

आचार्य भगवन्त श्रमणोपासिका रुद्रसोमा के जीवन से सुपरिचित थे...रुद्रसोमा आचार्य भगवन्त की सांसारिक भगिनी थी । रुद्रसोमा के दिल में शासन-उन्नति व रक्षा की जो प्रबल भावना थी...उसे आचार्य भगवन्त अच्छी तरह जानते थे ।

संसार में पुत्र-मोह का एक जबरदस्त बन्धन है । इस कठोर बंधन को तोड़ना सामान्य बात नहीं है...उसके लिए वज्रसी छाती चाहिए । माँ रुद्र-सोमा ने पुत्रव्यामोह का वस्त्र उतार दिया था...जगत् के स्वरूप को वह अच्छी तरह जानती थी ।

आचार्य भगवन्त ने आर्यरक्षित में भावी ``प्रभावक'' के दर्शन किए...और वे अत्यन्त सुमधुर स्वर से बोले-**``महानुभाव ! तुम्हारी भावना उत्तम है...परन्तु जैन दीक्षा के बिना दृष्टिवाद का अध्ययन नहीं हो सकता है...यह जैनशासन की विधि मर्यादा है ।''**

``प्रभु ! मर्यादा का पालन अवश्य होना चाहिए । इस कार्य के लिए जो भी मर्यादा हो... उसका पालन अवश्य होना चाहिए, क्योंकि विधि के पालन का सर्वत्र सुन्दर परिणाम होता है ।''

``प्रभु ! आप जो भी आज्ञा करेंगे...उस आज्ञा के पालन के लिए मैं

कटिबद्ध हूँ, अतः उस कार्य के लिए आपको जो उचित लगे, मुझे आज्ञा करें। आप मुझे जैन-विधि से प्रव्रज्या प्रदान करने का अनुग्रह करें।''

``प्रभु ! मेरी एक प्रार्थना है-**''मिथ्या मोह के कारण इस नगर की प्रजा मुझ पर अत्यन्त राग करती है। सम्भव है, राजा भी मेरी दीक्षा छुड़वा दे...अबुधजनों का ममत्व अत्यन्त ही दृढ़ होता है...उसका त्याग कराना, अत्यन्त कठिन कार्य है, अतः दीक्षा देने के बाद कृपया यहाँ से विहार कर दें...तो अच्छा रहेगा, जिससे जैनशासन की लघुता न हो।''**

आर्यरक्षित की इस भावना को जानकर तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। सोचने लगे, ``अहो ! इसमें कितनी दीर्घदर्शिता है ? शासन की हीलना / निन्दा से बचने / बचाने के लिए यह कितना सावधान है !''

संसारी जीवों के रंग-राग से आचार्य भगवन्त सुपरिचित थे, अतः उन्होंने कहा, **''महानुभाव ! तुम्हारी बात सत्य है...संसारी जीवों के लिए ममत्व का एक मजबूत बंधन होता है और उस बंधन को तोड़ना उनके लिए अत्यन्त कठिन होता है...अतः तुम्हारी भावनानुसार दीक्षा के पश्चात् यहाँ से विहार की भावना रखता हूँ।''**

आचार्य भगवन्त ने दीक्षा के लिए तत्पर बने आर्यरक्षित को महाव्रतों का स्वरूप समझाया। आर्यरक्षित यति-दिनचर्यादि आचारों को ध्यानपूर्वक सुनने लगा। ज्यों-ज्यों साधुजीवन के महाव्रतों का स्वरूप समझने लगा, त्यों-त्यों उसके दिल में उस पवित्र जीवन के प्रति सद्भाव तीव्र होने लगा।

आचार्य भगवन्त ने आर्यरक्षित को भव और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझाया। भव और मुक्ति के यथार्थ स्वरूप के अवबोध के साथ ही आर्यरक्षित का दिल भवबन्धन से मुक्त बनने के लिए और मुक्ति के परमानन्द को पाने के लिए आतुर हो उठा। ``गुरुदेव ! भव के बन्धन से मुक्त बनने के लिए मुझ पर अनुग्रह कर...मुझे प्रव्रज्या प्रदान करो।''

गुरुदेव ने उसकी भावना को जानकर दीक्षा-विधि प्रारम्भ की।

जैन शासन में मुमुक्षुजन को ही दीक्षा दी जाती है। जिसके मन में संसार के प्रति भय पैदा हुआ हो...जिसके दिल में मोक्ष के प्रति तीव्र रुचि पैदा हुई हो...जिसके दिल में पाप के प्रति नफरत जगी हो। ऐसी आत्मा चारित्र

धर्म के लिए योग्य गिनी गई है । जिसके दिल में संसार के सुखों के प्रति तीव्र राग–आसक्ति रही हुई हो...जिसके दिल में पाप के प्रति लेश भी भय न हो...ऐसी आत्मा जैन शासन की प्रव्रज्या के लिए अयोग्य गिनी गई है ।

भवबन्धन से मुक्त बनने के लिए मुमुक्षु आत्मा गुरुदेव से स्वयं ही प्रार्थना करती है कि ``मुझे प्रव्रजित करो...मुझे साधु वेष प्रदान करो ।''

दीक्षाविधि की यह प्रणालिका है । उस विधि से पता चलता है कि जैन दीक्षा के अभिलाषी के जीवन में कितना विनय–समर्पण भाव होना चाहिए ।

जैन प्रव्रज्या कोई वेष परिवर्तन की क्रिया मात्र नहीं है । प्रव्रज्या कोई नाट्यकला का प्रदर्शन नहीं है ।

जैन प्रव्रज्या तो जीवन-समर्पण का एक अद्‌भुत समारोह है । मुमुक्षु आत्मा चारित्र्यधर्म स्वीकार कर...अपने मन-वचन और काया के तीनों योग गुरु-चरणों में समर्पित कर देती है । मुमुक्षु शिष्य का न तो स्वतंत्र विचार होता है...न ही स्वतंत्र वाणी...और न ही स्वतंत्र प्रवृत्ति ।

जिनाज्ञा और गुर्वाज्ञा का प्रतिबिम्ब ही उसका विचार, उसकी वाणी और उसका वर्तन होता है ।

जिन शासन में ''गुरु'' की भी अपनी योग्यताएँ बतलाई गई हैं । हर किसी को ''गुरु'' बनने का अधिकार नहीं है । गुरु पर शिष्य के आत्म-हित की सबसे बड़ी जवाबदारी होती है । शिष्य का योगक्षेम करने की ताकत हो और जिसमें स्व-पर हिताहित को जानने, सोचने व करने की शक्ति हो, वही गुरुपद प्राप्त कर सकता है और वही व्यक्ति गुरुपद के गौरव को बढ़ा सकता है ।

प्रव्रज्या-विधि में गुरुदेव शिष्य के मस्तक पर वासचूर्ण डालते हैं और कहते हैं...**''हे महानुभाव । तुम जल्दी ही भव के निस्तार को प्राप्त करो ।''**

तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत ने प्रव्रज्या विधि कराकर, आर्यरक्षित के मस्तक पर मंत्रित व सुगंधित वास निक्षेप किया । तत्पश्चात् आचार्य भगवन्त ने उसके मस्तक का केशलोच किया ।

केशलोच एक सामान्य विधि नहीं है...उसके पीछे देहाध्यास को तोड़ने का एक महान् विज्ञान रहा हुआ है । देह के प्रति निर्मम बनी आत्मा, स्वेच्छा से अपना केश-लोच करवाती है ।

आचार्य भगवन्त ने क्लेश की भाँति सर्व केशों का भी लुंचन कर दिया ।

उसके बाद ईशान कोने में जाकर आर्यरक्षित ने अपने गृहस्थ-वेष का परित्याग किया और साधु जीवन के श्वेत वस्त्र धारण किए ।

आर्यरक्षित के जीवन में एक नया मोड़ आया ।

वे संसारी मिटकर साधु बन गए ।

वे भोगी मिटकर योगी बन गए ।

वे अगारी मिटकर अणगार बन गए ।

साधु वेष के साथ ही आर्यरक्षित की जीवनचर्या / दिनचर्या बदल गयी ।

मानव मन पर वेष का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । वेष भी शुभाशुभ भावों का जनक है । उद्‌भट वेष कामवासना को उद्दीप्त करता है...तो साधु का पवित्र वेष वासनाओं के जाल को भस्मीभूत कर देता है और जीवन में नयी चेतना लाता है ।

गुरुदेव ने आर्यरक्षित के मस्तक पर हाथ रखा...और उसे हृदय से आशिष प्रदान की ।

प्रव्रज्या विधि की समाप्ति के बाद नूतन मुनिवर आर्यरक्षित को साथ लेकर आचार्य भगवन्त ने वहाँ से विहार कर दिया ।

साधु जीवन अर्थात् यतनामय जीवन । यतना पूर्वक चलना, बोलना, खाना, पीना, सोना, उठना इत्यादि । यतना यह साधु जीवन का अलंकार है ।

आर्यरक्षित मुनिवर के संयमजीवन का शुभारंभ हो चुका था । उनके श्रमण-जीवन में माता की भावना निमित्त बनी । बस ! नूतन मुनिवर साधु-चर्या में मस्त बन गए । **स्वाध्याय साधु जीवन का मुख्य अंग है । शास्त्र में साधु के लिए पाँच प्रहर तक स्वाध्याय करने का विधान है ।**

आर्यरक्षित स्वाध्याय की साधना में आकण्ठ डूब गए । स्वाध्याय के साथ-साथ संयम जीवन की प्रत्येक क्रिया भी वे उपयोग पूर्वक करने लगे ।

योग्य गुरु को योग्य शिष्य की प्राप्ति हो चुकी थी । तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त भी अत्यन्त प्रेम व वात्सल्यपूर्वक नूतन मुनिवर आर्यरक्षित को ज्ञान-दान कर रहे थे । नूतन मुनिवर भी अत्यन्त नम्र, विनीत और ज्ञानपिपासु होने के कारण गुरुदेव के ज्ञानदान को भक्तिपूर्वक ग्रहण कर रहे थे । शास्त्र के अध्ययन द्वारा आर्यरक्षित मुनिवर शास्त्र के ज्ञाता बने ।

शास्त्रज्ञ बनने के कारण वे स्व-पर हिताहित के ज्ञाता बने ।

उनकी हर प्रवृत्ति में नम्रता के दर्शन होने लगे ।

शास्त्र तथा गुरु आज्ञानुसार वे जीवन जीने लगे । गुरुदेव तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त ने अपना ज्ञान-खजाना आर्यरक्षित के सामने खाली कर दिया था... और आर्यरक्षित ने उस गुरु-प्रदत्त भेंट को अच्छी तरह से ग्रहण किया था ।

``आर्यरक्षित की ज्ञानपिपासा अपूर्व है...यदि उसे युगप्रधान शासन प्रभावक वज्रस्वामीजी के पास विशेष अध्ययन के लिए भेजा जाए तो आर्यरक्षित को विशेष लाभ हो सकता है और आर्यरक्षित जिनशासन का महान् प्रभावक बन सकता है ।'' ऐसा आचार्य भगवन्त सोचने लगे ।

3. निर्यामणा

``धन्यातिधन्य हैं वे शिष्य, जो गुरुदेव के हृदय में बसे हैं और धन्य हैं वे शिष्य, जिनके हृदय में गुरु का वास है ।''

आर्यरक्षित मुनिवर ने अपने जीवनचरित्र द्वारा शास्त्र की इस उक्ति को जीवन में चरितार्थ किया था ।

उनके जीवन में ऐसा अपूर्व समर्पण था कि वे गुरु के हृदय में बस गए थे ।

उनके हृदय में प्रगाढ़ गुरुभक्ति थी, जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में सतत गुरु का वास था ।

जिस शिष्य के हृदय में गुरु का वास है, उस शिष्य को गुरु का विरह कभी नहीं होता है ।

भौतिक देह से कदाचित् वह विनीत शिष्य गुरु-चरणों से सैकड़ों मील दूर हो सकता है, परन्तु उसके मन-मन्दिर में गुरु का विरह कभी नहीं होता है ।

विनीत शिष्य की योग्यता जानकर एक दिन तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त ने ज्ञानपिपासु मुनिवर आर्यरक्षित को बुलाकर कहा, ``वत्स ! अवशिष्ट पूर्वों के अभ्यास के लिए तुझे उज्जयिनी नगरी में युगप्रधान वज्रस्वामीजी के पास जाना होगा ।''

``गुरुदेव ! तब तो मुझे आपका विरह हो जाएगा ?''

``वत्स ! जिसके दिल में गुरु के प्रति समर्पण रहा हो, उसे गुरु का विरह कभी नहीं होता है । शास्त्राध्ययन से तू जानता है कि गुरु की आज्ञा से सैकड़ों मील दूर गया शिष्य भी गुरु के समीप में है...और गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर गुरु के निकट रहा शिष्य भी गुरु से कोसों दूर है ।''

``वत्स ! तेरे मन में जो गुरु भक्ति का आदर्श जीवन्त है...उससे मुझे पूर्ण सन्तोष है । युगप्रधान आचार्य श्रीवज्रस्वामीजी दशपूर्वधर महर्षि हैं, वे श्रुतज्ञान के महासागर हैं...और अब वृद्धावस्था को भी प्राप्त हैं ।''

``वत्स ! तुम्हारी अन्तरंग योग्यता को देखकर मेरे दिल में विचार आया है कि यदि तुम वज्रस्वामीजी के पास जाकर ज्ञान ग्रहण करोगे तो स्व-पर उपकार द्वारा जिनशासन के महान् प्रभावक बन सकोगे ।''

अपने पूज्य गुरुदेव के मुखकमल से बहती हुई इस अमृतवाणी और आशीर्वृष्टि को सुनकर आर्यरक्षित का मन भर आया और उनकी आँखों में हर्षाश्रु उमड़ पड़े ।

आर्यरक्षित ने कहा, ``भगवन्त ! आप करुणावत्सल हो ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है । आपका आशीर्वाद ही मेरा संबल है । प्रभो ! आपकी कृपा निरन्तर बरसती रहे, यही प्रार्थना है ।''

``वत्स ! तेरी भव्य-भावना से मैं प्रसन्न हूँ...अब शीघ्र ही विहार की तैयारी करनी होगी ।''

``भगवन्त ! आप शुभ दिन फरमाएँ ।''

``रक्षित ! शुक्ला पंचमी का दिन उत्तम है, उस दिन सिद्धियोग भी है । दिन के प्रथम प्रहर में विहार यात्रा आरम्भ करना । अन्य मुनिवर भी तुम्हारे साथ आयेंगे ।''

``भगवन्त ! जैसी आपकी आज्ञा ।''

जिनशासन एक लोकोत्तर शासन है । ``जीवात्मा का आत्महित कैसे हो ?'' इसका सरल व सचोट उपाय जैनशासन में निहित है ।

जैनशासन में गुरुतत्त्व का अपूर्व स्थान है । गुरु-शिष्य की जो आचार व विनय मर्यादा जैनशासन में देखने को मिलती है, इसकी प्राप्ति अन्यत्र असम्भव है ।

गुरु प्रदत्त मुहुर्तानुसार बुद्धिनिधान आर्यरक्षित मुनिवर ने अन्य मुनि-

वरों के साथ उज्जयिनी नगरी की ओर विहार प्रारम्भ कर दिया । सभी मुनिवर विहार में आने वाले परिषह-उपसर्गों को अत्यन्त समता-समाधिपूर्वक सहन करने लगें ।

धीरे-धीरे विहारयात्रा आगे बढ़ने लगी । इस प्रकार क्रमशः विहार करते हुए आर्यरक्षित मुनिवर उज्जयिनी नगरी के बाहर उद्यान में पहुँच गए ।

इस उद्यान में महान् प्रभावक दशपूर्वधर आचार्य श्री भद्रगुप्तसूरिजी म. बिराजमान थे । भद्रगुप्तसूरिजी की देहलता जर्जरित हो चुकी थी । त्याग, तप और तितिक्षा की साधना द्वारा उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बना दिया था ।

देह जर्जरित था...परन्तु उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था । **''कष्टों को समतापूर्वक सहन करना'' उनका जीवनमंत्र था, इसी के फलस्वरूप वे देह के प्रति निर्मम होकर संयमित जीवन की साधना कर रहे थे ।**

आर्यरक्षित मुनि ने खण्ड में प्रवेश करते हुए कहा-**''मत्थएण वंदामि ।''**

''मत्थएण वंदामि'' की आवाज सुनकर भद्रगुप्तसूरिजी म. बोले-**''कौन ?''**

''भगवन् ! मैं आर्यरक्षित !'' आर्यरक्षित मुनिवर ने जवाब दिया ।

''ओहो ! आर्यरक्षित । तुम हो !'' कहकर भद्रगुप्तसूरिजी अपने आसन से खड़े हो गए और उन्होंने आर्यरक्षित का स्वागत किया ।

आर्यरक्षित ने भद्रगुप्तसूरिजी म. के पवित्र चरणों में प्रणाम किया और उनकी चरणरज अपने मस्तक पर लगा ली ।

''भगवन् ! आप अपने आसन पर बिराजें, आपकी काया जरावस्था से घिरी हुई है ।''

''आर्य ! क्षीण होना तो शरीर का धर्म है । आखिर तो यह शरीर जड़पुद्गलों से ही बना है न ! आखिर कब तक इसका अस्तित्व रह सकेगा ?''

''भगवन् ! आपने गोचरी वापरी ? आज मुझे सेवा का लाभ दें ।''

आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी म. की सहमति मिलते ही आर्यरक्षित मुनिवर गोचरी के लिए निकल पड़े और थोड़ी देर बाद गोचरी लेकर उपाश्रय में आ गए ।

गोचरी वापरने के बाद भद्रगुप्तसूरिजी ने थोड़ी देर आराम किया ।

आर्यरक्षित मुनिवर ने भद्रगुप्तसूरिजी की सेवा-शुश्रूषा की ।

थोड़ी देर बाद भद्रगुप्तसूरिजी म. अपने आसन पर बैठ गए । उन्होंने आर्यरक्षित को पूछा-``रक्षित ! तुम्हारे गुरुदेव कुशल हैं न ?''

``भगवन् ! देव-गुरु की असीम कृपा से कुशल हैं ।''

``अभी तुम्हारी विहार-यात्रा किस ओर चल रही है ?'' भद्रगुप्तसूरिजी ने पूछा ।

``भगवन्त ! अभी गुरुदेवश्री की आज्ञा से उज्जयिनी की ओर विहार हो रहा है । पूज्य गुरुदेव ने मुझे पूर्वों के अभ्यास के लिए युगप्रधान वज्रस्वामीजी भगवन्त के पास जाने की आज्ञा फरमाई है ।''

``भगवन्त ! आपश्री के देह में निरामयता है न ? आपश्री का देह अति कृश हो गया है ।''

``आर्य ! इस संसार में जिसका जन्म है...उसका अवश्य मरण है । मानवदेह क्षणिक व विनाशी है...अतः उसका अस्तित्व मर्यादित है...उसको टिकाने के लिए कितने ही प्रयत्न और प्रयास किये जायें...परन्तु यह देह अधिक टिक नहीं सकता है, अतः अब जीवन के साध्य को सिद्ध करने की इच्छा है । मृत्यु द्वारा इस भौतिक जगत् के साथ हुए सम्बन्धों का विसर्जन होता ही है, संयम जीवन को स्वीकार कर कुटुम्ब परिवार व अर्थ-काम का त्याग किया है...और अब समाधि मृत्यु द्वारा निर्मम भाव से इस देह का त्याग करना है ।''

``मुनिवर ! मेरे जीवन का अन्त समय समीप लगता है, अतः तुम्हें अनुकूलता हो तो तुम मेरी समाधि-मत्यु के निर्यामक बनो ।''

आचार्य प्रवर श्री भद्रगुप्तसूरिजी म. दश पूर्वधर ज्ञानी महर्षि थे । वे ज्ञान के महासागर थे । फिर भी उन्होंने आर्यरक्षित मुनिवर को निर्यामक बनने के लिए आग्रह किया...इससे हम मृत्यु की भयंकरता की कल्पना कर सकते हैं ।

जरा सोचें ! एक इंजेक्शन लेने में भी जो ऊँचा नीचा हो जाता है...वह लाखों इंजेक्शनों की पीड़ा से भी भयंकर मृत्यु की पीड़ा में समत्व-भाव कैसे रख सकेगा ? जिस देह के प्रति ममत्व बुद्धि रही हो...और जिसके रक्षण-पालन व पोषण के लिए ही जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया हो, वह व्यक्ति मृत्यु के समय देह की ममता का त्याग कैसे कर पाएगा ?

धन, पुत्र व पत्नी के मोह-त्याग से भी देह की ममता का त्याग करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।

''समत्वपूर्वक देह के ममत्व भाव का त्याग करना'' एक सामान्य साधना नहीं है । इसीलिए तो देह के त्याग के लिए जिनशासन में दैनिक तप-आराधना का विधान किया गया है ।

तप-धर्म की साधना देह के ममत्व पर विजय पाने के लिए है । मृत्यु को मंगलमय और महोत्सवरूप बनाने के लिए जीवन के अंत समय में निर्यामणा की जाती है ।

योग्य निर्यामक का योग हो और मृत्यु के समय समाधि की तीव्र इच्छा हो...तो मृत्यु को महोत्सवरूप बनाया जा सकता है । भद्रगुप्तसूरि म. की बात को सुनकर आर्यरक्षित ने कहा-``भगवन्त ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है...आपकी आज्ञा है...तो मैं अभी यहीं रहूँगा ।''

बस ! भद्रगुप्तसूरिजी म. की आज्ञा से आर्यरक्षित मुनिवर वहीं रह गए । वे बार-बार आचार्य भगवन्त को परमात्म-भक्ति प्रेरक, वैराग्य प्रेरक काव्य मधुर कण्ठ से सुनाने लगे ।

``मैं देह नहीं हूँ...देह से भिन्न अजर-अमर आत्मा हूँ । अनन्तज्ञान–अनन्तदर्शन आदि आत्मा की सच्ची सम्पत्ति हैं...आत्मा स्वयं अक्षय सुख का भण्डार है...आत्मा में लीन बनने से, आत्मा स्वयं परमानन्द का आस्वाद करती है । बहिर्भाव से मुक्त बनकर जब आत्मा, आत्मा में स्थिर बनती है, तब उसे लोकोत्तर परमानन्द का अनुभव होता है । देह विनाशी है...आत्मा अविनाशी है ।''

इस प्रकार आत्म-स्वरूपदर्शक अनेक बातें आर्यरक्षित मुनिवर पूज्य-पाद आचार्य भगवन्तश्री से करने लगे...और बार-बार नमस्कार-महामंत्र के स्मरण व अरिहंतादि की शरणागति का श्रवण कराने लगे ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । आचार्य भगवन्त ने अपने ज्ञान से देखा, `अब इस देह का सम्बन्ध निकट प्रहर में ही छूटने वाला है । उन्होंने आर्यरक्षित को पास बुलाया और एक सूचना करते हुए कहा, **``रक्षित ! तुम विद्या अध्ययन के लिए युगप्रधान वज्रस्वामीजी के पास जा रहे हो, परन्तु तुम वहाँ अलग उपाश्रय में उतरना और भोजन-शयन अलग ही करना; क्योंकि जो**

भी मांडली में उनके साथ एक बार भी भोजन करता है, उसकी मृत्यु उनके साथ ही होगी...तुम तो जिनशासन के महान् प्रभावक बनने वाले हो...संघ के भावी आधार हो...अतः मेरे आदेश का पालन करोगे न !''

आचार्य भगवन्त के चरणों में प्रणाम करते हुए आर्यरक्षित ने कहा, ``भगवन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । मैं आपकी आज्ञा का बराबर पालन करूंगा ।''

आर्यरक्षित मुनिवर अत्यन्त नम्र और विनीत थे...

जिनाज्ञागर्भित ज्येष्ठ की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करना जैन मुनि का एक जीवन्त आदर्श होता है ।

आचार्य भगवन्त संथारे पर लेट गए...उनका देह लगभग क्षीण हो चुका था...आर्यरक्षित मुनिवर पास में ही बैठे थे । आचार्य भगवन्त ने समस्त जीवों से क्षमापना की...नमस्कार-महामंत्र का जोर से उच्चारण किया...

नमो अरिहंताणं...नमो सिद्धाणं...नमो आयरियाणं...नमो उवज्झायाणं...नमो लोए सव्वसाहूणं...एसो पंच नमुक्कारो...सव्व पावप्पणासणो... मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।

चत्तारि सरणं....पवज्जामि । अरिहंते सरणं पवज्जामि । सिद्धे सरणं पवज्जामि । साहू सरणं पवज्जामि । केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं... पवज्जामि ।

आर्यरक्षित मुनिवर नमस्कार-महामंत्र का जोर से उच्चारण करने लगे... आचार्य भगवन्त भी स्वर में स्वर मिलाकर बोलने लगे...बस ! जीवन के अमूल्य क्षण बीतने लगे...आचार्य भगवन्त ने कहा-``नमो...अ...रि...हं...ताणं''... उन्होंने अपना देह सदा के लिए छोड़ दिया । पंखी उड़ गया...पिंजर पड़ा था । देह को त्यागकर आचार्य भगवन्त देवगति को प्राप्त हुए ।

आर्यरक्षित पास में ही बैठे थे...आचार्य भगवन्त के स्वर्ग-गमन से आर्यरक्षित की आँखें अश्रुसिक्त हो गईं...उनके मुख पर विषाद छा गया । आसपास से आए हुए अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने आचार्य भगवन्त की देह के अंतिम दर्शन किये । मुनिवरों ने अंतिम विधि की ।

स्वर्गस्थ आचार्य भगवन्त के निमित्त सभी मुनिवरों ने मिलकर देववन्दन किया ।

आर्यरक्षित मुनिवर ने सभी को जीवन की अनित्यता...क्षणभंगुरता

समझाई और जीवन में समाधि प्रेरक उपदेश दिया । आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी के स्वर्गगमन से जैनशासन को जबरदस्त क्षति पहुँची ।

अब आर्यरक्षित मुनिवर ने उज्जयिनी नगरी में प्रवेश के लिए विहार प्रारम्भ किया ।

उज्जयिनी नगरी में युगप्रधान आचार्य वज्रस्वामी ने एक स्वप्न देखा, ***''मेरे पास दूध से भरा हुआ पात्र था, कोई अतिथि आया...उसके सामने वह पात्र धरा...उसने उस पात्र में थोड़ा सा दूध बाकी रखा...और शेष सब दूध पी लिया ।''***

वज्रस्वामीजी ने यह स्वप्न अपने शिष्यों को बताया और उसका अर्थ करते हुए बोले, ``आज कोई आनेवाला है, जो मेरे पास से अधिकांश श्रुत को ग्रहण कर लेगा...थोड़ा ही श्रुत मेरे पास बचेगा, जो वह ग्रहण नहीं कर पाएगा ।''

वज्रस्वामीजी अपने शिष्यों से इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मुनि आर्यरक्षित ने आकर उपाश्रय में प्रवेश किया और जोर से बोले-**``मत्थएण वंदामि ।''**

अतिथि का आगमन जानकर वज्रस्वामीजी प्रसन्न हो गए और अपने आसन से खड़े हो गए । वास्तव में, सत्पुरुषों का स्वप्न शीघ्र फलदायी होता है ।

वज्रस्वामीजी ने भी ``मत्थएण वंदामि'' कहकर आगन्तुक मुनिवर का स्वागत किया और अत्यन्त मधुर स्वर से बोले, ``मुनिवर ! आपका आगमन कहाँ से हुआ है ?''

``भगवन् ! मैं तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत के पास से आ रहा हूँ'' आर्यरक्षित ने कहा ।

यह सुनकर वज्रस्वामीजी बोले, ``अहो ! तुम ही हो आर्यरक्षित, शेष पूर्वों के अभ्यास के लिए तुम आए हो ?''

``हाँ ! भगवन् !'' आर्यरक्षित ने विनम्र स्वर से कहा ।

``तुम्हारी उपधि, पात्र व संस्तर आदि कहाँ हैं ? आओ ! आज तुम अतिथि हो, अतः गोचरी के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है । गोचरी वापरने के बाद यहीं अपना पाठ चालू कर देंगे ।'' वज्रस्वामी ने कहा ।

वज्रस्वामीजी की बात सुनकर आर्यरक्षित बोले-``भगवन् ! मैं अलग स्थान में उतरा हूँ...वहीं पर गोचरी और शयन करूंगा ।''

वज्रस्वामीजी ने पूछा-``पृथक् रहकर किस प्रकार अध्ययन करोगे ?''

वज्रस्वामीजी के इस वचन को सुनकर आर्यरक्षित ने भद्रगुप्तसूरिजी म. की कही बात कह दी । आर्यरक्षित की यह बात सुनकर वज्रस्वामी ने आर्यरक्षित को अलग वसति में ठहरने की सहमति दी ।

बस ! शुभ मुहूर्त में आर्यरक्षित का अध्ययन प्रारंभ हो गया । अत्यन्त विनय के साथ वे अध्ययन करने लगे ।

वज्रस्वामीजी भी आर्यरक्षित को सुयोग्य जानकर पूर्वों का अभ्यास कराने लगे ।

आर्यरक्षित स्वाध्याय सागर में आकण्ठ डूब गए । ज्यों-ज्यों अभ्यास में आगे बढ़ने लगे, त्यों-त्यों उनका उत्साह बढ़ने लगा । जिनशासन के अगम्य रहस्यों को जानकर वे अपने आपको बड़भागी समझने लगे ।

``धन्य जिनशासन ! धन्य गुरुदेव !'' की मधुर ध्वनि उनके रोम-रोम में गूंजने लगी ।

उनकी ज्ञान की सच्ची साधना व तीव्र लगन को देखकर वज्रस्वामीजी भी प्रसन्न हो गए ।

4. अपूर्व ज्ञान साधना

भोगी और रोगी का जीवन-पंथ न्यारा और निराला होता है । एक गान में आसक्त होता है तो दूसरा ज्ञान में । दोनों के पंथ / दोनों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं । फिर भी उन दोनों में एक समानता दिखाई देती है कि वे सदा अतृप्त होते हैं ।

भोगी को भोग के साधन कितने ही मिल जायें, वह सदा अतृप्त ही रहता है । इन्द्रियों के विषय-सेवन के बाद भी उसे पूर्ण तृप्ति या आनन्द का अनुभव नहीं होता है...उसकी तृषा...उसकी भूख सदा बनी रहती है । वह सदा नये-नये भोगों और उनके साधनों की प्राप्ति के लिए लालायित बना रहता है । इस प्रकार वह सदा अतृप्त रहता है ।

बस, यही अतृप्ति की स्थिति है-एक योगी की । परन्तु हाँ ! उसकी

दिशा और उसका पंथ अलग है, उसे आनन्द आता है ज्ञान प्राप्ति में । ज्यों-ज्यों शास्त्र अध्ययन-अध्यापन के बल से उसे नए-नए ज्ञान की प्राप्ति होती जाती है, त्यों-त्यों उसकी ज्ञान पिपासा बढ़ती जाती है ।

ठीक ही कहा गया है-

''भोगार्थमेतद् भविनां शरीरम्, ज्ञानार्थमेतद् किल योगिनां वै ।''

''संसारी जीवों का शरीर भोग और भोग के साधनों की प्राप्ति के लिए होता है, जब कि योगियों का शरीर ज्ञानप्राप्ति के लिए होता है ।''

सम्यग् ज्ञान की साधना में जो आनन्द है उसे अज्ञानी कैसे जान सकता है । मानसरोवर का आनन्द तो हंस लूटता है । विष्टा में आलोटने वाला सूअर उस आनन्द की कल्पना भी कैसे कर सकता है ?

समग्र विश्व में ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं, अतः ज्ञान भी अनन्त है । ज्यों-ज्यों पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का बोध होता जाता है, त्यों-त्यों योगियों का हृदय आनन्द से भरता जाता है । उनका समग्र जीवन ज्ञान-प्राप्ति के लिए होता है । जिस प्रकार ज्ञान असीम है, उसी प्रकार ज्ञान का आनन्द भी असीम है ।

श्रुतज्ञान महासागर सम है । चौदह पूर्वों का समावेश श्रुतज्ञान के अन्तर्गत हो जाता है । चौदह पूर्वधर महर्षि श्रुतकेवली कहलाते हैं । वे एक केवली की भाँति धर्मदेशना दे सकते हैं । श्रोताजन को पता ही नहीं चलता है कि वे केवलज्ञानी हैं या श्रुतज्ञानी ।

श्रुतज्ञान के बल से भी वस्तु के अनेक पर्यायों को आसानी से जाना जा सकता है ।

आर्यरक्षित मुनिवर एक योगी आत्मा थे...उनके मन में ज्ञानप्राप्ति की अदम्य लालसा थी ।

दशपूर्वधर महर्षि वज्रस्वामी के शुभ सान्निध्य में बैठकर वे निरन्तर एकाग्रता पूर्वक पूर्वों का अभ्यास कर रहे थे ।

समय के प्रवाह के साथ-साथ वे ज्ञान के शिखर पर आरूढ़ होने लगे । क्रमशः एक के बाद एक पूर्व का अभ्यास करते ही जा रहे थे ।

(1) उत्पाद पूर्व (2) आग्रायणीय पूर्व (3) वीर्यप्रवाद (4) अस्तिप्रवाद (5) ज्ञान प्रवाद (6) सत्य प्रवाद (7) आत्म प्रवाद (8) कर्म प्रवाद और (9) प्रत्याख्यान प्रवाद की समग्रता वे प्राप्त कर चुके थे ।

ज्ञानसाधना में उन्हें असीम आनन्द का अनुभव हो रहा था । सच-मुच ! ऐसा आनन्द दुनिया में अन्यत्र कहाँ मिल सकता है !

अब वज्रस्वामीजी के पास आर्यरक्षित ने 10 वें पूर्व का अभ्यास प्रारंभ किया ।

आर्यरक्षित को दीक्षा अंगीकार किये दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

अचानक एक दिन रुद्रसोमा का हृदय मातृवात्सल्य से भर आया । आखिर तो वह माँ थी । उसके दिल में आर्यरक्षित के मुखदर्शन की पिपासा जाग उठी । आर्यरक्षित का सुकोमल चेहरा उसकी आँखों के सामने मंडराने लगा । आर्यरक्षित को दीक्षा लिये वर्षों बीत चुके थे । परन्तु वे अब किधर विचर रहे हैं, इसके कोई समाचार रुद्रसोमा के पास नहीं थे ।

वह सोचने लगी, ``आर्यरक्षित अभी कहाँ विहार कर रहे हैं ? उनका मुझे पता नहीं है, अतः उनकी जाँच के लिए छोटे पुत्र फल्गुरक्षित को भेजूँ तो ज्यादा ठीक रहेगा ।''

इस प्रकार विचार कर उसने अपने मन की बात अपने पति सोमदेव को कही ।

सोमदेव ने कहा-``प्रिये ! आर्यरक्षित को बुलाने के लिए तूने फल्गुरक्षित को भेजने का जो निर्णय लिया है, वह समुचित है ।'' अपने पतिदेव की सहमति प्राप्त कर रुद्रसोमा ने अपने पुत्र फल्गुरक्षित को बुलाया ।

फल्गुरक्षित भी अत्यन्त विनम्र और माँ का आज्ञाकारी पुत्र था । उसके दिल में माँ के प्रति अपूर्व भक्ति और आर्यरक्षित के प्रति अति आदर व स्नेह का भाव था ।

माँ के बुलावे के साथ ही फल्गुरक्षित दौड़कर आया और माँ के चरणों में प्रणाम कर बोला-``माताजी ! मेरे लिए क्या आज्ञा है ?''

फल्गुरक्षित के जीवन में हमें आर्यसंस्कृति के पवित्र संस्कारों के साक्षात् दर्शन होते हैं । इस पवित्र संस्कृति का पुजारी, माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य ही करता है ।

फल्गुरक्षित विनम्र भाव से माँ के सामने खड़ा रहा ।

माँ ने कहा, ``बेटा ! आज तुझे किसी अनिवार्य कार्य के लिए बुलाया है ।''

``माँ ! जो भी आज्ञा हो, मुझे फरमाएँ ।'' फल्गुरक्षित ने अत्यन्त नम्रता से जवाब दिया ।

``बेटा ! मैं तुझे आर्यरक्षित के पास भेजना चाहती हूँ । तू अपने भाई के पास जा और उसे मेरी बात कहना–

``आर्यरक्षित ! तू ने माता का त्याग कर दिया...भाई का राग तोड़ दिया...मोह के साथ तू संघर्ष कर रहा है...तेरे जीवन की समग्रता अन्तरंग शत्रुओं के सामने लड़ने में व्यतीत हो रही है, यह जानकर मुझे आनन्द है...प्रसन्नता है । परन्तु आर्यरक्षित ! तेरे दिल में राग की भावना न हो, यह उचित है, फिर भी तेरे दिल में वत्सलता बुद्धि तो होनी ही चाहिए न ? याद कर महावीर प्रभु को ! जब वे माँ के गर्भ में थे, तब भी उनके दिल में माँ के प्रति कितना भक्ति का भाव था !

बेटा ! जीवन में स्नेह–राग नहीं चाहिए, परन्तु स्नेह–भाव तो चाहिए न ! किसी जीव के प्रति राग-भाव न होना, समुचित है...परन्तु स्नेह भाव, निःस्वार्थ वात्सल्य भाव तो होना ही चाहिए न ! अतः तू एक बार इधर आ जा ! मैं तेरे मुख-दर्शन के लिए उत्कण्ठित बनी हूँ । तेरा मार्ग प्रशस्य है और उसी मार्ग पर चलने की मेरी भी उत्कण्ठा है । इतना ही नहीं, मैं तो चाहती हूँ कि तेरे पिता, तेरा भाई...तेरी बहिन सभी तेरे मार्ग का अनुसरण करें ।

''हाँ ! स्नेह के बन्धन तूने तोड़ दिए हैं । तू एक कुटुम्ब का मिटकर समग्र विश्व का बन गया है, अतः तेरे दिल में इस छोटे से परिवार की विशेष ममता न हो, यह बन सकता है । फिर भी हृदय में वात्सल्य भाव तो होना ही चाहिए न !

खैर, तेरे दिल में हमारे प्रति लेश भी ममता न हो तो भी हमारे उद्धार के लिए तुम एक बार इधर जरूर आ जाओ ।''

इस प्रकार रुद्रसोमा ने अपने पुत्र आर्यरक्षित के लिए अपने लघु पुत्र फल्गुरक्षित के साथ अपना संदेश भिजवाया ।

माँ का संदेश लेकर फल्गुरक्षित आगे बढ़ने लगा । क्रमशः एक के बाद एक नगर को पार करते हुए वह उज्जयिनी पहुँच गया ।

एक शुभ घड़ी में दोनों भाइयों का परस्पर मिलन हुआ । आर्यरक्षित

को मुनिवेष में देखकर प्रथम क्षण तो फल्गुरक्षित को आश्चर्य हुआ...परन्तु दूसरे ही क्षण वह अपने ज्येष्ठ बन्धु के चरणों में गिर पड़ा ।

फल्गुरक्षित भ्रातृ-मिलन के आनन्द को हृदय में समा न सका,. फलस्वरूप वह आनन्द, आँसुओं के द्वारा बाहर निकल पड़ा ।

आर्यरक्षित ने लघु बन्धु को ``धर्मलाभ'' की आशिष दी ।

फल्गुरक्षित का गला रुंधा हुआ था । आर्यरक्षित ने भाई को आश्वासन देते हुए कहा, ``बंधु ! हर्ष के स्थान पर तू शोक क्यों कर रहा है ? इस संसार में जीवन के सम्बन्ध कितने अस्थिर और क्षणभंगुर हैं !''

``फल्गु ! जब तक आत्मा को जैनदर्शन के तत्त्वों का यथार्थ बोध नहीं होता है, तभी तक हमें सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होता है...परन्तु तत्त्व के यथार्थ बोध के साथ ही सांसारिक पदार्थों और सम्बन्धों का आकर्षण क्षीण हो जाता है । पल-पल में जिनकी पर्यायें बदल रही हैं...उन पदार्थों के प्रति क्या राग करना ?''

फल्गुरक्षित अत्यन्त ही ध्यानपूर्वक आर्यरक्षित की तत्त्ववाणी का श्रवण कर रहा था ।

फल्गुरक्षित ने कहा-``पूज्यवर ! आपकी बात यथार्थ है, फिर भी आत्मा में रहा मोह उछल पड़ता है । मैं आपके पास माँ का सन्देश लेकर आया हूँ ।''

``कहो ! माँ का क्या सन्देश है ? माँ कुशल है न ?'' आर्यरक्षित ने पूछा ।

``पूज्यवर ! ऐसे तो माँ कुशल ही है...परन्तु उसके दिल में आपके दर्शन की प्यास जगी है । माँ का कहना है कि आप शीघ्र ही विहार कर दशपुर नगर की ओर पधारें । माताजी आपको बहुत ही याद कर रही हैं ।''

फल्गुरक्षित की बात सुनकर आर्यरक्षित ने कहा-``फल्गु ! संसार के क्षणिक पदार्थों पर क्या मोह करना ? दुनिया के सम्बन्ध तो बदलते रहते हैं...अतः उन पदार्थों पर राग करना निरर्थक है । सांसारिक सम्बन्धों में राग करना, आत्मा के लिए बन्धन रूप है अनादि काल से अपनी आत्मा राग- द्वेष के बन्धनों से जकड़ी हुई है । एक मात्र इसी जीवन में...इसी मानव भव में उन बन्धनों की जंजीरों को तोड़ना शक्य और सम्भव है । इस अमूल्य जीवन

में बन्धन-मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं होगा तो फिर उसके लिए पुरुषार्थ कब होगा ?

``फल्गु ! ***महान् पुण्योदय से हमें यह जीवन मिला है, राग के बन्धन, द्वेष के बन्धन तोड़ने में ही इस जीवन की सफलता है । इस संसार में कौन किसका मित्र और कौन किसका शत्रु है ?...एक वटवृक्ष पर संध्या समय इकट्ठे हुए पक्षियों की भाँति हमारा संयोग है...उन सम्बन्धों में मोहित हो जाना एक मात्र अज्ञानता ही है...***और फल्गु ! देख, अभी मेरे ``पूर्वों'' का अभ्यास चल रहा है । नौ पूर्व का अध्ययन पूर्ण हो चुका है, अभी तो मैं ज्ञान के अतल सागर की गहराई में डूबा हुआ हूँ । पुण्योदय से परमाराध्यपाद वज्रस्वामी जी जैसे महान् युगप्रधान महर्षि का मुझे संयोग प्राप्त हुआ है । वे मुझे माता-सा वात्सल्य प्रदान करते हुए अभ्यास करा रहे हैं । उनकी देह-लता भी जर्जरित हो चुकी है...अतः इस ज्ञानसाधना में अन्तराय पैदा करना क्या तुझे उचित लगता है ?''

आर्यरक्षित की अमृतसी मधुर वाणी का श्रवण कर फल्गुरक्षित का दिल आनन्द से भर आया । उसकी आत्मा में रही हुई मोह की मूर्छा दूर हो गई और वह बोला, ``पूज्यवर ! आपकी बात बिल्कुल ठीक है । संसार के सम्बन्ध मोहजाल से भरे हुए हैं...फिर भी माता ने जो कहलाया है-**``हम पर उपकार करने के लिए भी एक बार तुम अवश्य आना, इस बात की ओर थोड़ा-सा ध्यान देना चाहिए ।''**

आर्यरक्षित ने कहा-``बन्धु ! तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है...परन्तु अभी विद्याध्ययन चल रहा है...इसकी समाप्ति के बाद मैं भी माँ की भावना पूर्ण करने के लिए दशपुर आने की भावना रखता हूँ । माता-पिता आदि को सन्मार्ग प्रदान करके ही सचमुच उनके ऋण से मुक्ति पा सकते हैं । अतः विद्याध्ययन की समाप्ति के बाद उस ओर विहार करने की भावना है । हाँ ! फल्गु, तेरे दिल में मेरे प्रति स्नेह हो तो तू यहीं ठहर जा, हम दोनों साथ में चलेंगे ।''

फल्गुरक्षित ने कहा, ``मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ ।''

``फल्गु ! तुम्हारा यहां गृहस्थ वेष में रहना ठीक नहीं लगता है अतः तुम भी मेरे समान दीक्षित हो जाओ !'' आर्यरक्षित ने कहा ।

तुरन्त ही फल्गुरक्षित ने आर्यरक्षित की बात स्वीकार कर ली ।

शुभमुहूर्त में फल्गुरक्षित ने भी भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली । वह भी अगारी मिटकर अणगार बन गया । भोगी मिटकर योगी बन गया ।

श्रेयस्कारी कार्य के लिए देरी किस बात की ? फल्गुरक्षित भी निर्मम भाव से संयम जीवन की साधना करने लगा ।

आर्यरक्षित मुनिवर 10 वें पूर्व का अध्ययन कर रहे थे । इस ``पूर्व'' में अत्यन्त कठिन नय-गम और निक्षेप थे । चौबीस अध्ययन हो चुके थे...परन्तु अब आर्यरक्षित को अध्ययन में कठिनाई महसूस हो रही थी ।

एक बार आर्यरक्षित ने सहजता से वज्रस्वामीजी से पूछा-**``भगवन्त ! अब मेरा अध्ययन कितना बाकी है ?''**

वज्रस्वामी ने कहा, **``आर्य ! अभी तो तुम्हारा समुद्र में बिन्दु तुल्य ही अध्ययन हो पाया है । मेरु के आगे सरसों का जो माप है, उतना ही अध्ययन तुम्हारा हो पाया है, अतः समाप्ति की उत्सुकता किए बिना, स्थिरता पूर्वक अध्ययन करो । स्थिरतापूर्वक अध्ययन करोगे तो ज्ञान का महासागर तुम पार कर सकोगे ।''**

वज्रस्वामी की यह बात सुनकर आर्यरक्षित मुनि पुनः अध्ययन में लीन हो गए...परन्तु कुछ ही दिनों के बाद उन्हें आगे के अध्ययन में प्रमाद होने लगा । घोर श्रम करने पर भी आगे के सूत्र उन्हें याद नहीं हो पा रहे थे ।

कुछ दिन बीतने के बाद फल्गुरक्षित ने पुनः आर्यरक्षित से पूछा- ``बन्धुवर ! अब कितने दिन ठहरना है ?''

आर्यरक्षित ने कहा-``मैं आचार्य भगवन्त से पूछकर जवाब देता हूँ ।'' अध्ययन से श्रांत बने आर्यरक्षित ने एक दिन अवसर देखकर पुनः आचार्य भगवन्त से पूछा-``भगवन् ! मेरा मन सम्बन्धीजन के संग में उत्कण्ठित बना हुआ है...मैं उनसे मिलकर अध्ययन के लिए पुनः आ जाऊंगा ।''

आर्यरक्षित की यह बात सुनकर वज्रस्वामीजी ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया । श्रुत के उपयोग से उन्होंने जान लिया कि उनका आयुष्य अल्प है...अतः आर्यरक्षित मुझे पुनः नहीं मिल पाएगा । आर्यरक्षित की इतनी ही योग्यता होने से वह आगे के श्रुत का अध्ययन नहीं कर पाएगा और प्रभु महावीर के शासन में अन्तिम दशपूर्व का ज्ञान मेरे तक सीमित रह जाएगा ।

जो भावी है, उसे टाला नहीं जा सकता, अतः अब आर्यरक्षित को रोकना उचित नहीं है। इस प्रकार विचार कर वज्रस्वामीजी ने कहा-``वत्स ! मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ। तुम खुशी से अपनी जन्मभूमि की ओर प्रयाण करो। इन सब मुनियों के बीच तुम्हारे जैसा कोई मेधावी नहीं है और इसी कारण मुझे भी तुमको अध्यापन कराने में विशेष आनन्द आ रहा था। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो।''

वज्रस्वामीजी के मुख से इस प्रकार आशीर्वादपूर्ण वचन सुनकर आर्यरक्षित का हृदय आनन्द से भर आया। उन्होंने वज्रस्वामीजी के चरणों में अत्यन्त बहुमानपूर्वक प्रणाम किया। स्थिरता दरम्यान जाने-अनजाने में हुई अपनी भूलों के लिए क्षमायाचना की।

वज्रस्वामी ने भी ``मिच्छा मि दुक्कड़ं'' कहा।

वज्रस्वामीजी के शुभाशीर्वाद प्राप्त कर आर्यरक्षित ने अपनी विहार-यात्रा प्रारंभ कर दी।

भगवान महावीर के शासन में वज्रस्वामीजी अन्तिम दशपूर्वधर महर्षि हुए। आर्यरक्षितजी ने वज्रस्वामीजी से साढ़े नौ पूर्व का अध्ययन किया था।

गुरु के चरणों में समर्पणपूर्वक जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह ज्ञान स्वपर उद्धारक होता है। लोकोत्तर जैनशासन में ज्ञान-प्राप्ति के लिए जो आचार मर्यादाएँ बतलाई गई हैं, वे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती हैं।

आर्यरक्षित मुनिवर्य के जीवन में विनय और नम्रता थी-इसी के फलस्वरूप ज्ञान के अगाध सागर को वे पा सके।

आर्यरक्षित मुनिवर अपने बन्धु मुनि आदि के साथ विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर पधारे।

पाटलीपुत्र में उस समय तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त बिराजमान थे। गुरूदेवश्री के दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा के कारण आर्यरक्षित मुनिवर शीघ्र विहारकर तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त के चरणों में आ पहुँचे।

आर्यरक्षित मुनिवर ने गुरूदेव के चरणों में प्रणाम किया।

काफी समय के बाद गुरूदेवश्री के दर्शन हो रहे थे...अतः गुरु-दर्शन से उनका मन पुलकित हो उठा। उन्होंने गुरूदेव की कुशल-पृच्छा की। गुरूदेव ने आर्यरक्षित को हृदय से आशीर्वाद दिए।

गुरूदेव ने अपने ज्ञान के उपयोग से देखा-**``मेरा आयुष्य अब अल्प है और आर्यरक्षित आचार्यपद के लिए हर तरह से योग्य है, अतः उसे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करना चाहिए ।''** यही सोचकर गुरूदेव ने आर्यरक्षित को आचार्यपद प्रदान करने का निर्णय किया ।

वे स्वयं ज्योतिर्विद् थे । उन्होंने पंचांग देखकर आचार्यपदवी के लिए श्रेष्ठ दिन निकाल लिया और पाटलीपुत्र संघ को इस सम्बन्ध में जानकारी दी ।

आर्यरक्षित मुनिवर की आचार्य पदवी के समाचार से समस्त जैनसंघ में आनन्द की लहर फैल गई । संघ ने बहुत ही भक्तिभाव से आचार्य पदवी का महोत्सव किया और एक शुभ दिन शुभ घड़ी में गुरुदेव ने आर्यरक्षित मुनिवर को विधिपूर्वक अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया ।

जैनशासन में ``आचार्य'' की बहुत बड़ी जवाबदारी है । तीर्थंकर परमात्मा के विरह काल में जैनशासन की धुरा को आचार्य भगवन्त ही वहन करते हैं । इस पद के लिए महान् योग्यता चाहिए । हर किसी को इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाता है ।

ज्योंही गुरुदेव ने आर्यरक्षित मुनिवर के मस्तक पर आचार्य पद का वासक्षेप डाला, त्योंही ``नूतन आचार्य अमर रहो ।'' ``जैनं जयति शासनम् ।'' आदि नारों से आकाश-मंडल गूंज उठा । चारों ओर जिनशासन की अद्भुत प्रभावना हुई । गुरुदेव ने नूतन आचार्य को अपने आसन पर बिठाया और समस्त संघ के साथ नूतन आचार्य को वन्दन किया ।

गुरुदेव ने अपनी समस्त संघीय जवाबदारी नूतन आचार्य को सौंप दी । आचार्य पदवी का महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ ।

आर्यरक्षित **``मुनि''** से **``मुनिपति''** बने ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त अतिवृद्ध हो चुके थे । उनकी काया अत्यन्त कृश बन चुकी थी...फिर भी उनके मुखमंडल पर चारित्र का अद्भुत तेज था ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा । नूतन आचार्य भगवन्त आदि मुनिवर अपने गुरूदेव की सेवा में तैयार थे । आचार्य भगवन्त अत्यन्त ही सावधान थे । जिनशासन के रहस्यों को उन्होंने मात्र

जाना ही नहीं था...उन रहस्यों को जीवन में आत्मसात् भी किया था-इसी के फलस्वरूप उन्हें मृत्यु का लेश भी भय नहीं था...वे मृत्यु के स्वागत के लिए सुसज्ज बने हुए थे। उनके मुख पर न कोई ग्लानि थी...और न ही मृत्यु का भय।

''मृत्यु तो देह का परिवर्तन मात्र है। मृत्यु द्वारा आत्मा मात्र देह को बदलती है। मैं देह से भिन्न अजर-अमर आत्मा हूँ। मृत्यु तो देह की होती है...मेरी नहीं। मैं तो शाश्वत तत्त्व हूँ। मैं अविनाशी हूँ।''

''मैं देह से भिन्न हूँ''।

इस प्रकार के सनातन सत्यों को उन्होंने जीवन में आत्मसात् किया था...इसी कारण उनके लिए मृत्यु का आगमन भी महोत्सव रूप था।

''अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि। केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि'' की अमरवाणी उनके मुखारविंद से प्रस्फुटित हो रही थी।

उन्होंने समस्त जीवराशि से, अपने शिष्य-परिवार आदि से क्षमा-याचना की। सभी शिष्यों ने भी अपने अपराधों के लिए उनसे क्षमायाचना की...और थोड़े ही पलों में उन्होंने सदा के लिए अपनी आँखें मूंद ली। भौतिक देह का त्यागकर वे अनन्त की यात्रा में विलीन हो गए।

''उड़ गया पंखी, पड़ रहा माला'' बस, समस्त शिष्य परिवार शोकमग्न हो गया। शिष्यों का शिरःछत्र दूर हो गया। उनके स्वर्ग-गमन से जैन संघ को भी एक भारी क्षति पहुँची।

वे एक महान् युगप्रभावक महर्षि थे।

आर्यरक्षित सूरिजी आदि की आँखें अश्रुसिक्त हो गईं।

गुरुदेव की चिर-विदाई से संघ व समुदाय की समस्त जवाबदारी उनके सिर पर आ पड़ी। वे इस जवाबदारी को विवेकपूर्वक वहन करने लगे।

5. परिवार का उद्धार

कुवासनाओं के पाश का उच्छेद करने वाले जिनशासन को कोटि कोटि वंदना हो।

आत्मा को परमात्मा बनाने वाला है यह शासन। पापात्मा को पुण्यात्मा बनाने वाला है यह शासन।

आत्मा में घर कर गए दुर्व्यवहारों को जड़-मूल से हटाने की ताकत जिनशासन में है ।

इस जिनशासन के स्थापक हैं तीर्थंकर परमात्मा और उनके विरहकाल में इस तीर्थ रथ की धुरा को वहन करने वाले हैं-गीतार्थ आचार्य भगवन्त ।

आचार्य भगवन्त जिनशासन के प्रति समर्पित होते हैं । उनका पूरा जीवन...उनका प्रत्येक श्वास...उनकी प्रत्येक वृत्ति-प्रवृत्ति जिनशासन के हित के लिए होती है ।

आचार्य पद से अलंकृत आर्यरक्षित सूरिवर भी जिनशासन के ऐसे ही अनोखे प्रभावक पुरुष थे ।

गुरूदेव के वियोग के बाद समस्त शासन और संघ की जवाबदारी उन पर थी । वे शास्त्र के पारगामी थे...दक्ष थे...कुशल थे...गीतार्थ थे...प्रभावक थे...प्रवचनकार थे...सर्वजीव हितचिन्तक थे ।

जिनशासन की अजोड़ प्रभावना करते हुए वे मालवा की भूमि पर विहार कर रहे थे । जिन-जिन गाँवों में उनका पदार्पण होता...लोग अत्यन्त आदर-बहुमान से उनका स्वागत-सत्कार करते थे । उनकी अमृत–सी वाणी का पानकर अनेक पुण्यात्माएँ जिनशासन रसिक बन रही थीं ।

अनेक पुण्यशाली आत्माओं को उन्होंने सर्वविरति का दान किया था । अनेक पुण्यात्माओं को जिनशासन रसिक श्रद्धालु श्रावक बनाया था । इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में जिनशासन की ध्वजा फहराते हुए वे अपनी जन्म-भूमि की ओर विहार कर रहे थे । विहार-यात्रा आगे बढ़ रही थी ।

इधर माँ रुद्रसोमा अपने पुत्र मुनिवर आर्यरक्षित के दर्शन के लिए अत्यन्त उतावली बनी हुई थी । एक शुभ दिन आर्यरक्षितसूरिजी म. अपनी जन्म-भूमि के बाहर पहुँच गए, फल्गुरक्षित मुनि ने नगर में प्रवेश किया, वे तुरन्त ही अपने घर पहुँच गए और माँ को शुभ संदेश देते हुए बोले-``माँ ! माँ ! तुम्हारा पुत्र आर्यरक्षित, गुरू बनकर आ गया है ।''

रुद्रसोमा ने फल्गुरक्षित को जैन श्रमण वेष में देखा । वह आनन्दित हुई और बोली, ``क्या मैं इतनी पुण्यशाली हूँ कि उसका मुख देख पाऊँगी ?''

रुद्रसोमा इस प्रकार बोल ही रही थी कि तत्क्षण आर्यरक्षित सूरि म. वहाँ उपस्थित हो गए ।

माता रुद्रसोमा ने आर्यरक्षित को जैन साधु के रूप में देखा...उसका हृदय आनन्द से भर आया...वह रोमांचित हो उठी...उसकी आँखों में हर्ष के अश्रु अवतरित हुए ।

उसी समय आर्यरक्षित सूरिवर के पिता सोमदेव पुरोहित भी वहाँ आ गये । उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को देखा ।

उसने कहा-``बेटा ! प्रवेश-महोत्सव के बिना तुमने नगर में शीघ्र ही प्रवेश कैसे कर लिया ? हाँ ! मैं इसका कारण जान गया हूँ...तुम माता की विरह वेदना को समझ गए हो...अतः इसकी वेदना को दूर करने के लिए ही शीघ्र आ गए हो ।''

``खैर ! अब तुम पुनः नगर के बाहर जाओ । मैं राजा को विज्ञप्ति करूंगा और वह तुम्हारा भव्य प्रवेश महोत्सव करेगा...फिर तुम इस श्रमण वेष का त्याग कर देना...और गृहस्थाश्रम को स्वीकार करना ।

``तुम्हारे गुण और रूप के अनुरूप मैंने तुम्हारे लिए कन्या खोज ली है । वेद-विहित विधि के अनुसार तुम्हारा विवाह किया जाएगा...जिससे तुम्हारी माता को भी पूरा संतोष होगा ।''

``बेटा ! तुझे धन-अर्जन करने की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सात पीढ़ी तक खूटे नहीं, उतना धन अपने पास है । तुम्हारे द्वारा गृहस्थ जीवन को स्वीकार करने के बाद ही मैं वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करूंगा ।''

अपने पिता सोमदेव पुरोहित की यह बात सुनकर आर्यरक्षित ने कहा-``तात ! आप मोहाधीन होकर इस प्रकार की बातें कर रहे हो ! इस संसार में कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र है ? सभी अपने कर्म के अनुसार नये-नये जन्म धारण करते हैं । राजा की कृपा से प्राप्त धन की क्या कीमत है ?''

``बाह्य वैभव और सम्पत्ति कोई वास्तविक सम्पत्ति नहीं है । बाह्य धन सम्पत्ति तो जल-तरंग की भाँति अत्यन्त चपल है । वायु की तरह जीवन अस्थिर है । यौवन तृण के अग्रभाग पर रहे जलबिन्दु के समान है । दुनिया के सम्बन्ध स्वप्नतुल्य हैं । इन अस्थिर सम्बन्धों में क्या राग करना ? क्या द्वेष करना ?

अनादिकाल से परिभ्रमण करती हुई आत्मा को इस संसार में मनुष्यजन्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । यह जीवन तो संसार में अमूल्य-रत्न की प्राप्ति

तुल्य है...इस कीमती जीवन को प्राप्त करके जो मनुष्य सांसारिक सुखों के लिए अपना जीवन बिता देता है, वह कांच के टुकड़े के लिए रत्न देने की तैयारी कर रहा है ।

मनुष्य जीवन की सफलता विषय-सुखों का त्याग कर मोक्षसुख के लिए प्रयत्न करने में है । इन्द्रियजन्य सुख तो क्षणिक, नश्वर व तुच्छ है । उसमें आसक्त बनना बुद्धिमत्ता नहीं है ।

हे तात ! संसार के उन तुच्छ भोगों से आत्मा कब तृप्त बनी है ? आत्म-तृप्ति तो त्याग से ही सम्भव है, भोग से नहीं ।''

मैंने संसार के इस नश्वर स्वरूप को अच्छी तरह से जान लिया है...अतः इस महान् आर्हती प्रव्रज्या को स्वीकार कर पुनः इसके त्याग की मूर्खता क्यों करूँ ? यह तो मुझे महान् पुण्योदय से प्राप्त हुई है । इसके त्याग की इच्छा मूर्खता ही है ।

अगन्धन कुल में उत्पन्न हुआ सर्प, वमन किये हुए जहर को पुनः नहीं पीता है...वह अग्नि में भस्मसात् हो जाएगा परन्तु वमन की हुई वस्तु का पुनः आस्वाद नहीं करेगा...मैंने भी संसार के तुच्छ भोग-सुखों का स्वेच्छा से त्याग किया है, अतः अब पुनः ग्रहण करने की बालिश चेष्टा क्यों करूँ ?

``यदि आपके दिल में मेरे प्रति स्नेह है...तो आप सब प्रव्रज्या ग्रहण करें ।''

आर्यरक्षित की वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना सुनकर पिता ने कहा-``मैं तुम्हारी तरह कठोर जैन-व्रत स्वीकार करने में समर्थ नहीं हूँ ।''

आर्यरक्षित ने सोचा, ``पिता का मिथ्यात्व अभी मन्द नहीं हो पाया है, अतः पहले अपनी माँ को प्रतिबोध करूँ । ये बाद में प्रतिबोध पाएंगे । माता दृढ़ सम्यक्त्व व्रतधारी है और उसी ने मुझे चारित्र की प्रेरणा की है ।'' इतना विचार कर उन्होंने अपनी माता से कहा-``माँ ! तुम तो ज्ञान की महानिधि हो । तुम्हारी आज्ञा से ही दृष्टिवाद को पढ़ते हुए मुझे इस संसार से पार उतरने की इच्छा जगी थी ।

इस कलियुग में सुनन्दा धन्य है जिसने वज्रस्वामी जैसे पुत्ररत्न को जन्म दिया है, परन्तु मैं तो सुनन्दा से भी तुझे अधिक धन्य मानता हूँ । उसने तो रुदन से खिन्न होकर अपने पति मुनि को पुत्र सौंपा था...और उसके बाद

पुनः पुत्रप्राप्ति के लिए विवाद भी किया था, परन्तु तुमने तो संसार-सागर से पार उतारने की बुद्धि से ही मुझे तोसलीपुत्र आचार्य को सौंप दिया था । महान् पुण्योदय से वज्रस्वामी के पास पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर अब तुम्हारे पास आया हूँ, अतः तुम भी परिवार सहित दीक्षा स्वीकार कर भवसागर से पार उतरो ।''

माता ने कहा, ``आर्यरक्षित ! मैं दीक्षा स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ, यदि परिवार में मेरे प्रति स्नेहवाले होंगे तो वे भी मेरे पीछे अवश्य दीक्षा स्वीकार करेंगे ।'' बस, आर्यरक्षित सूरिवर के उपदेश-अमृत का पान कर सोमदेव सिवाय सभी दीक्षा के लिए तैयार हो गए ।

आर्यरक्षित ने अपनी माता आदि सभी को शुभ-मुहूर्त में दीक्षा प्रदान की । सभी की दीक्षा हो जाने पर सोमदेव ने कहा,

``मैं भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हूँ, परन्तु मुझे कुछ वस्तुओं की छूट दो ।''

आर्यरक्षित ने पूछा, ``कौनसी छूट चाहते हो ?''

सोमदेव ने कहा, ``मैं धोती पहनूंगा, पैरों में जूते, छत्री और जनेऊ धारण करूंगा इत्यादि ।''

आर्यरक्षित सूरीश्वर महान् ज्ञानी और गीतार्थ थे ।

उन्होंने सोचा, **``भविष्य में ये स्वयं इन वस्तुओं का त्याग कर देंगे'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने पिता की शर्त में निषेध और अनुमति दिए बिना उन्हें भागवती दीक्षा प्रदान कर दी ।**

एक बार आर्यरक्षित सूरीश्वर विहार कर किसी नगर में गए । वहाँ के श्रावकों ने सभी मुनिवर्यों का वन्दन किया, किन्तु छत्रधारी सोमदेव मुनि को वन्दन नहीं किया ।

उपाश्रय में आकर सोमदेव मुनि ने आर्यरक्षितसूरिजी से पूछा, ``क्या मैं वन्दनीय नहीं हूँ ?''

आर्यरक्षित ने कहा, ``तात ! छत्र धारण के साथ वन्दनीय कैसे बनोगे ? अतः छत्र छोड़ दो...जब गर्मी पड़े तब सिर पर वस्त्र रख लेना ।''

आर्यरक्षित की यह बात सोमदेव मुनि ने तुरन्त स्वीकार कर ली और उन्होंने हमेशा के लिए छत्र का त्याग कर दिया ।

इस प्रकार धीरे-धीरे आर्यरक्षितसूरिजी ने अपने पिता मुनि के पास से छत्र, जूते तथा जनेऊ आदि गृहस्थ वेष युक्तिपूर्वक छुड़वा दिया...परन्तु उन्होंने धोती का त्याग नहीं किया ।

एक बार आर्यरक्षितसूरिजी म. के समुदाय में किसी मुनि का स्वर्गवास हो गया । उस समय ऐसी प्रथा थी कि स्वर्गस्थ मुनि के देह को एक मुनि उठाकर जंगल में ले जाते और उस देह को पारिष्ठापनिका समिति के अनुसार वोसिरा देते थे ।

मुनि के स्वर्ग-गमन के बाद उनके मृत देह को परठने की क्रिया के लिए अनेक गीतार्थ मुनि तैयार हो गए, तभी कल्पित कोप करते हुए सूरिवर बोले, **``क्या सभी पुण्य के कार्य तुम्ही करोगे ? क्या मेरे स्वजन में से किसी को करने नहीं दोंगे ?''**

आर्यरक्षित सूरिवर की यह बात सुनकर पिता मुनि बोले, ``यदि इस कार्य में महान् पुण्य होता हो तो मैं यह कार्य करूंगा ।''

आर्यरक्षित ने कहा, **``मृत देह को वहन करते समय अनेक उपसर्ग भी हो सकते हैं और यदि आप उपसर्ग से चलित हो जाओंगे तो हम पर भयंकर आपत्ति आ सकती है...अतः जो उचित लगे वैसा करो ।''**

यह सुनकर सोमदेव मुनि ने कहा, ``क्या मैं इतना सत्त्वहीन और निर्बल हूँ ? मैं इस कार्य को अवश्य करूंगा । पहले भी मैंने वेदमंत्रों के द्वारा राजा और राष्ट्र की आपत्ति दूर की है...अतः इस कार्य में मुझे कोई घबराहट नहीं है ।'' इस प्रकार दृढ़ बनकर सोमदेव मुनि स्वयं उस मृत देह को उठाकर जंगल की तरफ चल पड़े, तभी पूर्वशिक्षित बच्चों ने उनकी धोती खींच ली । बच्चों के इस उपसर्ग से वे मन में अत्यन्त दुःखी हुए, **``यदि इस शव को नीचे रख दिया तो मेरे पुत्र पर आपत्ति आ जाएगी''** इस भय से उन्होंने शव को नीचे नहीं उतारा और जंगल में जाकर मृत देह को परठ दिया । लौटने पर आर्यरक्षित ने उन्हें वस्त्र दिया और उन्होंने उसे शीघ्र ही चोलपट्टे की तरह पहन लिया ।

सोमदेव मुनि का जीवन हर तरह से बदल चुका था । उनकी प्रत्येक आचार क्रिया जैन साधु के समान ही थी...परन्तु उन्हें गोचरी के लिए जाने में शर्म आती थी । अनेक प्रयत्न करने पर भी वे भिक्षा-गमन के लिए तैयार नहीं हुए ।

आर्यरक्षित ने सोचा, ``कदाचित् मेरा आयुष्य पहले क्षीण हो जाय तो इन्हें वृद्धावस्था में तकलीफ पड़ सकती है, अतः इन्हें किसी भी प्रकार से भिक्षाविधि सिखानी चाहिए ।''

एक बार अपने शिष्यों को इकट्ठा कर आर्यरक्षित ने कहा-**``मैं विहार कर पास के गाँव में जाऊंगा...तुम लोग यहीं ठहरना...रोज भिक्षा लाना, किन्तु सोमदेव मुनि को भोजन के लिए आमंत्रण मत देना ।''**

आर्यरक्षित की बात शिष्य समझ न सके...फिर भी उन्होंने गुरु आज्ञा को ``तहत्ति'' कह स्वीकार कर लिया । दूसरे दिन आर्यरक्षितसूरिवर विहार कर पास के गाँव में चले गये ।

सोमदेव मुनि वहीं ठहरे हुए थे । सभी शिष्य गोचरी लाकर वापरने लगे, किन्तु उन्होंने सोमदेव मुनि को आमंत्रण नहीं दिया । दो दिन तक वे भूखे रहे और तीसरे ही दिन आर्यरक्षित सूरिवर लौट आए ।

आर्यरक्षित सूरिवर के आने के साथ ही सोमदेव मुनि ने कहा, ``यदि आप थोड़े दिन अधिक बाहर रहते तो अकाल में ही मेरी मृत्यु हो जाती...आपकी आज्ञा होने पर भी किसी मुनि ने मुझे भोजन के लिए आमंत्रण नहीं दिया ।''

तुरन्त ही झूठा कोप करते हुए आर्यरक्षित सूरिवर बोले, ``तुमने पिता मुनि को भोजन के लिए आमंत्रण क्यों नहीं दिया ?''

तभी पूर्व शिक्षित एक मुनि ने कहा, ``भगवन्त ! आपके विरह की व्यथा से हम शून्यमनस्क हो गए थे, अतः हमारे इस अपराध को आप क्षमा करें ।''

तभी आर्यरक्षित सूरिवर ने पिता मुनि को कहा, ***``पराभव में कारणभूत ऐसी दूसरे की आशा कभी नहीं करनी चाहिए । पर की आशा अन्त में निराशा पैदा करती है ।''***

इतना कहकर आर्यरक्षित सूरिवर स्वयं खड़े हो गए और बोले, ``आपके उचित आहार के लिए मैं स्वयं जाता हूँ ।''

तभी सहसा सोमदेव मुनि बोले, ``वत्स ! मेरे होते हुए तुम भिक्षा के लिए कहाँ जाओगे ? तुम तो गच्छ के अधिपति हो...अतः तुम्हें जाना उचित नहीं है ।'' इतना कहकर निषेध करते हुए भी पात्र ग्रहण कर भिक्षा के लिए निकल पड़े ।

किसी श्रेष्ठी के पिछले द्वार से उन्होंने हवेली में प्रवेश किया और जोर से ``धर्मलाभ'' बोले । मकान के पिछले द्वार से गोचरी के लिए आए मुनिवर को देखकर श्रावक ने पूछा, ``हे मुनिवर ! आप मुख्यद्वार से क्यों नहीं आए ?''

सोमदेव मुनि ने कहा, ``हे महानुभाव ! क्या लक्ष्मी पिछले द्वार से नहीं आती है ?'' (लक्ष्मी तो कहीं से भी आए उसका स्वागत ही करते हैं ।)

उस श्रावक ने खुश होकर अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक सोमदेव मुनि को 32 लड्डू बहोराए ।

सोमदेव मुनि गोचरी बहोरकर उपाश्रय में आए । प्रथम भिक्षा में सोमदेव मुनि के पात्र में 32 लड्डू देखकर निमित्त शास्त्र में उपयोग लगाकर आर्यरक्षित सूरिवर ने सोचा, पहली भिक्षा में 32 लड्डू मिले हैं, अतः मेरे पीछे 32 शिष्य होंगे ।''

आर्यरक्षित सूरिवर ने पूछा, ``तात ! पहले राजकुल से जो धन मिलता था..उसका स्व-उपभोग करने के बाद किसे देते थे ?''

सोमदेव ने कहा, ``गुणवान पुरोहित को देते थे ।''

आर्यरक्षित ने कहा, ``योग्य पात्र में लक्ष्मी का दान करने से वह नवीन सुकृत को जन्म देनेवाली बनती है, अतः हे तात ! ये अपने साधु गुणों की निधि हैं...योग्य पात्र हैं, इनकी भक्ति करने से महान् पुण्य का बंध होता है ।'' आर्यरक्षित सूरिवर की यह बात सुनकर उत्साही बने सोमदेव मुनि ने कहा, ``बाल, ग्लान आदि साधुओं के लिए उपकारी आहार लाकर मैंने क्या नहीं पाया ? अर्थात् मैंने बहुत कुछ पाया है ।''

इस प्रकार आर्यरक्षित सूरिवर ने अपने पिता सोमदेव मुनि के मन में भिक्षा-वृत्ति के प्रति आदर भाव पैदा करा दिया ।

अब सोमदेव मुनि सुन्दर रीति से संयमधर्म की आराधना करने लगे ।

6. पुष्यमित्र

महान् प्रभावक आर्यरक्षित सूरि महाराज के गच्छ में अनेक विद्वान् और प्रभावक मुनिवर थे ।

आर्यरक्षित सूरि म. विविध क्षेत्रों में विहार करते हुए जिनशासन की अजोड़ प्रभावना कर रहे थे ।

उनके शिष्य परिवार में चार मुख्य प्रकांड विद्वान् शिष्य थे (1) दुर्बलिका पुष्यमित्र (2) विंध्य (3) फल्गुरक्षित और (4) गोष्ठामाहिल ।

दुर्बलिका पुष्यमित्र अर्थात् स्वाध्याय की साक्षात् मूर्ति !

वे ज्ञान के अत्यन्त व्यसनी थे । विशुद्ध चारित्र-पालन के साथ-साथ उन्हें ज्ञान में तीव्र रस था । वे सतत स्वाध्याय में लीन रहते थे...और इस कारण घी का पान करने पर भी उनकी देहलता अत्यन्त दुर्बल थी । भोजन में उन्हें कोई रस या आसक्ति नहीं थी । अतः स्वाध्याय के अति श्रम के कारण घी का भोजन भी पच जाता था और मानसिक श्रम के कारण उनका शरीर दुर्बल रहता था । उन्होंने अपने गुरुदेव आर्यरक्षित सूरिजी म. के पास नौ पूर्व का अभ्यास किया था । ग्रहण किया गया श्रुत भूला न जाय, इस हेतु वे रात व दिन स्वाध्याय में लीन रहते थे ।

ग्रहण किये गए श्रुत को स्थिर करने के लिए उसका बार-बार पुनरावर्तन अनिवार्य है...यदि सतत पुनरावर्तन जारी न रखा जाय तो ग्रहण किया गया सभी श्रुत विस्मृत हो जाता है ।

रोटी सेकने के लिए उसे बार-बार अग्नि पर घुमाना पड़ता है, यदि ऐसे ही रख दी जाय तो वह जलकर भस्मीभूत (राख) हो जाती है ।

बस, इसी प्रकार ज्ञान को स्थिर करने के लिए उसका पुनरावर्तन अत्यन्त जरूरी है ।

उनका मुख्य नाम तो पुष्यमित्र था...परन्तु स्वाध्याय के कारण दुर्बल काया होने से लोग उन्हें दुर्बलिका पुष्यमित्र कहते थे ।

पुष्यमित्र के स्वजन सम्बन्धी बौद्धधर्मी थे ।

एक बार आर्यरक्षित सूरिजी म. दशपुर नगर में विराजमान थे, तभी पुष्यमित्र के सम्बन्धी उनको वन्दन करने के लिए आए ।

वन्दन करने के बाद पुष्यमित्र के सम्बन्धीजनों ने पूछा, ``क्या आपके धर्म में ध्यान नहीं है ?''

सूरिवर ने कहा, ``हमारे धर्म में तो श्रेष्ठ ध्यान है...ऐसा ध्यान-योग अन्य कहीं नहीं है । तुम्हारे सम्बन्धी पुष्यमित्र मुनि, ध्यान के कारण ही अत्यन्त दुर्बल हैं ।''

उन्होंने कहा, ``ऐसा नहीं होना चाहिए, हमारे ख्याल से तो तप करने और मधुर आहार के अभाव के कारण ही वे अत्यन्त दुर्बल हुए हैं ।''

सूरिवर ने कहा, ``पूज्यों की कृपा से यह तो घी का भोजन करता है, परन्तु सतत स्वाध्याय और ध्यान के कारण अत्यन्त कृश दिखाई देता है ।''

सम्बन्धीजनों ने कहा, ``नहीं, आपके पास स्नेह की सम्पत्ति कहाँ है कि आप इसे घी पिलाओ ?''

आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा, ``यह स्वयं घी पीता है...फिर भी तुम्हें विश्वास न हो तो इसे अपने घर ले जाओ और इसे घी का स्निग्ध आहार खिलाओ, फिर तुम स्वयं जान लोगे कि इसकी दुर्बलता का कारण क्या है ?''

सम्बन्धीजनों ने पुष्यमित्र को अपने घर पधारने के लिए आमंत्रण दिया । गुरुदेव की आज्ञा से पुष्यमित्र अपने कुटुम्बीजनों के घर गए और संयम-जीवन के लिए योग्य बस्ती में ठहरे ।

वहाँ रहने पर सम्बन्धीजनों ने स्निग्ध भोजन व घी आदि से पुष्यमित्र की खूब-खूब भक्ति की...परन्तु स्वाध्याय में लीन बने पुष्यमित्र को स्निग्ध भोजन में लेश भी आसक्ति नहीं थी, स्वाध्याय की लीनता के कारण उनकी काया कृश ही बनी रही ।

कुटुम्बीजनों ने सोचा-पुष्यमित्र द्वारा किया गया भोजन राख में घी (होम) डालने की तरह निरर्थक ही जा रहा है, बहुत सा और गरिष्ठ भोजन करने पर भी इसे कुछ भी फायदा नहीं हुआ ?''

कुटुम्बीजन सोच में पड़ गए । उन्होंने पुष्यमित्र को स्वाध्याय के लिए मना किया और फिर आहार ग्रहण करने के लिए आग्रह किया ।

गुरुदेव की आज्ञा से पुष्यमित्र ने थोड़े समय के लिए स्वाध्याय बन्द कर दिया...अब उनका शरीर धीरे-धीरे पुष्ट होने लगा । **अंत-प्रांत** भोजन से भी उनका शरीर पुष्ट हो रहा था ।

कुछ ही दिनों में कुटुम्बीजनों को प्रतीति हो गई कि वे न तो रोगी थे और न ही तुच्छ भोजन करते थे...परन्तु स्वाध्याय-ध्यान आदि के कारण ही उनकी काया कृश थी ।

पुष्यमित्र ने अपने सम्बन्धीजनों को प्रतिबोध दिया । स्वाध्याय की महिमा और उसका स्वरूप समझाया ।

पुष्यमित्र के धर्मोपदेश का श्रवण कर सभी कुटुम्बीजन जैनधर्म के उपासक बन गए ।

पुष्यमित्र मुनि पुनः अपने गुरुदेव के चरणों में आ गए ।

आर्यरक्षित सूरिवर प्रतिदिन अपने शिष्यों को श्रुत की वाचना प्रदान करते । सूरिवर का एक शिष्य **''विंध्य''** भी अत्यन्त मेधावी था । परन्तु जिस गति से आर्यरक्षित सूरिवर स्वाध्याय-मांडली में वाचना दे रहे थे, उसे विंध्यमुनि अच्छी तरह से ग्रहण नहीं कर पा रहे थे, अतः उन्होंने गुरुदेव से विज्ञप्ति की, **''भगवन्त !** श्रुत-मांडली में मेरा पाठ स्खलित हो रहा है, अतः मुझे अलग से कहो !''

गुरुदेव ने कहा, ``अच्छा ! मैं तुम्हारे स्वाध्याय की अलग व्यवस्था कर देता हूँ ।''

सूरिवर ने पुष्यमित्र मुनि को बुलाकर कहा, ``इस विंध्यमुनि को तुम रोज वाचना प्रदान करो ।''

विंध्य मुनि ने गुरुदेव की आज्ञा ``तहत्ति'' कहकर स्वीकार की ।

पुष्यमित्र मुनि विंध्यमुनि को वाचना देने लगे, इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन पुष्यमित्र ने आकर गुरुदेव से विज्ञप्ति की-**''भगवन् ! मेरी प्रार्थना है, वाचना की व्यग्रता के कारण मैं अपना ग्रहण किया हुआ ''श्रुत'' भूल रहा हूँ...समयाभाव के कारण पूरा स्वाध्याय नहीं हो पा रहा है...पहले आपकी आज्ञा से अपने घर गया था और वहाँ स्वाध्याय बन्द कर देने से अब मुझे स्वाध्याय में भूलें आ रही हैं...यदि अब मैं वाचना दूंगा तो निश्चय ही नौवाँ पूर्व भूल जाऊंगा ।''**

आर्यरक्षित सूरिवर ने सोचा, **''ओहो । इतना मेधावी होकर भी यदि यह आगम श्रुत को भूल जाएगा तो फिर दूसरा कौन इस श्रुत को धारण कर सकेगा ?''** सचमुच दिन-प्रतिदिन जीवों की श्रुतग्रहण–धारण शक्ति घटती जा रही है, अतः मुझे समस्त आगमों का सरलतापूर्वक अभ्यास हो सके, इसके लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए !'' इस प्रकार विचार कर आर्यरक्षित सूरिवर ने आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया । अंग, उपांग, मूलसूत्र और छेदसूत्रों का **चरण करणानुयोग** में समावेश किया ।

उत्तराध्ययन आदि का **धर्मकथानुयोग** में समावेश किया ।

सूर्यप्रज्ञप्ति आदि आगमों को **गणितानुयोग** में और दृष्टिवाद का **द्रव्यानुयोग** में समावेश किया । इस प्रकार भगवान महावीर की पाट-परम्परा में आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त करने का सर्वप्रथम भगीरथ कार्य **आर्यरक्षितसूरिजी म.** ने किया ।

आर्यरक्षितसूरिजी म. ने विंध्यमुनि के लिए यही कार्य किया था । इसके पूर्व हर एक-एक सूत्र में चारों अनुयोगों की बातें आती थीं ।

7. इन्द्र का आगमन

इस जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में सीमन्धर स्वामी भगवन्त पृथ्वीतल को पावन करते हुए विचर रहे हैं । उनका कुल आयुष्य 84 लाख पूर्व वर्ष का है, उनकी काया 500 धनुष की है ।

भरत क्षेत्र में श्री कुन्थुनाथ भगवान के शासन काल में वैशाख (गुज.चैत्र) वद 10 के पवित्र दिन तारक परमात्मा सीमन्धर स्वामी भगवन्त का जन्म पुष्कलावती विजय की पुंडरीकिणी नगरी में हुआ था । उनकी माता का नाम सत्यकी और पिता का नाम श्रेयांस राजा था । 83 लाख पूर्व वर्ष काल गृहस्थ जीवन में व्यतीत कर, बीसवें मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थंकर भगवन्त के निर्वाण के बाद, फाल्गुन सुद 3 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने संसार का त्याग कर चारित्र स्वीकार किया था । 1000 वर्ष के छद्मस्थ पर्याय की पूर्णाहुति के बाद चैत्र सुद 13 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । महाविदेह क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में आठवें उदय तीर्थंकर के निर्वाण के बाद उनके शासनकाल दरम्यान श्रावण सुद 3 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त का निर्वाण होगा ।

एक बार इन्द्र महाराजा सीमन्धर स्वामी भगवन्त के समवसरण में पधारे । उसे सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने संसार के यथार्थ स्वरूप को समझानेवाली धर्मदेशना दी ।

अनादिकाल से अनन्त संसारी जीव निगोद में रहे हुए हैं । एक श्वासोच्छ्वास में उनके सत्रह बार जन्म और सत्रह बार मरण और अठारहवीं बार पुनः जन्म हो जाता है । निगोद में रहा जीव सतत जन्म-मरण की पीड़ा भोग रहा है ।

जब किसी एक आत्मा का मोक्ष-गमन होता है, तब अपनी भवितव्यता के योग से अव्यवहार राशि (निगोद) में रही हुई आत्मा बाहर निकलती है और व्यवहार राशि में आती है ।

सीमन्धर स्वामी तारक परमात्मा ने अत्यन्त ही सूक्ष्मता से निगोद में रहे हुए जीव के स्वरूप का वर्णन किया, जिसे इन्द्र महाराजा ने अत्यन्त ही ध्यानपूर्वक सुना । इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक निगोद के स्वरूप का वर्णन उन्होंने पहली बार सुना था । उनके आश्चर्य का पार न रहा । ओहो ! निगोद का जीव सतत इतनी भयंकर वेदना भोग रहा है ।

देशना-समाप्ति के बाद इन्द्र महाराजा ने विज्ञप्ति करते हुए भगवन्त से पूछा, **''भगवन्त ! निगोद के इस प्रकार के सूक्ष्म स्वरूप को समझानेवाला कोई व्यक्ति भरत क्षेत्र में है ?''**

सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने कहा, **''शक्रेन्द्र ! हाँ ! भरतक्षेत्र में मथुरा नगरी में आर्यरक्षितसूरि विराजमान हैं, वे इसी प्रकार से निगोद का वर्णन करने में समर्थ हैं ।''**

सीमन्धर स्वामी भगवान् के मुख से यह बात सुनकर इन्द्र महाराजा के दिल में उत्सुकता पैदा हुई और वे सीधे महाविदेह क्षेत्र से भरतक्षेत्र की मथुरा नगरी में आ गए ।

इन्द्र महाराजा ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया । ब्राह्मण की देहलता अत्यन्त जर्जरित थी...आँखें निस्तेज बनी हुई थीं...मस्तक पर सफेद बाल थे...शरीर काँप रहा था...हाथ में लकड़ी लिये धीरे-धीरे चल रहे थे...दीर्घ श्वास चल रहा था...हाथ व पैर काँप रहे थे...दाँत गिर चुके थे...मुख पर उदासीनता थी...आँखों में पानी भरा हुआ था...इस प्रकार कृश काया का रूप धारण कर इन्द्र महाराजा आर्यरक्षित सूरि म. के पास आए और वन्दन आदि कर गुरुचरणों में बैठे...तत्पश्चात् उन्होंने सूरिवर से निगोद का स्वरूप जानने के लिए प्रश्न किया ।

निगोद का स्वरूप जानने की इच्छा जानकर सूरिवर प्रसन्न हुए और अत्यन्त प्रेमपूर्वक वे निगोद के स्वरूप का वर्णन करने लगे ।

वृद्ध वेष में रहे इन्द्र महाराजा अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनने लगे और बीच बीच में प्रश्न भी करने लगे ।

सूरिवर ने ब्राह्मण के वेष में रहे इन्द्र की सभी शंकाओं का प्रेम से समाधान किया...जिसे सुनकर इन्द्र महाराजा के आश्चर्य का पार न रहा ।

ब्राह्मण वेष में रहे इन्द्र ने पूछा, ``भगवन् ! मेरा आयुष्य कितना है ?''

अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगा कर आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा- ***''तुम्हारा आयुष्य दिन, मास, वर्ष, हजार वर्ष और लाख वर्ष से भी मापा नहीं जा सकता है । अरे ! तुम्हारे आयुष्य को तो लाखों-करोड़ों वर्षों से भी मापा नहीं जा सकता है...तुम्हारा आयुष्य दो सागरोपम का है । तुम सौधर्म देवलोक के इन्द्र हो...और मेरी परीक्षा के लिए आए हो ।''***

बस, तत्क्षण इन्द्र महाराजा ने ब्राह्मण वेष का त्याग कर दिया और वे अपने मूल स्वरूप में प्रकट हुए ।

आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा, ``अन्य मुनियों के समागम के लिए तुम कुछ समय यहाँ ठहर जाओ ।''

इन्द्र महाराजा ने कहा, ***''मेरी ऋद्धि और समृद्धि को देखकर कोई साधु भूल से निदान न कर बैठे, इसके लिए मेरा यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं है ।''***

आर्यरक्षित ने कहा, ``तुम्हारे आगमन का कोई चिह्न करते जाओ ।''

तब तत्क्षण इन्द्र महाराजा ने उपाश्रय के दरवाजे की दिशा उल्टी कर दी । जो उपाश्रय पूर्व सन्मुख था, उसे पश्चिम सन्मुख कर दिया । इतना करके इन्द्र महाराजा देवलोक में चले गए ।

थोड़ी देर बाद जब शिष्य आए, तब उन्होंने उपाश्रय के मुख्य द्वार के स्थान पर दीवाल देखी । सभी को आश्चर्य हुआ ।

आर्यरक्षित ने कहा, ``द्वार इधर है ।''

सभी शिष्य अवाक् रह गए...द्वार कैसे बदल गया ?

तब आर्यरक्षित ने इन्द्र के आगमन की सब बात कही...सभी शिष्यों को आश्चर्य हुआ ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

जिनशासन की प्रभावना करते हुए आर्यरक्षित सूरिवर वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे । सूरिवर विहार करते हुए मथुरा पधारे । उस समय मथुरा

में किसी नास्तिक ने वाद के लिए ललकारा । **गोष्ठामाहिल** ने उसके साथ वाद किया और उसे पराजित कर दिया ।

आर्यरक्षित सूरिजी ने सोचा, ``अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ, अतः गच्छ का भार योग्य शिष्य को सौंप दूँ ।''

विचार करते हुए उन्होंने निर्णय लिया कि इस पद के लिए पुष्यमित्र सुयोग्य है, शिष्यों में से किसी ने फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल का नाम सूचित किया । उसी समय आचार्य भगवन्त ने तीन घड़े मँगवाए और उन्हें क्रमशः वाल, तैल और घी से भरवा दिये-फिर उन तीनों को खाली करवाया ।

(1) वाल का घड़ा संपूर्ण खाली हो गया ।

(2) तैल के घड़े में थोड़ासा तेल चिपका रहा ।

(3) घी के घड़े में तैल से अधिक घी चिपका रहा ।

आर्यरक्षित सूरिवर ने अपने शिष्यों को कहा-

1. पुष्यमित्र के प्रति मैं वाल के घट समान हूँ अर्थात् उसके प्रति निर्लिप्त हूँ । उसने मेरे पास से अधिक ज्ञान प्राप्त किया है ।

2. फल्गुरक्षित के प्रति तैल के घट समान हूँ-अर्थात् उसके प्रति अल्प राग / लेप वाला हूँ । उसने मेरे पास से थोड़ा कम ज्ञान प्राप्त किया है ।

3. गोष्ठामाहिल के प्रति मैं घी के घट समान हूँ-उसके प्रति मैं अधिक लेप वाला हूँ । उसने मेरे पास से पुष्यमित्र व फल्गुरक्षित से कम ज्ञान प्राप्त किया है । अतः मेरे पद के लिए हर तरफ से पुष्यमित्र सुयोग्य है । ...और एक शुभ दिन उन्होंने शुभ मुहूर्त में पुष्यमित्र को अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया । वे गच्छ के भार से मुक्त हो गए ।

8. समाधिमरणम् !

नदी के नीर की भाँति जीवन का प्रवाह बह रहा है । वर्तमान काल प्रति क्षण भूतकाल बनता जा रहा है ।

जो जन्म लेता है, उसका अवश्य मरण होता है । जीवन के साथ मृत्यु की कड़ी जुड़ी हुई है ।

जन्म के साथ मृत्यु अनिवार्य है- परन्तु मृत्यु के बाद जन्म वैकल्पिक

है । संयम की उत्कृष्ट साधना पूर्वक, पवित्र जीवन जीया जाय तो आत्मा भव-बन्धन से मुक्त बनकर सदा काल के लिए अजर-अमर बन सकती है ।

आर्यरक्षित सूरिवर का जीवन भव-बन्धन से मुक्ति पाने के लिए ही था । उनके साधक जीवन का प्रत्येक पल, कर्म के जाल को तोड़ने के लिए था । तप-त्याग-संयम-तितिक्षा-ज्ञान-ध्यान और स्वाध्याय आदि की साधना द्वारा उनकी आत्मा फूल की भाँति हल्की बन चुकी थी । उनके मुख पर ब्रह्मचर्य का अपूर्व तेज था । वृद्धावस्था से देह जर्जरित होने पर भी उनके मुख पर दीनता का नामोनिशान नहीं था । वे शान्त और गम्भीर थे । शासन के हित के लिए वे सतत चिन्तातुर थे । देह के क्षणिक सौन्दर्य को पाने के बजाय उन्हें आत्मा के अक्षय, अखण्ड सौन्दर्य को पाने की अधिक उत्कण्ठा थी ।

उन्होंने देखा, **''देह क्षीण हो चुका है...इस देह का अब कोई भरोसा नहीं है ।''** इस प्रकार विचार कर उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर अनशन स्वीकार लिया । उनकी आत्मा परमात्म-ध्यान में मग्न थी ।

शुभ ध्यान के बल से वे अनन्त-अनन्त कर्मों की निर्जरा कर रहे थे ।

उनके होठों पर आत्मानन्द का स्मित था...उनके मुख में परमेष्ठी भगवन्तों का सतत स्मरण था ।

और एक घड़ी...एक क्षण ऐसी आ गई...उन्होंने इस जर्जरित देह का त्याग कर सदा के लिए विदाई ले ली । उनका आतम–पंखी अनन्त गगन में उड़ गया ।

औदारिक देह का त्याग कर वे वैक्रिय देहधारी देव बन गए ।

उनके अवसान से जैन संघ को बड़ी भारी क्षति हुई...सभी की आँखों में आँसू थे...सभी के दिल में वेदना थी...सभी के मुख पर शब्द थे...ऐसे गुरुदेव अब कहाँ मिलेंगे ?

हजारों के तारक गुरुदेव आर्यरक्षित सूरिवर को चतुर्विध संघ ने अपनी भावभरी श्रद्धांजलि समर्पित की । आर्यरक्षितसूरिजी 19 वें युगप्रधान थे । वल्लभी युगप्रधान पट्टावली के आधार पर उनका आयुष्य 75 वर्ष का था । आर्यरक्षितसूरिजी का जन्म वि.सं. 52 में, दीक्षा वि.सं. 77 में, युगप्रधानपद वि.सं. 114 में और कालधर्म वि.सं. 127 में अर्थात् वीर संवत् 597 में हुआ था ।

57-58. अंतिम राजर्षि उदायन

प्रभु वीर के शासन में
अंतिम केवली बनने का सौभाग्य
जंबुकुमार को प्राप्त हुआ तो
अंतिम राजर्षि बनने का सौभाग्य
उदायन राजा को प्राप्त हुआ था ।
उदायन राजा के दीक्षित होने के बाद
प्रभु वीर के शासन में
कोई भी राजा न तो दीक्षित हुआ
और न ही दीक्षित होगा ।

◆ **विशाल राज्य के वैभव को**
एक झटके में त्याग कर
स्व देह के प्रति
निर्मम बने उदायन राजर्षि ने
केवलज्ञान की लक्ष्मी हासिल की
और एक मास की संलेखना कर वे
मुक्ति सुख के भोक्ता बन गए ।

अनर्ध्य वस्तु भुक्त्वापि, न मुञ्चेत् धृतिमात्मनः ।
राजर्षिपद मादायोदायनः शिवमासदत् ।।

सिंधु सौवीर देश में वीतभय पाटण आदि 363 नगरों का अधिपति **उदायन** नाम का राजा था । उसकी रानी का नाम **प्रभावती** था जो चेड़ा राजा की पुत्री थी । वह अत्यंत ही धर्मप्रेमी श्राविका थी । उदायन राजा के **अभिची** नाम का पुत्र था और केशी नाम का भाणेज था ।

अंग देश की चंपानगरी में कुमारनंदी नाम का सोनी रहता था, जो अत्यंत ही विषयासक्त था । किसी भी रूपवती कन्या को देखकर वह मोहित हो जाता था । वह कन्या के माता-पिता को 500 सोनामोहर देकर, उस कन्या से शादी कर लेता था । इस प्रकार उसने 500 स्त्रियों के साथ विवाह किया था ।

उसने उन स्त्रियों के रहने के लिए एक स्तंभवाला महल बनाया था । वह उन स्त्रियों के साथ कामसुख में आसक्त रहता था । **कामभोग से आत्मा को कभी तृप्ति नहीं होती है । भोग से विकारों का शमन नहीं, बल्कि वृद्धि ही होती है ।** वह सोनी नई-नई स्त्रियों की शोध करता रहता था ।

एक बार पंचशैल द्वीप का अधिपति विद्युन्माली देव **हासा** और **प्रहासा** नाम की अपनी देवियों के साथ नंदीश्वर द्वीप की यात्रा के लिए जा रहा था, उसी समय आयुष्य पूरा हो जाने से विद्युन्माली देव का च्यवन हो गया ।

पति बिना कामभोग के सुख से वंचित बनी हासा-प्रहासा देवियाँ अन्य किसी को अपना पति बनाने के लिए विचार करने लगीं । उन देवियों ने कुमारनंदी को पसंद किया । वे दोनों देवियाँ कुमारनंदी के पास आईं । उन देवियों को देखकर कुमारनंदी कामातुर बन गया ।

कुमारनंदी ने पूछा, ``तुम कौन हो ?''

देवियों ने कहा, ``हम देवी हैं ।''

सोनी ने काम की प्रार्थना की ।

देवियों ने कहा, ``तुम्हारी इच्छा हो तो पंचशैलद्वीप पर आना ।'' इतना कहकर वे देवियाँ चली गईं ।

सोनी के मन में पंचशैलद्वीप जाने की भावना पैदा हुई ।

वह सोनी राजा के पास गया । उसने राजा को उत्तम वस्तु भेंट में दी

और बोला, ``आप नगर में पटह बजवाएँ...जो मुझे पंचशैलद्वीप ले जाएगा, उसे मैं एक करोड़ सोना मोहर दूंगा ।''

इस पटह को सुनकर एक अनुभवी सोनी ने सोचा, **``पंचशैलद्वीप समुद्र के बीच आया हुआ है, वहाँ जाने में आपत्ति भी है...ऐसे भी मैं किनारे बैठा हूँ...मौत कभी भी आ सकती है, अतः क्यों न इस पटह को स्वीकार कर लूँ ? मेरी मौत हो जाएगी, परंतु मेरे पीछे परिवार का दारिद्र्य तो हमेशा के लिए दूर हो जाएगा ।''** इस प्रकार विचार कर उस वृद्ध ने पटह की शर्त स्वीकार कर ली । उसने कुमारनंदी से 1 करोड़ सोना मोहर ले ली और अपने पुत्रों को सौंप दी ।

उस वृद्ध ने एक नाव तैयार की । कुमारनंदी उस नाव में बैठ गया । वह नाव आगे बढ़ने लगी ।

काफी दूर जाने के बाद उस वृद्ध नाविक ने कहा, ``सामने पंच शैलद्वीप के मूल में उगा हुआ बड़ का वृक्ष है, उस वृक्ष के पास से ज्योंही नाव प्रसार हो, त्योंही तुम उस वृक्ष की डाल पकड़ लेना । अन्यथा वहाँ से आगे बढ़ने पर पानी के प्रवाह में यह नाव टूट जाएगी और उसके साथ अपना जीवन भी समाप्त हो जाएगा । उस बड़ वृक्ष पर रात्रि में बड़े-बड़े भारंड पक्षी आकर सो जाते हैं । एक भारंड पक्षी के पैर के साथ अपने शरीर को बाँध देना, सुबह होने पर वे भारंड पक्षी तुम्हें पंचशैल द्वीप पर पहुँचा देंगे ।''

हासा-प्रहासा देवियों के साथ भोग की तीव्र आसक्ति होने के कारण कुमारनंदी सोनी ने वे सब बातें स्वीकार कर लीं और क्रमशः वह पंचशैलद्वीप पर पहुँच गया । वहाँ उसने हासा-प्रहासा देवियों के पास काम-भोग की भीख मांगी ।

देवी ने कहा, **``हम तुम्हारे इस गंदे देह के साथ समागम नहीं कर सकती हैं । यदि तुम्हें काम-भोग की इच्छा हो तो तुम्हें अग्नि में प्रवेशकर मर जाना होगा । मरते समय हमारा स्वामी बनने का नियाणा (निदान) करोगे तो तुम्हारी भावना अवश्य पूर्ण होगी ।''**

कुमारनंदी की हालत खराब हो गई । वह सोचने लगा, ``मुझे अपने नगर में कौन ले जाएगा ?'' उस समय उन देवियों ने दया करके उसे चंपा नगरी में पहुँचा दिया ।

सोनी अपने नगर में आ गया, परंतु हासा-प्रहासा की तीव्र आसक्ति के कारण वह नियाणे के साथ आग में प्रवेश करने के लिए तैयार हो गया ।

कुमारनंदी के मित्र नागिल को ज्योंही इस बात का पता चला, वह कुमारनंदी के घर आकर उसे समझाने लगा, ``मित्र ! तुम्हारे 500 स्त्रियाँ हैं, फिर उन दो स्त्रियों में पागल बनकर अपने अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ क्यों गँवाते हो ? तुम मेरे मित्र हो, अतः तुम्हारे इस आचरण से मेरी भी लोक में हँसी हो रही है, अतः तुम अग्नि में प्रवेश करने का विचार छोड़ दो ।''

नागिल ने बहुत समझाया परंतु कामासक्त कुमारनंदी ने नागिल की बात नहीं मानी, आखिर नियाणा करके उसने अग्नि में प्रवेश किया । वह मरकर पंचशैलद्वीप का अधिपति देव बन गया ।

इधर मित्र की इस दुर्दशा को देखकर नागिल को इस संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हुआ । उसने दीक्षा अंगीकार की और वह मरकर बारहवें अच्युत देवलोक में देव के रूप में पैदा हुआ ।

एक बार सभी देव नंदीश्वर द्वीप की यात्रा के लिए जा रहे थे । नागिल श्रावक का जीव अच्युत देव भी उस यात्रा में साथ था । हासा-प्रहासा देवियाँ उन देवों के आगे नृत्य करने लगीं, तब उन देवियों ने अपने स्वामी देव को ढोल बजाने के लिए निवेदन किया, परंतु अभिमान के कारण वह ढोल बजाने के लिए तैयार नहीं हुआ । आखिर वह ढोल ही उसके गले में आ गया ।

हासा-प्रहासा ने कहा, ``यह तो अपने कुल का रिवाज है, अतः शर्म रखने की जरूरत नहीं है ।''

आखिर उस देव को ढोल बजाना पड़ा । उस समय अच्युतदेव ने उसे कहा, ``तुम मुझे पहिचानते हो ?

विद्युन्माली ने कहा, ``नहीं ।''

अपनी पहिचान कराने के लिए अच्युतदेव ने नागिल श्रावक का रूप किया । विद्युन्माली उसे पहिचान गया ।

अच्युतदेव ने कहा, ``सोनी के भव में तू कामांध बना तो तेरी क्या हालत हुई है ?''

``तेरी कामांधता को देख मुझे वैराग्य हुआ । मैंने दीक्षा ली । मैं मरकर अच्युतदेव बना हूँ । धर्म का फल प्रत्यक्ष जान ले ।''

विद्युन्माली देव को अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप होने लगा ।

उसने कहा, ``दोस्त ! अब मेरा उद्धार कैसे होगा ?'' अच्युत देव

ने कहा, ``अभी महावीर प्रभु भाव साधु के रूप में घर में रहे हुए हैं, तुम उनकी मूर्ति बनाओ, उसके प्रभाव से तुम्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी ।''

वह विद्युन्माली देव महावीर प्रभु के पास आया और उसने प्रभु को देखा । उसने प्रभु के तुल्य आकारवाली चंदन की मूर्ति बनाई । कपिल केवली के पास उसकी प्रतिष्ठा कराई ।

उसके बाद अच्युतदेव की सलाह अनुसार चंदन की पेटी में सुगंधित द्रव्यों के साथ वह प्रतिमा स्थापित की ।

इधर एक व्यापारी का जहाज छह मास से समुद्र में जहाँ-तहाँ भटक रहा था ।

विद्युन्माली ने उस व्यापारी को कहा, ``इस पेटी के प्रभाव से तुम वीतभय पत्तन पहुँच जाओगे, वहाँ जाने के बाद राजमार्ग पर इस पेटी को स्थापित कर नगर में घोषणा करना, ``इस पेटी में देवाधिदेव की मूर्ति है । तुम इसको स्वीकार करो ।''

उस मूर्ति के प्रभाव से वह जहाज सुरक्षित रूप से वीतभय पत्तन पहुँच गया ।

व्यापारी ने वह पेटी राजमार्ग पर स्थापित की । सभी लोग अपने-अपने इष्टदेव की स्तुति करने लगे परंतु पेटी खुली नहीं ।

मध्याह्न का समय हो गया ।

प्रभावती रानी ने दासी भेजकर उदायन राजा को भोजन के लिए आमंत्रण भेजा ।

राजा ने कहा, ``पेटी खुल नहीं रही है ।''

प्रभावती रानी स्वयं वहाँ आई और उत्तम सामग्री से पेटी की पूजा कर बोली, **``आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित, राग-द्वेष आदि अठारह दोषों से रहित, हे देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा ! आप मुझे दर्शन दो ।''** तत्काल वह पेटी खुल गई ।

लोगों ने वीरप्रभु के दर्शन किए । राजा ने वह प्रतिमा अपने गृह-मंदिर में स्थापित की । प्रभावती रानी प्रभु की त्रिकाल पूजा करने लगी ।

एक बार रानी पूजा करके प्रभु के आगे नृत्य कर रही थी, तब राजा

वीणा बजा रहा था । अचानक राजा ने रानी का मस्तक रहित धड़ देखा । क्षोभ होने से राजा के हाथ में से वीणा नीचे गिर गई ।

रानी ने कारण पूछा । अतिआग्रह करने पर राजा ने कारण बताया । रानी ने सोचा, **''अब मेरा आयुष्य पूरा होने आया है ।''** एक बार स्नान के बाद रानी ने दासी द्वारा पूजा के सफेद वस्त्र मँगाए । दासी वे वस्त्र लेकर आई । सफेद वस्त्र होने पर भी रानी को लाल वस्त्र दिखाई दिए । गुस्से में आकर रानी ने एक दर्पण दासी पर फेंका । मर्म स्थान में लगने से दासी की मृत्यु हो गई । उसके बाद वे ही वस्त्र उसे सफेद दिखाई देने लगे ।

रानी को तीव्र पश्चात्ताप हुआ । व्रतभंग के पाप की सजा से बचने के लिए रानी ने राजा से दीक्षा के लिए अनुमति माँगी । राजा ने कहा, ''तुम देव बन जाओ तो मुझे अवश्य प्रतिबोध देना ।''

रानी ने दीक्षा अंगीकार कर ली । संयम की आराधना कर सौधर्म देवलोक में देव के रूप में पैदा हुई ।

देव ने उदायन राजा को प्रतिबोध देने के लिए, तापस का रूप किया । दैवी फल राजा को भेंट किए । राजा उन फलों के स्वाद में आसक्त बन गया ।

राजा ने पूछा, ''ये फल कहाँ मिलते हैं ?'' तापसों ने कहा, ''हमारे बगीचे में ।''

वह राजा तापस के साथ बगीचे की ओर आगे बढ़ा । उस देव ने विशाल बगीचा दिखाया । राजा जैसे ही बगीचे में से फल तोड़ने लगा, वे तापस उसे डंडे से मारने लगे । उसी समय राजा वहाँ से भागा । बीच मार्ग में राजा को जैन मुनि दिखाई दिए । राजा ने जैन मुनि की शरण स्वीकार की । मुनि ने राजा को आश्वासन दिया ।

राजा जैन साधु के प्रति आदर भाववाला बना । प्रभावती देव ने वह सब देवमाया संकेल ली । राजा जैन धर्म के प्रति श्रद्धालु बना ।

इधर गांधार श्रावक ने शाश्वत चैत्यों की आराधना के लिए शासनदेवी की आराधना की । एक देवी ने उसे 108 गुटिकाएँ प्रदान कीं । उस श्रावक ने एक गुटिका अपने मुँह में डालकर वीतभय पत्तन जाने की इच्छा व्यक्त की । तत्क्षण गुटिका के प्रभाव से वह वीतभयपत्तन आ गया । उसने जीवित स्वामी के दर्शन किए ।

फिर अपने अल्प आयुष्य को जानकर गांधार श्रावक ने वे सब

गुटिकाएँ जीवित स्वामी की पूजा करनेवाली देवदत्ता दासी को दे दीं और स्वयं ने दीक्षा ले ली ।

देवदत्ता ने एक गुटिका अपने मुँह में डाली तो वह अत्यंत रूपवती हो गई । उसने दूसरी गुटिका मुँह में डालकर चंडप्रद्योत राजा को अपना पति बनाने की इच्छा व्यक्त की ।

गुटिका के अधिष्ठायक ने चंडप्रद्योत के पास जाकर देवदत्ता के सौंदर्य की प्रशंसा की । चंडप्रद्योत अत्यंत ही मोहित हो गया ।

चंडप्रद्योत के दूत ने आकर दासी से उज्जैन आने की प्रार्थना की ।

दासी ने कहा, ``चंडप्रद्योत स्वयं मुझे मिले ।'' रात्रि में चंडप्रद्योत स्वयं अनिलवेग हाथी पर बैठकर वीतभय पत्तन आया और दासी से मिला ।

दासी ने कहा, ``जीवित स्वामी की प्रतिमा बिना मैं नहीं आ सकती हूँ, अतः आप इसके जैसी दूसरी प्रतिमा बनवाओ, उसके बाद मैं इस प्रतिमा को लेकर आपके साथ आ सकूंगी ।''

चंडप्रद्योत ने वैसी ही चंदन की प्रतिमा भराई, कपिल केवली के पास प्रतिष्ठा कराई । फिर उस प्रतिमा को लेकर वीतभयपत्तन आया । दासी ने मूल प्रतिमा अपने साथ ले ली और उसके स्थान पर नई प्रतिमा स्थापित कर दी ।

वह दासी मूर्ति लेकर चंडप्रद्योत के साथ उज्जैन आ गई ।

दूसरे दिन राजा पूजा के लिए गया । प्रभु के गले में रही माला को मुर्झाई हुई देखकर राजा को शंका पैदा हुई ।

उदायन ने सोचा, ``अवश्य चंडप्रद्योत ही दासी व मूर्ति को ले गया है ।''

उदायन राजा को गुस्सा आया । अन्य दस राजाओं के साथ उसने उज्जैन पर चढ़ाई की । युद्ध में चंडप्रद्योत की हार हुई । उदायन ने चंडप्रद्योत के मस्तक पर **``मम दासीपति''** लिखाकर कैद में डाल दिया ।

उज्जैन में अपना विजयध्वज फहराने के बाद उदायन उस मूर्ति को उठाने लगा, परंतु मूर्ति उठी नहीं ।

उस समय देववाणी हुई...**``तुम्हारा नगर धूल से दब जाएगा, अतः मूर्ति वहाँ नहीं आएगी ।''**

चंडप्रद्योत को साथ में लेकर उदायन अपनी नगरी की ओर आगे बढ़ा ।

बीच में चातुर्मास प्रारंभ हो जाने से राजा छावनी डालकर जंगल में ही रह गया । जंगल में ही एक नगर बस गया ।

क्रमशः पर्युषण के दिन आए । संवत्सरी के दिन उदायन राजा ने उपवास सहित पौषध किया ।

राजा को उपवास होने से रसोइए ने चंडप्रद्योत को पूछा, ``तुम्हारे लिए रसोई में क्या बनाएँ ?''

चंडप्रद्योत को आश्चर्य हुआ, ``आज मुझे रसोई के लिए क्यों पूछा जा रहा है ?''

रसोइए ने कहा, ``उदायन राजा को संवत्सरी का उपवास होने से सिर्फ आपके लिए ही रसोई बनाने की है।''

चंडप्रद्योत ने कहा, ``संवत्सरी पर्व की याद दिलाकर अच्छा काम किया, आज मेरे भी उपवास है ।''

रसोइए ने उदायन राजा से बात कही ।

उदायन ने सोचा, **``उपवास करने से चंडप्रद्योत मेरे लिए साधर्मिक है, उसे कैद में रखकर मेरी संवत्सरी की आराधना कैसे सफल होगी ?''**

उदायन ने चंडप्रद्योत को कैद से मुक्त किया । माफी मांगी और उसके ललाट पर रत्नपट्ट बँधवाकर उज्जैन का राज्य उसे वापस दे दिया । चातुर्मास-समाप्ति के बाद उदायन राजा अपने नगर में आ गया ।

उदायन राजा नई मूर्ति की पूजा-भक्ति करने लगा । एक बार पौषध में रहे उदायन को दीक्षा की भावना हुई । वे सोचने लगे, **``यदि प्रभु यहाँ पधारें तो मैं उनके पास दीक्षा ले लूँ ।''**

उदायन राजा की भावना जानकर वीरप्रभु स्वयं वहाँ पधारे । अपने पुत्र को राज्य के लिए अयोग्य समझकर अपने भाणेज केशी को राजगद्दी सौंपकर उदायन राजा ने प्रभु के पास दीक्षा ले ली ।

उदायन मुनि कठोर तप करने लगे । निरंतर नीरस आहार से उनके शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई ।

किसी वैद्य ने उन्हें रोगोपशमन के लिए दहीसेवन का सुझाव दिया ।

उदायन मुनि पशुपालकों के घर से निर्दोष दही प्राप्तकर संयम का निर्वाह करने लगे ।

एक बार विहार करते हुए वे वीतभयपत्तन पधारे । राजा के मंत्री ने राजा के कान फूँकते हुए कहा, **''आपके मामा व्रतपालन से कंटाल कर पुनः राज्य लेने के लिए आए हैं ।''**

राजा भी मंत्री की बातों में आ गया । राजा ने गोवाल के द्वारा उदायन मुनि को विषमिश्रित दही बहोराया । परंतु प्रभावती देव ने वह जहर दूर कर दिया । तीन बार देव ने जहर का संहरण किया ।

चौथी बार देव का उपयोग नहीं रहने से उदायन मुनि ने विष मिश्रित दही वापरा ! पूरे शरीर में जहर फैल गया । उसी समय सभी जीवों को मन, वचन और काया से खमाकर मुनि ने अनशन व्रत स्वीकार किया । भावना के प्रभाव से उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । 30 दिन का अनशन कर वे मोक्ष में गए ।

केशी राजा के विषप्रयोग से उदायन मुनि के मोक्षगमन को जानकर प्रभावती देव को अत्यंत ही गुस्सा आया । उसने धूल की वृष्टि कर वीत-भयपत्तन नगर को धूल से ढक दिया । समग्र नगर का नाश हो गया । नई स्थापित जीवित स्वामी की प्रतिमा भी जमीन में दब गई । वह प्रतिमा वीर निर्वाण के 1669 वर्ष बाद कुमारपाल महाराजा को मिली जो आज पाटण में ढंढेरवाड़ा के मंदिर में विद्यमान है ।

उदायन राजा की दीक्षा के बाद राज्यप्राप्ति नहीं होने से अभिची को पिता के प्रति द्वेष भाव पैदा हुआ । वह केशी राजा की सेवा में न रहकर कोणिक की सेवा में चला गया-फिर महावीर प्रभु से प्रतिबोध पाकर श्रावक बना । अंत में भवनपति देव बना । पल्योपम का देवायु पूर्णकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यजन्म पाकर दीक्षा लेकर मोक्ष जाएंगे ।

❑ ❑ ❑

59-60. शय्यंभवसूरि और मणक

किञ्चित् सिद्धान्त भणनाराधनादर्थवीक्षणात् ।
लभते सुखदं स्थानं, मनकक्षुल्लवत् स्फूटम् ।।

स्तुति

सत्य तत्त्व को जानने, तलवार का आश्रय लिया,
सद्बोध से श्रुतकेवली, बने शय्यंभव सूरिवरा;
पुत्र मुनि के हित में, दश वैकालिक सूत्र रचा,
प्रभु वीर पाट परंपरा को, भाव से करूं वंदना ।।

चरम केवली जंबूस्वामी के पट्ट प्रभावक चौदह पूर्वधर महर्षि **प्रभव स्वामी** अपने चरण-कमलों से पृथ्वीतल को पावन कर रहे थे ।

एक बार आवश्यक श्रुत के अध्ययन से श्रमित बना हुआ शिष्य-समुदाय निद्राधीन बना हुआ था-तभी मध्य रात्रि में वे अचानक जागृत हुए और सोचने लगे, **''अहो ! मेरी काया वृद्ध हो चुकी है, जब तक मेरी काया सशक्त थी, तब तक मैंने अपने कर्त्तव्य का यथाशक्य पालन किया...परन्तु अब मेरी काया शिथिल बनती जा रही है...शासन की विविध जवाबदारियों को वहन करने में असमर्थ बन रही है, अतः क्यों न योग्य पात्र को अपने पद पर नियुक्त कर अपने कार्यभार से हल्का बन जाऊँ !''**

इस प्रकार विचार कर अपने भावी पट्टधर की नियुक्ति के लिए उन्होंने सर्वप्रथम ज्ञान से अपने शिष्य समुदाय पर नजर डाली... परन्तु उन्हें एक भी शिष्य ऐसा नजर नहीं आया, जो अपना योग्य उत्तराधिकारी बन सके । इसके बाद उन्होंने श्रावक वर्ग पर नजर डाली । श्रावक वर्ग में कोई योग्य जीव हो तो उसे प्रतिबोध देकर, उसे दीक्षित कर, संघ का नेतृत्व-भार उसे सौंपा जा सके । परन्तु यह क्या ! श्रावक वर्ग में ऐसा एक भी श्रावक नजर नहीं आया, जो उनका सुयोग्य उत्तराधिकारी बन सके ।

इसके बाद उन्होंने अन्य दर्शन के व्यक्तियों पर अपनी नजर दौड़ाई और उसी समय उन्हें राजगृह नगर में वत्सकुल में उत्पन्न हुए **शय्यंभव** हर

तरह से योग्य दिखाई दिए । वह शय्यंभव ब्राह्मण राजगृही नगरी में ब्राह्मणों के पास यज्ञ करा रहा था ।

अपने भावी उत्तराधिकारी को नियुक्त करने के उद्देश्य से प्रभवस्वामी ने राजगृही नगरी की ओर अपनी विहार यात्रा प्रारंभ की । **श्रमणों का तो यह कर्त्तव्य है कि जिस क्षेत्र में विचरण करने से विशेष लाभ होता हो, उस क्षेत्र में विचरण करते है ।** ग्रामानुग्राम विहार करते हुए प्रभव स्वामी राजगृह नगर में पधारे । प्रभवस्वामी ने आर्य शय्यंभव को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए एक बहुत ही सुंदर योजना बनाई ।

उन्होंने दो मुनियों को आदेश देते हुए कहा, ``आज तुम भिक्षा के लिए यज्ञशाला में जाओ और वहाँ आहार मिले या न मिले, फिर भी लौटते समय जोर से कहना

``अहो कष्टं, अहो कष्टं, तत्त्वं न ज्ञायते परम् ।''

``बहुत खेद की बात है कि बहुत सा कष्ट उठाने पर भी तत्त्व को नहीं पहिचाना जा रहा है ।''

दोनों मुनियों ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और उन्होंने भिक्षा के लिए यज्ञशाला की ओर प्रयाण कर दिया ।

क्रमशः वे दोनों आगे बढ़ते हुए यज्ञ-मंडप के समीप पहुँच गए । उन्होंने यज्ञ मंडप के द्वार को तोरणों से सुसज्जित देखा । समुन्नत ध्वजाएँ शोभा में चार चांद लगा रही थीं । आचमन के लिए द्वार पर जल-पात्र भरे हुए थे । यज्ञ-स्तंभ के पास बकरे बँधे हुए थे । याज्ञिक ब्राह्मण मंत्रोच्चार पूर्वक यज्ञ-द्रव्य समर्पण करने के लिए तैयार थे ।

इसी बीच वे दोनों मुनि भिक्षा के लिए यज्ञशाला में आए...परन्तु उन ब्राह्मणों ने उन्हें भिक्षा नहीं दी ।

``अहो कष्टं ! अहो कष्टं ! तत्त्वं ज्ञायते न परम् ।''

यह पद्य उन्होंने अनेक बार दुहराया ।

शय्यंभव यज्ञशाला के द्वार के पास बैठा हुआ था । जैन मुनियों के मुख से इस पद्य को सुनकर शय्यंभव ब्राह्मण सोचने लगा, **``अहो ! उपशम प्रधान ये साधु कभी भी असत्य भाषण नहीं करते हैं, अतः लगता है कि अभी तक हमने सत्य तत्त्व को प्राप्त नहीं किया है ।''**

शय्यंभव ब्राह्मण संदेह के झूले में झूलने लगा । तुरंत ही उसने उपाध्याय को बुलाकर पूछा, ``मुझे बतलाइए कि वास्तविक तत्त्व क्या है ?''

उपाध्याय ने कहा, ``स्वर्ग और अपवर्ग को प्रदान करने में समर्थ ये वेद ही परम तत्त्व हैं, इनसे अतिरिक्त कोई तत्त्व नहीं है ।''

शय्यंभव ने कहा, ``यज्ञ की दक्षिणादि के लोभ से तुम लोग हमको ठग रहे हो, क्योंकि राग द्वेष से रहित, निर्मम, निष्परिग्रही ये जैन मुनि कभी असत्य नहीं बोलते हैं । तुम लोग वास्तविक गुरु नहीं हो । तुम लोगों ने दुनिया को ठगने का काम किया है, अतः तुम शिक्षा के पात्र हो । यदि तुम सत्य तत्त्व नहीं बतलाओगे तो मेरी यह तलवार तुम्हारे मस्तक को धड़ से अलग कर देगी ।''

उपाध्याय ने जब अपनी आँख के सामने मौत को घूमते हुए देखा तो वह भी भय के मारे काँप उठा । उसने सोचा, `अब सत्य तत्त्व प्रगट करने में ही मेरा हित है ।' इस प्रकार विचार कर बोला, **``इस यज्ञस्तंभ के नीचे शांतिनाथ प्रभु अरिहंत की रत्नमय प्रतिमा रही हुई है । गुप्त रीति से प्रतिदिन उसका पूजन होता है और उसी के प्रभाव से हमारा यज्ञादि अनुष्ठान निर्विघ्न पूर्ण होता है । यदि यह प्रतिमा नहीं होती तो विघ्न पैदा हुए बिना नहीं रहते ।''**

उसी समय उपाध्याय ने यज्ञ स्तंभ को उखाड़ा और उसके नीचे रही हुई अरिहंत की रत्नमयी प्रतिमा बतलाकर कहा, **``जिस अर्हत् की यह प्रतिमा है, उसके द्वारा निर्दिष्ट धर्म ही परम तत्त्व है । अन्य यज्ञ आदि तो सिर्फ विडंबना मात्र है । अरिहंत परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट जीवदयात्मक धर्म ही सच्चा धर्म है और जिस यज्ञ में पशुओं की हिंसा रही हुई है, वहाँ धर्म कहाँ से हो ? हम तो माया-जाल कर रहे हैं...तुम तत्त्व को जानो और अपना कल्याण साधो । अपने पेट की पूर्ति के लिए मैंने निरर्थक ही तुम्हें ठगा है, मैं तुम्हारा वास्तविक उपाध्याय नहीं हूँ ।''**

शय्यंभव को सन्मार्ग की प्राप्ति हो चुकी थी, अतः उसने नम्रता पूर्वक कहा, ``पूज्यवर ! आपने सत्य तत्त्व को बतलाकर मुझे सत्य मार्ग प्रदान किया है, अतः आप मेरे उपाध्याय हो ।''

उसके बाद शय्यंभव ने उस उपाध्याय को सुवर्ण व ताम्र के विविध

उपकरण भेंट किए । तत्पश्चात् उन मुनियों की शोध में वह शय्यंभव निकल पड़ा ।

कुछ दूरी पार करने पर उसे दोनों मुनियों के पद-चिह्न दिखाई दिए । उन पद-चिह्नों के अनुसार वह प्रभव स्वामी के पास पहुँच गया । उसने प्रभव स्वामी के चरणों में भावपूर्वक प्रणाम किया । आचार्य भगवंत ने उसे धर्मलाभ की आशिष दी ।

उसके बाद उसने आचार्य भगवंत को मोक्ष के कारणभूत धर्म तत्त्व के बारे में पूछा ।

आचार्य भगवंत ने उसे धर्म का तत्त्व समझाते हुए कहा, **``इस संसार में जैसे अपने को जीना पसंद है और मरना पसंद नहीं है, उसी प्रकार इस संसार में जीव मात्र को जीना पसंद है, मरना पसंद नहीं है । अतः निजी स्वार्थ के लिए दूसरे जीवों को मौत के घाट नहीं उतारना चाहिए । ``दया'' ही सबसे बड़ा धर्म है । सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन भी अहिंसा धर्म के पालन के लिए ही है । जो व्यक्ति हिंसादि पाँच पापों का सर्वथा त्याग करते हैं, वे ही शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं ।''**

इसके बाद आचार्य भगवंत ने उसे जैनदर्शन में निर्दिष्ट जीवादि तत्त्वों का विस्तार से स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर शय्यंभव के दिल में इस असार संसार के प्रति तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ ।

प्रभव स्वामी के चरणों में नमस्कार करके वह बोला, ``प्रभो ! सद्गुरु के समागम के अभाव के कारण आज तक मुझे अतत्त्व में ही तत्त्व बुद्धि रही । आज मेरे ज्ञानचक्षु खुल गए हैं । आपके अनुग्रह से मुझे तत्त्व–अमृत की प्राप्ति हुई है, मैं इस संसार से विरक्त बन चुका हूँ । भागवती-दीक्षा प्रदान कर आप मेरा उद्धार करें ।''

बस, उसी समय शय्यंभव की योग्यता को जानकर आचार्य भगवंत ने उसे भागवती-दीक्षा प्रदान की । आचार्य भगवंत चिंतामुक्त हो गए...उन्हें जिस योग्य उत्तराधिकारी की आवश्यकता थी, वह उत्तराधिकारी उन्हें मिल गया ।

भागवती दीक्षा स्वीकार करने के बाद शय्यंभव मुनि, ज्ञान-ध्यान की साधना में लीन बन गए । अनुकूल-प्रतिकूल परीषह उपसर्गों को वे समतापूर्वक सहन करने लगे । उपवास, छट्ठ, अट्ठम आदि विविध तपों के द्वारा उनका

बाह्य-अभ्यंतर तेज खूब बढ़ने लगा । इसी प्रकार गुरुशुश्रूषा में लीन बने शय्यंभव मुनि ने अल्पकाल में ही चौदह पूर्वों का अध्ययन कर लिया ।

गुरुदेव ने उन्हें योग्य जानकर आचार्य पद प्रदान किया । उसके बाद प्रभवस्वामी समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर देवलोक में उत्पन्न हुए ।

मनक का उद्धार

शय्यंभव ब्राह्मण की दीक्षा की बात सुनकर और उसकी पत्नी को युवावस्था में देखकर आसपास के लोग शय्यंभव की निंदा करने लगे और कहने लगे, **``अहो ! यह शय्यंभव कितना निष्ठुर है...अपनी युवा-पत्नी को अकेली छोड़कर उसने दीक्षा अंगीकार कर ली । पति के अभाव में स्त्री, पुत्र के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करती है, परन्तु इसे तो पुत्र भी पैदा नहीं हुआ है । अहो ! यह किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेगी ?''**

उसी समय किसी स्त्री ने शय्यंभव की स्त्री को पूछा, ``क्या तुम्हारे उदर में गर्भ की संभावना लगती है ?''

उसने प्राकृत भाषा में कहा, ``मणयम्'' अर्थात् कुछ संभावना है ।

धीरे-धीरे समय व्यतीत हुआ और गर्भ बढ़ने लगा । गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने एक अत्यंत ही तेजस्वी पुत्र-रत्न को जन्म दिया ।

गर्भकाल दरम्यान माता ने जो ``मणयं'' शब्द का प्रयोग किया था उसके अनुसार उस बालक का ``मनक'' नाम पड़ा और इस नाम से वह प्रसिद्ध हो गया ।

शय्यंभव की स्त्री के लिए मनक ही एक आधार था । वह अत्यंत ही लाड़-प्यार से उस बालक का पालन-पोषण करने लगी । तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण वह अल्पकाल में अनेक विद्याओं में निपुण हो गया ।

मनक आठ वर्ष का हुआ, उसके दिल में एक संदेह उत्पन्न हुआ । उसने अपने घर पर कभी भी अपने पिता के दर्शन नहीं किए और दूसरी ओर उसकी माता के सुहागिन के वस्त्र देखे । एक बार उसने माँ को पूछ ही लिया, ``माँ ! मेरे पिता कहाँ हैं ? मैं उन्हें देखना चाहता हूँ ।''

बेटे की यह बात सुनकर माँ की आँखें डबडबा गईं । उसकी आँखों में पति-वियोग की पीड़ा के आँसू उभर आए । कुछ समय बाद साहस करके

वह बोली, **``बेटा ! जब तू गर्भ में था, तभी तेरे पिता शय्यंभव यज्ञ में रत थे, परन्तु किन्हीं धूर्त श्रमणों ने ठगकर उन्हें दीक्षा दे दी है ।''**

बालक के दिल में पिता के दर्शन की तीव्र उत्कंठा पैदा हुई और एक दिन माता को छोड़कर वह पिता की शोध में निकल पड़ा ।

उस समय शय्यंभवसूरिजी म. चंपानगरी में विचरण कर रहे थे । भाग्य-योग से वह बालक चंपानगरी के बाहर आ गया । उस समय शय्यंभवसूरिजी म. स्थंडिल भूमि से वापस नगर की ओर आगे बढ़ रहे थे ।

बालक ने दूर से आचार्य भगवंत को देखा और आचार्य भगवंत ने उस बालक को देखा । बालक को देखते ही आचार्य भगवंत के हृदय में प्रेम का सागर उमड़ पड़ा । **अपरिचित अवस्था में भी पूर्व संबंध के कारण प्रेम का सागर उछल पड़ता है ।**

निकट आने पर आचार्य भगवंत ने उस बालक को पूछा, ``वत्स ! तुम कौन हो ? कहाँ से आए हो और तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ?''

बालक ने कहा, ``मैं राजगृही नगरी से आया हूँ । मैं वत्स गोत्रीय शय्यंभव ब्राह्मण का पुत्र हूँ । मैं जब गर्भ में था तभी मेरे पिता ने दीक्षा अंगीकार की थी । अतः उनकी शोध के लिए मैं घर छोड़कर यहाँ आया हूँ । क्या आप मेरे पिता को पहिचानते हो ? यदि आप उनके बारे में मुझे जानकारी देंगे तो मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``वत्स ! मैं तुम्हारे पिता को अच्छी तरह से पहिचानता हूँ । उनमें और मुझमें कोई फर्क नहीं है ।'' इस प्रकार समझाकर उसे उपाश्रय में ले गए । तत्पश्चात् उसकी योग्यता जानकर आचार्य भगवंत ने उसे भागवती दीक्षा प्रदान की ।

आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान के बल से बालमुनि मनक के भविष्य को देखा । उन्हें पता चला कि इसका आयुष्य बहुत थोड़ा है । छह मास में ही इसका जीवन पूरा हो जाएगा, अतः यह श्रुत पारगामी तो नहीं बन सकता है ।

उन्होंने सोचा, **``कोई चौदहपूर्वी, दशपूर्वी विशेष प्रयोजन उत्पन्न होने पर श्रुतसागर का समुद्धार कर सकते हैं ।** मनक के प्रतिबोध का प्रसंग उपस्थित हुआ है, अतः क्यों न सिद्धांत के अर्थ के समुच्चय रूप सिद्धांतसार का उद्धार करूँ'' इस प्रकार विचार कर विभिन्न पूर्वों के अध्ययन की सारभूत गाथाओं का चयन कर एक शास्त्र का निर्माण किया । विकाल वेला में उसकी

रचना होने से दश अध्ययन होने से उस ग्रंथ का नाम **``दशवैकालिक''** रखा गया ।

दया के महासागर शय्यंभवसूरिजी ने मनक मुनि को वह ग्रंथ अच्छी तरह से पढ़ाया । इसके परिणाम स्वरूप वे बालमुनि अत्यंत ही अप्रमत्त भाव से संयम धर्म की आराधना-साधना करने लगे । मनक मुनि आत्म साधना में एकदम रम गए । अत्यंत ही आत्म-जागृति पूर्वक मनक मुनि ने छह मास व्यतीत किए और एक दिन अत्यंत ही समाधि पूर्वक बालमुनि ने अपना देह छोड़ दिया । कालधर्म प्राप्त कर वे बालमुनि देवलोक में उत्पन्न हुए ।

यद्यपि जैन मुनि को किसी के मरण का शोक नहीं होता है, फिर भी मनक मुनि के कालधर्म के बाद चौदह पूर्वधर शय्यंभवसूरिजी म. की आँखों में आँसू आ गए । यह दृश्य देख उनके शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने पूछ लिया, ``प्रभो ! आप तो निर्मोही हो फिर आपको यह मोह कैसे ?''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``मनक के साथ मेरा पिता-पुत्र का संबंध था और इसी कारण मेरी आँखों में आँसू आ गए ।'' इतना कहकर आचार्य भगवंत ने मनक के जीवन का सारा वृत्तांत सुना दिया ।

उसी समय यशोभद्रसूरिजी ने कहा, ``भगवंत ! आपने यह पुत्र का संबंध हमसे छिपा कर क्यों रखा ? यदि आप पहले ही संकेत कर देते तो आपकी तरह आचार्यपुत्र की भी सेवा-शुश्रूषा करते ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``मैंने उसके हित के लिए यह बात सबसे छिपाकर रखी थी । तपस्वी मुनियों की वैयावच्च आदि से उसे जो कर्म निर्जरा का लाभ मिला, यह तभी संभव हो सका, जब तुम, उनके और मेरे संबंध से अज्ञात रहे ।''

तत्पश्चात् आचार्य भगवंत ने कहा, ``मैंने उसके उद्धार के लिए ही पूर्वों के सार रूप इस **``दशवैकालिक''** की रचना की है, अब मुख्य उद्देश्य समाप्त हो चुका है, अतः मैं चाहता हूँ कि इन अध्ययनों का संवरण कर यथास्थान स्थापित कर दूँ ।''

यशोभद्रसूरिजी आदि मुनियों ने यह बात संघ को कही । संघ ने निवेदन करते हुए कहा, **``मनक के हित के लिए बनाया हुआ ग्रंथ समस्त जगत् के उपकार का निमित्त बना रहे, क्योंकि भविष्य में प्राणी अल्प बुद्धि वाले**

होंगे । मनक की तरह वे जीव भी इस ग्रंथ से कृतार्थ बन सकेंगे । अतः आप इसका संवरण न करें ।''

शय्यंभवसूरि म. ने संघ की भावना का सम्मान किया और दशवैकालिक ग्रंथ को वैसा ही बनाए रखा ।

भव्य जीवों पर उपकार करते हुए शय्यंभवसूरि म. अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त कर देवलोक में उत्पन्न हुए ।

पंचमकाल के अंत तक जो सूत्र जगत् को मोक्षमार्ग दिखलाता रहेगा, ऐसे परम पवित्र दशवैकालिक ग्रंथ के रचयिता चौदह पूर्वधर महर्षि शय्यंभवसूरिजी म. के पवित्र चरण कमलों में कोटि-कोटि वंदना ।

श्री दशवैकालिक सूत्र पर भद्रबाहुस्वामीजी ने निर्युक्ति की रचना की है । उसमें लिखा है कि शय्यंभवसूरिजी ने **'आत्म प्रवाद'** नाम के पूर्व में से दशवैकालिक का चौथा अध्ययन, **कर्मप्रवाद** पूर्व में से पांचवा अध्ययन, **सत्यप्रवाद** पूर्व में से सातवा अध्ययन और **प्रत्याख्यान** पूर्व में से शेष अध्ययनों की रचना की है ।

बारह अंग विकाल समय में नहीं पढ सकते है, परंतु दश वैकालिक के 10 अध्ययन विकाल समय में भी पढ सकते है, इसलिए इस सूत्र का नाम `दशवैकालिक' रखा गया है । इस सूत्र की रचना वीर संवत् 82 लगभग हुई है ।

पू. यशोभद्रसूरिजी को अपनी पाट पर स्थापित कर वीर संवत् 98 में शय्यंभवसूरिजी का स्वर्गवास हुआ था ।

उन्होंने 28 वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी उनका 34 वर्ष का संयम पर्याय था । 11 वर्ष का सामान्य दीक्षा पर्याय और 23 वर्ष का युग प्रधान पद पर रहे थे । 62 वर्ष की उम्र में उनका स्वर्गवास हुआ था ।

❑ ❑ ❑

61. कालकाचार्य :- (प्रथम)

दत्तेन भुभुजा याग फलं पृष्टोऽन्यदा हठात् ।
कालिकाचार्य आचष्ट, नरकस्य गतिं स्फुटम् ।।

तुरमिणी नगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था । उसी नगरी में कालक नाम का ब्राह्मण था, जिसके भद्रा नाम की बहिन थी, उस भद्रा के पुत्र का नाम दत्त था ।

ब्राह्मणपुत्र दत्त राजा की नित्य सेवा करता था । विश्वास में आकर राजा ने उस दत्त को सेनापति बना दिया ।

राज्य के लोभी उस दत्त ने एक बार अवसर देखकर राजा को जेल में डाल दिया और राज्य की सत्ता अपने हाथों में ले ली ।

उसे यज्ञ कराने का खूब शौक था । महायज्ञ और पशुमेध यज्ञ कराकर वह अनेक पशुओं को यज्ञ में होम देता था ।

दत्त राजा के मामा कालिक ने सद्गुरु के संग को प्राप्त कर संसार का त्याग कर दिया । निर्मल संयम धर्म की आराधना-साधना करते हुए क्रमशः वे आचार्य पद पर आरूढ़ हुए ।

अपने उपदेश और चरण-कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए वे तुरमिणी नगरी में पधारे । वे नगर में धर्मोपदेश देने लगे ।

एक बार सांसारिक भाणेज दत्त राजा भी उनकी धर्मदेशना सुनने के लिए आचार्य भगवंत के पास आया ।

यज्ञ की हिंसा में लिप्त दत्त ने पूछा, `यज्ञ का फल क्या है ?'

गुरुदेव ने कहा, `क्या धर्म के बारे में पूछते हो ? धर्म तो हिंसा के त्याग से होता है ।' दत्त ने कहा, `मैं यज्ञ के बारे में पूछ रहा हूँ और तुम धर्म के बारे में बता रहे हो ?'

आचार्य भगवंत ने सोचा, `यह अभिनिवेश से पूछ रहा है, सत्य कहूंगा, वह उसे पसंद पड़नेवाला नहीं है, परंतु इसके भय से मुझे असत्य भी नहीं कहना है, अतः उन्होंने स्पष्ट कहा, `हिंसा के कारण यज्ञ का फल नरक है ।'

आवेश में आकर राजा ने कहा, `तुम्हारे वचन पर कैसे विश्वास करें ?'

गुरुदेव ने कहा, ``आज से सातवे दिन कुत्तों द्वारा खाए जाते हुए कुंभी पाक में पकाए जाओगे ।''

दत्त ने कहा, ``क्या तुम विश्वासपूर्वक कहते हो ? इसका कोई प्रमाण ?''

गुरुदेव ने कहा, ``मै विश्वास से कह रहा हूँ, आज से सातवें दिन राजमार्ग पर घोड़े के खुर से उड़ी विष्ठा तुम्हारे मुँह में प्रवेश करेगी ।''

दत्त ने कहा, ``तो तुम्हारी क्या गति होगी ?''

गुरुदेव ने कहा, ``मैं समाधि पूर्वक मरण प्राप्तकर देव लोक में जाऊंगा ।''

आचार्य भगवंत के वचन को मिथ्या करने के लिए राजा ने सोचा, ``मैं सात दिन तक महल के भीतर ही रहूंगा और आठवें दिन नरमेध यज्ञ कराऊंगा ।''

दत्त के अत्याचार आदि के कारण सारी प्रजा उसके विरुद्ध ही थी । प्रजाजन जितशत्रु राजा को पुनः राजा बनाना चाहते थे ।

दत्त ने आर्तध्यान में पाँच दिन व्यतीत किए । परंतु दुर्भाग्य से छठे दिन को सातवाँ दिन मान बैठा, उसने राजमार्गों की सफाई कराई । योगानुयोग सातवे दिन माली फूलों की टोकरी लेकर राजमार्ग से जा रहा था, अचानक हाजत लगने से उसने बीच मार्ग में ही मलोत्सर्ग कर उस पर फूल बिछा दिए ।

थोड़ी ही देर में राजा वहाँ से निकला । अचानक घोड़े का पाँव फूलों पर गिरा । घोड़े के खुर से विष्ठा उछलकर उसके मुँह में आई ।

गुरु के वचन पर विश्वास आने से उसका चेहरा उतर गया । उसने सोचा, ``शायद आज सातवाँ दिन हो सकता है, मैंने भूल से आठवाँ दिन समझ लिया ।''

राजा वापस अपने महल की ओर लौटा । उसी समय सामंतों ने उसे पकड़ लिया । प्रजाजनों ने जितशत्रु राजा को राजगद्दी पर स्थापित कर दिया ।

जितशत्रु ने कुत्तों के साथ बाँधकर कुंभी में डालकर नीचे आग लगा दी ।

आग के ताप से भूखे कुत्तों ने उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए । रौद्र ध्यान में मरकर वह दत्त नरक में चला गया ।

कालकाचार्य भी निर्मल संयम धर्म का पालनकर समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर देवलोक में चले गए ।

62. युग प्रधान श्री कालकाचार्यजी-(द्वितीय)

प्रभावना वितन्वाना जिनेन्द्र शासने सदा ।
लभतेऽत्र परत्रापि सुखं कालिकसूरिवत् ।।

1. भागवती दीक्षा

भारत देश की पवित्र आर्यभूमि !

धारावास नगर ! वीरसिंह राजा और सुरसुंदरी रानी ! राजा अत्यंत ही न्यायप्रिय था और प्रजा का हितैषी था ! अपने सुख-दुःख को गौण करके भी प्रजा के सुख-दुःख की उसे अधिक चिंता थी ।...एक शुभ दिन शुभ मुहूर्त में सुरसुंदरी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । नगर में चारों ओर खुशियाँ मनाई गईं...क्रमशः बालक का नाम किया गया **कालक ।**

कुछ समय बाद राजरानी ने रूप की अंबार ऐसी तेजस्विनी कन्या को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया **सरस्वती !**

यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही राजकुमार कालक शस्त्र और शास्त्र कला में निपुण बन गया । सरस्वती ने भी स्त्रियों की सभी कलाएँ अर्जित कीं । कालक को घुड़सवारी का खूब शौक था । एक दिन घोड़े पर सवारी करते हुए वह नगर से दूर-सुदूर क्षेत्र में पहुंच गया । एक उद्यान के पास उसने विश्राम लिया ।

भाग्ययोग से उस समय उसी उद्यान में **गुणाकरसूरिजी म.** धीर-गंभीर स्वर से धर्मदेशना दे रहे थे । पूज्य आचार्य भगवंत की मेघ-गंभीर ध्वनि के मधुर शब्द कालककुमार के कानों तक पहुँचे । उसके दिल में जिनवाणी श्रवण के प्रति एक आकर्षण पैदा हुआ...और वह भी उस प्रवचन सभा में जाकर बैठ गया । पूज्य आचार्य भगवंत की भवनिस्तारिणी-वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना के वे गंभीर शब्द कालककुमार के अन्तर्मन को छू गए । पूज्य आचार्य भगवंत की एक ही देशना ने कुमार का हृदय परिवर्तन कर दिया । अभी तक उसके दिल में भौतिक सुख-समृद्धि का जो आकर्षण था...वह आकर्षण तत्क्षण समाप्त हो गया ।

संसार के सभी भौतिक सुख उसे असार व तुच्छ प्रतीत होने लगे और उसका मन वैराग्य रंग से रंजित हो गया । बस, उसी समय उसने त्याग धर्म को स्वीकार करने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

कुछ समय बाद कालक अपने घर लौटा । उसने दीक्षा की अनुमति देने के लिए अपने माता-पिता को समझाया किंतु मोहाधीन माता-पिता इस प्रकार दीक्षा की अनुमति कैसे दे सकते थे ?

आखिर कालक के दृढ़ वैराग्य के सामने उसके माता-पिता को झुकना पड़ा और एक दिन कालक भागवती दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हो गया ।

कालक की बहिन सरस्वती को जब पता चला कि मेरा भाई वीतराग प्रभु के बताए हुए त्याग मार्ग पर जाने के लिए सुसज्ज बना है...तो वह अपने भाई के पास जाकर बोली, ``भैय्या ! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह पाऊंगी ?''

कालक ने कहा, **``इस संसार में कौन किसका है ? इस देह के संबंध तो इस जीवन पर्यंत के हैं । मेरा आत्मा शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए उत्सुक है, इस जीवन में ही मोक्ष के उपायभूत ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना-साधना हो सकती है । जिसे सच्चे आत्महित की चाह है, उसे संसार के क्षणिक सुखों का त्याग कर देना चाहिए ।''**

भाई की बात बहिन के गले उतर गई...और वह भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई ।

एक शुभ दिन कालक और सरस्वती ने मोह के बंधनों का परित्याग कर चारित्र धर्म स्वीकार कर लिया ।

कालक मुनि बने और सरस्वती साध्वी बनी । दीक्षा अंगीकार करने के बाद कालक मुनि रत्नत्रयी की आराधना-साधना में एकदम ओतप्रोत बन गए ।

तीव्र क्षयोपशम और सतत पुरुषार्थ के फलस्वरूप कालक मुनि अल्पकाल में ही श्रुतज्ञान के पारगामी बन गए । उनकी विशिष्ट योग्यता जानकर पूज्य गुरुदेव ने उन्हें जैन शासन का महान् आचार्यपद प्रदान किया । तब से वे कालकसूरिजी के नाम से प्रख्यात हुए ।

2. साध्वीजी की शीलरक्षा

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

एक शुभ दिन ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए कालकाचार्य अपने

विशाल परिवार के साथ उज्जयिनी नगरी में पधारे । उस समय उनकी बहिन साध्वी सरस्वती भी अपनी गुरुणी के साथ उज्जयिनी में ही थी ।

उस समय अवंतिदेश में **गर्दभिल्ल** राजा का शासन था, जो अत्यंत ही कामुक था । सरस्वती साध्वी के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर गर्दभिल्ल राजा एकदम मोहित हो गया । उसने अपने सैनिकों के द्वारा सरस्वती साध्वी का अपहरण करा दिया और उसे अपने अंत:पुर में भिजवा दी ।

ज्योंही कालकाचार्य को इस बात का पता चला त्योंही एक बहिन के नाते नहीं, किंतु जैन शासन के एक स्तंभ समान साध्वीजी के शील के रक्षण के लिए वे राजदरबार में पहुँच गए ।

गर्दभिल्ल राजा को समझाते हुए उन्होंने कहा, ``यदि राजा ही भक्षक हो जाय तो प्रजा का क्या हाल होगा ? आप सरस्वती साध्वी को मुक्त कर दें ।''

आचार्य भगवंत ने अनेक युक्ति-प्रयुक्तियों के द्वारा राजा को समझाने की कोशिश की परंतु कामांध बने राजा पर आचार्य भगवंत के शब्दों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा ।

आचार्य भगवंत ने महाजन, धर्मीजन तथा मंत्री आदि राज्य के अधिकारियों को भी समझाने की कोशिश की परंतु कामांध राजा के आगे किसी की न चली ।

आचार्य भगवंत ने सोचा, **``शक्ति होते हुए अन्याय को सहन करना तो कायरता ही है ।''**

उन्होंने प्रतिज्ञा ली, **``यदि मैं धर्मभ्रष्ट राजा को पदभ्रष्ट न करूँ तो संघ के प्रत्यनीक, शासनघातक और संयमविनाशक की जो गति हो, वह मेरी गति हो ।''**

गर्दभिल्ल राजा के सैन्यबल तथा विद्याशक्ति से पू. आचार्य भगवंत अच्छी तरह से परिचित थे । कुछ दिनों तक तो शून्यमनस्क की तरह नगर में इधर-उधर घूमने लगे, तत्पश्चात् वेष परिवर्तन कर कालकाचार्य ने उज्जयिनी नगरी छोड़ दी ।

आसपास के राजाओं पर उन्होंने अपनी नजर डाली, किंतु किसी में इतना मनोबल और दृढ़निश्चय नहीं था, जो गर्दभिल्ल को चुनौती दे सके । आखिर वे वहाँ से आगे बढ़ते हुए सिंधु नदी के तट को पार कर हिन्द के बाहर ईरान पहुँचे । अपनी विद्या के बल से उन्होंने शक राजा के छोटे छोटे शाही सामंतों के साथ मैत्री का संबंध स्थापित किया ।

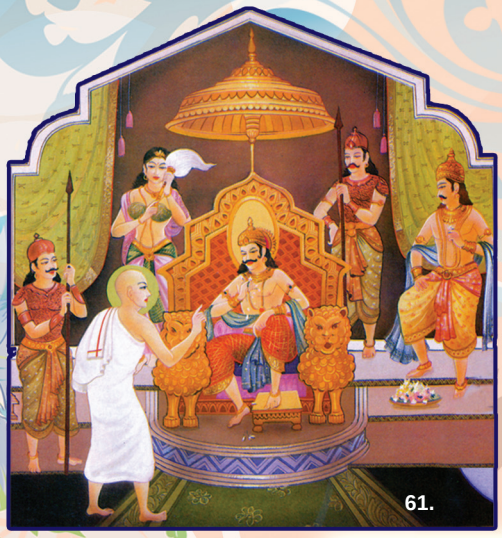

(61) कालकाचार्य प्रथम-
पृष्ठ नं.184

(62) युग प्रधान श्री कालकाचार्यजी-
द्वितीय-पृष्ठ नं.186
(63) श्री कालकाचार्य संवत्सरी तिथि
तृतीय-पृष्ठ नं.190

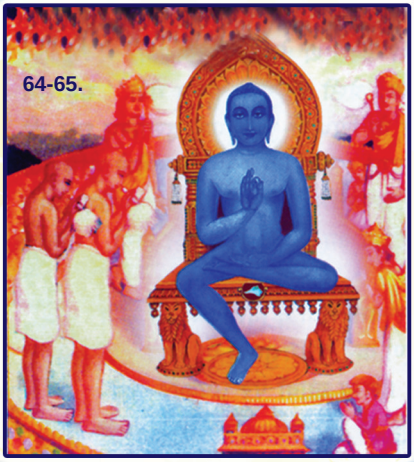

(64-65.) शांब और प्रद्युम्न-पृष्ठ नं.196

एक बार 96 शक सामंत, राज्य भय से घबरा गए । कालकाचार्य को ज्योंही इस बात का पता चला, वे वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने सभी शक सामंतों को आश्वासन देते हुए कहा ``तुम्हें यदि बचना है तो हिंदुस्तान चलो, मैं तुम्हें उज्जैन का राज्य दिला दूंगा ।''

कालकाचार्य की यह बात सुनकर वे सभी सामंत राजा तैयार हो गए । सभी सामंतराजा कालकाचार्य के साथ अपने-अपने काफिले को लेकर आगे बढ़ने लगे । सिंधु नदी को पार कर वे सौराष्ट्र के किनारे आए । वर्षाऋतु आ जाने से उन्हें वहाँ कुछ समय के लिए रुकना पड़ा । तत्पश्चात् वहाँ से आगे बढ़कर लाट देश की राजधानी भरोंच पहुँचे । वहाँ के शासक बलमित्र, भानुमित्र को साथ लेकर मालवदेश के सीमा तट पर आ गए ।

गर्दभिल्ल राजा को अपनी गर्दभी विद्या का अत्यधिक अभिमान था । गर्दभी विद्या की साधना करने पर वह विद्या गर्दभी के रूप में आती और किले पर खड़ी रहकर जोर से आवाज करती, जिसके फलस्वरूप 5 मील के भीतर रहे सभी लोग मर जाते । इस विद्या के अभिमान के कारण गर्दभिल्ल ने अपनी ओर से कुछ भी तैयारी नहीं की थी ।

इधर कालकाचार्य ने 108 लक्ष्यवेधी शरसंधानकों को योग्य स्थान पर नियुक्त कर दिया । उस गर्दभी विद्या ने जैसे ही अपना मुँह खोला, उन 108 शरसंधानकों ने एक साथ 108 बाण छोड़कर उसके मुँह को भर दिया परिणाम स्वरूप वह कुछ भी शब्दोच्चार नहीं कर सकी । आखिर रुष्ट होकर उस गर्दभी ने गर्दभिल्ल राजा पर मल-मूत्र किया और गुस्से में आकर पैरों से प्रहार कर अदृश्य हो गई । उसके बाद उन शक राजाओं ने गर्दभिल्ल की सेना पर हमला किया । लीला मात्र से ही उन शक राजाओं ने गर्दभिल्ल को परास्त कर दिया और उसे पकड़कर कैद कर लिया । गर्दभिल्ल को आचार्य भगवंत के सामने प्रस्तुत किया गया ।

गर्दभिल्ल का मुँह शर्म के मारे नीचे झुक गया था । उसे पू. आचार्य भगवंत ने कहा, ``सती साध्वी पर अत्याचार करने का यह तो नाम मात्र का फल है, इसका पूरा फल तो नरक गति में मिलेगा ।''

वे शक लोग गर्दभिल्ल को मार डालना चाहते थे, परंतु कालकाचार्य ने दया कर उसे बंधनमुक्त किया । गर्दभिल्ल जंगल में गया और वहाँ केसरी सिंह ने उसे मार डाला, वह मरकर नरक में चला गया ।

सरस्वती साध्वी को बंधनमुक्त किया गया । अतिचार दोष की आलोचना कर पुनः साध्वी संघ में उनका प्रवेश कराया गया । आचार्य भगवंत ने भी वेष परिवर्तन कर पुनः जैनाचार्य के रूप में श्रीसंघ का नेतृत्व सँभाला । ❑

63. कालकाचार्य (तृतीय)

अपने चरण-कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए कालकाचार्य अपने विशाल परिवार के साथ भृगुकच्छ (भरोंच) पधारे । उस समय भरोंच में पू. आचार्य भगवंत के भाणेज बलमित्र और भानुमित्र राज्य करते थे । ज्योंही उन्हें पूज्य आचार्य भगवंत के आगमन के समाचार मिले, उन्होंने खूब धूमधाम के साथ पूज्य आचार्य भगवंत का नगर-प्रवेश कराया ।

प्रतिदिन आचार्य भगवंत मेघ के समान गंभीर स्वर से धर्मदेशना देने लगे । पूज्य आचार्यदेवश्री के वचनामृत का पानकर श्रोतागण परमतृप्ति का अनुभव करते । राजा के अति आग्रह से पूज्य आचार्यदेवश्री ने अपने विशाल परिवार के साथ भरोंच में ही चातुर्मास किया ।

पूज्य आचार्य भगवंत के प्रति राजा के दिल में बढ़ती हुई श्रद्धा व आस्था को देखकर राजपुरोहित का मन ईर्ष्या से जलने लगा । ऐसे भी निकट भूतकाल में ही कालकाचार्य ने उस पुरोहित को वाद में पराजित किया था । इस कारण उसके दिल में पूज्य आचार्य भगवंत के प्रति वैर की गाँठ बँध चुकी थी, वह ऐसे अवसर की ताक में था ताकि अपने वैर का बदला ले सके ।

कुछ दिन व्यतीत होने के बाद अवसर देखकर राजा के कान फूंकते हुए पुरोहित ने कहा ``राजन् ! इस धरती पर कालकाचार्य से बढ़कर पवित्र पुरुष और कौन हो सकता है ? कैसा निर्मल उनका संयम है ।''

राजा ने कहा, ``बिल्कुल ठीक बात है, इस धरती पर ऐसे पवित्र पुरुषों का अस्तित्व यदा कदा ही देखने को मिलता है ।''

``राजन् ! ऐसे महापुरुष के चरणकमल जिस धरती पर हों, वह धरती भी कितनी पवित्र कहलाती है । मुझे तो यही एक चिंता सता रही है कि नगर की समस्त भूमि उनके चरण-कमलों से पवित्र बन चुकी है तो फिर उस धरती पर हम पैर रखेंगे तो क्या हम पाप के भागीदार नहीं होंगे ?''

राजपुरोहित की यह बात सुनकर सरलहृदय राजा असमंजस में पड़ गया । वह सोचने लगा, ``अहो ! यह तो बड़ी विकट समस्या आ खड़ी हुई है । शास्त्रों में तो लिखा है **``अपनी शक्ति हो तो गुरु की भक्ति करनी चाहिए, किंतु आशातना तो कभी नहीं ! ओहो ! क्या मुझसे घोर आशातना हो रही है ?''**

``पुरोहितजी ! क्या उस आशातना के पाप से बचने का कोई उपाय है ?''

``हाँ ! राजन् ! एक उपाय है ।''

``कौनसा उपाय ? जल्दी बताओ ।''

``राजन् ! आचार्य भगवंत नगर छोड़कर विहार कर जायें तो आप और प्रजाजन गुरु की घोर आशातना के पाप से बच सकते हैं, अन्यथा नहीं ।''

``पुरोहितजी ! जिन आचार्य भगवंत को इतने गौरव के साथ नगर में प्रवेश कराया उन्हें हम यहाँ से चले जाने के लिए कैसे कह सकते हैं ?''

``राजन् ! इसके लिए एक सुंदर उपाय है ।''

``कौन सा ?''

``जैन साधु स्वयं के लिए बनाई गई भिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं, उस भिक्षा को वे आधाकर्मी दोष से दूषित कहते हैं, आपकी आज्ञा हो तो समस्त नगरवासियों को सूचना दी जाय कि साधुओं की भक्ति के लिए मिष्टान्न आदि बनाया जाय ।''

बस ! पुरोहित की यह बात राजा के दिमाग में बैठ गई और उसने वैसा ही करने के लिए आदेश दे दिया ।

दूसरे दिन जब साधु भगवंत भिक्षा के लिए निकले तो उन्हें कहीं से भी निर्दोष भिक्षा प्राप्त नहीं हुई । घर-घर में सदोष भिक्षा थी ।

आखिर निर्दोष भिक्षा की दुर्लभता को देखकर आचार्य भगवंत ने वहाँ से विहार करने का निश्चय किया । राजा ने भी अपनी मूक सहमति प्रदान कर दी ।

और एक दिन पूज्य आचार्य भगवंत ने अपने विशाल परिवार के साथ प्रतिष्ठानपुर नगर की ओर विहार प्रारंभ कर दिया ।

प्रतिष्ठानपुर में सातवाहन राजा राज्य करता था, ज्योंही उसे आचार्य भगवंत के आगमन के समाचार मिले, उसके आनंद का पार न रहा । उसने अत्यंत ही आदर सम्मान के साथ पूज्य आचार्य भगवंत का नगरप्रवेश कराया ।

नगरप्रवेश के दिन से ही पूज्य आचार्य भगवंत की प्रवचन गंगा का प्रवाह तीव्र गति से बहने लगा । श्रोतागण भी पूज्य आचार्यश्री की पवित्र वाणी में स्नान कर अपनी पतित आत्मा को पावन करने लगे ।

दिन पर दिन बीतने लगे ।

एक दिन आचार्य भगवंत ने निकट भविष्य में आ रहे पर्वाधिराज महापर्व की महत्ता समझाई ।

आचार्य भगवंत ने कहा ``पर्युषण यह जैनों का महापर्व है, इस पर्व की आराधना कर सभी जीवों को आत्मशुद्धि करनी चाहिए ।''

राजा ने पूछा, ``इस पर्व का प्रारंभ कब से होगा ?''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``भादरवा वदी 13 से इस पर्व का प्रारंभ होता है और भादरवा सुदी 5 के दिन इस पर्व की समाप्ति होती है । इन आठ दिनों में अंतिम दिन का अत्यधिक महत्त्व है ।''

राजा ने सोचा, **``भादरवा सुदी पंचमी के दिन तो इस देश में इन्द्रध्वज का महोत्सव होता है और उस महोत्सव प्रसंग पर मुझे अवश्य उपस्थित रहना पड़ता है ।''**

इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा ``गुरुदेव ! क्या इस संवत्सरी के महापर्व में कुछ परिवर्तन नहीं हो सकता है ? क्योंकि भादरवा सुदी 5 के दिन तो नगर में इन्द्र महोत्सव होता है और वहाँ मुझे उपस्थित होना अनिवार्य है ।''

राजा की इस प्रार्थना को सुनकर आचार्य भगवंत कुछ देर तक मौन रहे, फिर सोचकर बोले, **``राजन् ! छठ के दिन तो संवत्सरी की आराधना नहीं हो सकती है । अभी चातुर्मास के प्रारंभ का दिन आषाढ़ सुदी पूनम है, पूनम से पचासवें दिन संवत्सरी महा पर्व की आराधना करनी चाहिए, ऐसी शास्त्र आज्ञा है । उस आज्ञा का उल्लंघन करने वाला आराधक नहीं, किंतु विराधक कहलाता है ।**

``परंतु हाँ ! किसी संयोग में पंचमी की छठ नहीं कर सकते हैं किंतु पंचमी की चतुर्थी अवश्य कर सकते हैं ।''

``तो भगवंत ! आपकी महती कृपा होगी आप संवत्सरी महापर्व एक दिन पहले करने की आज्ञा फरमाइए ।''

पूज्य आचार्यदेवश्री ने लाभालाभ देखकर उस वर्ष संवत्सरी की आराधना भादरवा सुदी 4 के दिन की । तत्कालीन समस्त संघ ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की ।

1100 वर्ष बीतने के बाद भी आज संवत्सरी महापर्व की आराधना भादरवा सुदी 4 के दिन हो रही है । यह पूज्य आचार्यदेव श्री की अप्रतिम प्रतिभा का ही प्रभाव है ।

शिष्य को बोध

विषमकाल के प्रभाव से कालकाचार्य के शिष्य अविनीत हो गए । उन्होंने उन शिष्यों को सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए...परंतु वे सब प्रयत्न निष्फल गए । कालकाचार्य वृद्ध हो चुके थे । एक दिन उन शिष्यों को शिक्षा करने के ध्येय से शय्यातर को कहा, **``मेरे शिष्य अविनीत और प्रमादी हो गए हैं, अतः उनका परित्याग कर अपने प्रशिष्य ``सागर'' के पास सुवर्ण भूमि की ओर जा रहा हूँ...मैं उन्हें कहे बिना ही जाने वाला हूँ, क्योंकि उच्छृंखल शिष्यों के साथ रहना तो कर्मबंध का हेतु है, मेरे चले जाने के बाद यदि उन्हें अपनी भूल समझ में आ जाए...और वे अत्यंत ही आग्रह करें तो बताना कि पूज्य आचार्य भगवंत सुवर्णभूमि गए हैं, अन्यथा नहीं ।''**

दूसरे दिन जब वे सभी शिष्य निद्राधीन थे, तभी कालकाचार्य ने किसी को भी कहे बिना वहाँ से विहार कर दिया ।

वे क्रमशः विहार करते हुए सुवर्णभूमि पधारे, जहाँ साधुओं की बस्ती में सागराचार्य अपने शिष्यों को वाचना दे रहे थे ।

सागराचार्य, कालकाचार्य के प्रशिष्य थे, किंतु अभी तक उनकी मुलाकात नहीं हो पाई थी, अतः सागराचार्य अपने प्रगुरुदेव को पहिचान नहीं पाए...एक सामान्य साधु समझकर कालकाचार्य को उन्होंने बस्ती प्रदान कर दी...परंतु अभ्युत्थान आदि किसी प्रकार का विनय नहीं किया ।

धीर गंभीर कालकाचार्य ने भी अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया ।

सागराचार्य ने कहा, ``कहाँ से आ रहे हो ?''

कालकाचार्य ने कहा, ``अवंति से ?''

तत्पश्चात सागराचार्य अपने शिष्यों को वाचना देने लगे, वाचना के बाद बुद्धिमद से सागराचार्य ने वृद्ध मुनि (कालकाचार्य) को कहा, ``क्या कुछ समझ में आ रहा है ।''

``हाँ !''

``तो आगे जो श्रुतस्कंध पढ़ाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनना ।''

कालकाचार्य मौन रहे ।

इधर प्रातःकाल होने पर कालकाचार्य के शिष्यों ने जब अपने गुरुदेव को नहीं देखा तो उन्हें अत्यंत ही पश्चाताप हुआ । उन्होंने शय्यातर को पूछा, ``क्या आपने हमारे गुरुदेव को देखा है ?''

शय्यातर ने कहा, ``तुम्हारे आचार्य ने तुम्हें कुछ नहीं कहा तो मुझे कैसे कहेंगे ?''

अपने गुरुदेव की शोध के लिए शिष्यों ने चारों ओर छानबीन की, कहीं नहीं मिलने पर जब शय्यातर को पुनः पूछा तो शय्यातर ने कहा, **``तुम्हारे जैसे अविनीत शिष्यों को अनुयोग ग्रहण करने में प्रमादी जानकर, वे अपने प्रशिष्य सागराचार्य के पास सुवर्ण भूमि चले गए हैं ।''**

सभी शिष्यों को अपनी भूल का तीव्र पश्चाताप हुआ । पुनः ऐसी भूल न हो, इस भावना से उन सभी शिष्यों ने सुवर्णभूमि की ओर अपना विहार चालू कर दिया ।

बीच मार्ग में जब लोग पूछते कि ``कौन से आचार्य भगवंत जा रहे हैं ?''

तो शिष्य जवाब देते ``कालकाचार्य ।''

कर्णोपकर्ण अपने विशाल परिवार के साथ कालकाचार्य के आगमन की बात सुवर्णभूमि में पहुँची । अपने प्रगुरुदेव के आगमन के समाचार से प्रसन्न हुए सागराचार्य भी नगर में से बाहर आए ।

कालकाचार्य के शिष्यों ने सागराचार्य और उनके शिष्यों को देखा । परस्पर मिलन हुआ ।

उसके बाद कालकाचार्य के शिष्यों ने सागराचार्य को पूछा, ``क्या अपने गुरुदेव कालकाचार्य यहाँ पधारे हैं ?''

सागराचार्य ने कहा, ``नहीं ! अपने गुरुदेव को तो मैंने नहीं देखा है। हाँ ! अवंति से एक वृद्ध महात्मा जरूर पधारे हैं।''

``कहाँ हैं वे महात्मा ?''

सागराचार्य ने अपनी बस्ती में रहे वृद्ध महात्मा की ओर इशारा किया।

कालकाचार्य के सभी शिष्य अपने गुरुदेव को तत्काल पहिचान गए। उन्होंने अपने गुरुदेव के चरणों में वंदन किया और अपने घोर अपराध की क्षमा याचना की।

सागराचार्य को जब इस बात का पता चला कि अहो ! ये वृद्ध महात्मा तो मेरे प्रगुरुदेव कालकाचार्य हैं, तो उन्हें अपनी भूल पर अत्यंत पश्चाताप हुआ। उन्होंने भी अपने अपराध की माफी मांगी।

उसके बाद विनम्र स्वर से सागराचार्य ने प्रगुरुदेव को पूछा, ``मैं अनुयोग की व्याख्या बराबर कर रहा था ?'' गुरुदेव ने कहा ``व्याख्या बराबर थी किंतु उसका गर्व मत करना।''

सागराचार्य को प्रतिबोध देते हुए गुरुदेव ने कहा, **``मुट्ठी भर धूल को एक स्थान से दूसरे और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर रखने से वह धूल कम होती जाती है, बस, इसी प्रकार तीर्थंकरों से प्रतिपादित ज्ञान गणधर...आचार्य आदि के माध्यम से अपने पास तक जो पहुँचा है, वह अल्प अल्पतर ही होता गया है।''** सागराचार्य ने अपनी भूल स्वीकार की।

वीर निर्वाण संवत् 465 (लगभग) में कालकाचार्य का स्वर्गवास हुआ था।

64-65.
शांब और प्रद्युम्न

❑ गिरिराज की धन्य धरा पर
कृष्ण-पुत्र शांब और प्रद्युम्न ने
साढ़े आठ करोड़ मुनियों के साथ
एक मास का अनशन कर
फाल्गुण शुक्ला त्रयोदशी के दिन
अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया था ।
उन महर्षि की याद में
आज भी उस पवित्र दिन में
गिरिराज की स्पर्शना की जाती है ।

❑ पूर्व भव में बँधे हुए
अशुभ कर्म के उदय के कारण
प्रद्युम्नकुमार को
जन्म के साथ ही
16 वर्षों तक मातृ-वियोग
सहन करना पड़ा था ।

❑ अनेक अनेक उतार-चढ़ावों के बीच भी
अपना महासत्त्व दिखलाकर
शाश्वत मोक्ष पद पानेवाले
शांब और प्रद्युम्न मुनीश्वरों के
पावन चरणों में
कोटि-कोटि वंदना ।

64-65. शांब और प्रद्युम्न

स्वस्थानेऽपि सद्भावात् शाम्बः श्री कृष्णनन्दनः ।
श्री नेमिवन्दनात् प्राप, फलं मुक्तिसुखप्रदम् ।।

शांबकुमार-प्रद्युम्नकुमार

जंबुद्वीप ! भरत क्षेत्र !

द्वारिकानगरी के अधिपति श्रीकृष्ण महाराजा ।

श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों में मुख्य पटरानी सत्यभामा थी ।

एक बार देश-विदेश में घूमते हुए नारदजी श्रीकृष्ण महाराजा के दरबार में उपस्थित हुए । नारदजी ब्रह्मचारी होते हैं । ब्रह्मचर्य गुण के कारण ही वे मोक्ष में जाते हैं ।

नारदजी के आगमन के साथ ही श्रीकृष्ण महाराजा ने हाथ जोड़कर उनका स्वागत किया, तत्पश्चात् उन्हें बैठने के लिए योग्य आसन प्रदान किया ।

श्रीकृष्ण ने उनकी क्षेम कुशलता पूछी ।

औपचारिक बातचीत के बाद नारदजी ने कहा, ``मैं आपके अंतःपुर में जाना चाहता हूँ, ताकि आपकी रानियों के गुण-दोष की परीक्षा कर सकूँ ।''

श्रीकृष्ण ने सहर्ष सहमति प्रदान की ।

कृष्ण की सहमति मिलते ही नारदजी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया ।

अंतःपुर में सत्यभामा अपने देह का शणगार कर रही थी । सुगंधित जल से स्नान के बाद सत्यभामा ने मूल्यवान वस्त्र धारण किए । मस्तक पर तिलक किया । आँखों में काजल लगाया । दोनों कानों में कुंडल धारण किए । हाथों में कंकण और गले में मोतियों का हार पहिना ।

उसी समय सत्यभामा ने शरीर पर भभूती लगाए हुए...जटाधारी तथा वल्कल के वस्त्र पहिने हुए नारदजी को देखा ।

जटाधारी नारदजी को देखते ही सत्यभामा एकदम घबरा गई । ``अरे ! यह भयंकर आकृति वाला यहाँ कौन आ गया ?'' मेरे रूप की तुलना करने में असमर्थ चंद्र भी रात को उगता है तो यह मेरे शृंगार के प्रसंग में रंग में भंग करनेवाला भीषण आकृतिवाला कौन आ गया ?'' इस प्रकार कहकर सत्यभामा ने नारदजी का घोर अपमान किया ।

सत्यभामा के अपमान से नारदजी एकदम आकुल-व्याकुल हो गए । उनके भीतर क्रोध की आग भड़क उठी । वे किन्हीं भी संयोगों में सत्यभामा को आपत्ति में डालने के लिए तैयार हो गए । उन्होंने तत्क्षण अपने मन में वैर की गांठ बांध ली ।

नारदजी सोचने लगे, ``अहो ! आज तक मैं कहीं भी गया हूँ, किसी ने मेरा अपमान नहीं किया । परंतु जवानी, सौंदर्य व सत्ता के अभिमान में आकर इसने मेरा इतना भारी अपमान कर दिया ।''

`मैं जिन पर संतुष्ट होता हूँ, उनके आंगन में कल्पवृक्ष खड़ा कर देता हूँ और मैं जिन पर नाराज होता हूँ, उन पर भयंकर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है ।' मेरी इस ख्याति को कहीं आँच न आ जाय, इसके लिए भी मुझे इस सत्यभामा को आपत्ति के गर्त में डालना जरूरी है ।'' इस प्रकार विचार कर वे सत्यभामा को आपत्ति में डालने का उपाय सोचने लगे ।''

``क्या इसके रूप का लकड़ी के पट्टे पर आलेखन कराकर किसी विद्याधर को बता दूँ, ताकि वह इसका अपहरण कर ले ?''

फिर सोचा, ``इस प्रकार करने से तो महासती के शील खंडन का प्रसंग आ सकता है ।'' अंत में सोचा, ``क्यों न इससे भी अधिक रूपवती कन्या का विवाह श्रीकृष्ण से करवा दूँ । स्त्री के लिए शौक्य स्त्री का उत्कर्ष सहन करना, असह्य होता है ।''

इस प्रकार निर्णय कर नारदजी किसी रूपवती स्त्री की शोध के लिए निकल पड़े । वैताढ्य पर्वत के सभी नगरों में रही राजकन्याओं को देख लिया परंतु सत्यभामा से बढ़कर रूपवती एक भी कन्या नजर में नहीं आई ।

रूपवती सुन्दरी की शोध में घूमते हुए नारदजी कुंडनपुर नगर पहुँच गए ।

कुंडनपुर में भीष्म राजा और श्रीमती रानी के रुक्मि नाम का एक पुत्र और रुक्मिणी नाम की एक पुत्री थी ।

नारदजी के आगमन के साथ ही उनका आदर बहुमान पूर्वक स्वागत किया गया और उन्हें योग्य आसन प्रदान किया ।

राजा ने नारदजी की क्षेमकुशलता संबंधी पृच्छा की । अचानक नारदजी ने राजपुत्र को देखा । उसके अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर नारदजी ने पूछा, ``यह कौन है ?''

राजा ने कहा, ``यह मेरा पुत्र है ।''

नारदजी ने राजपुत्र को शुभाशिष दी और उसके बाद पूछा, ``और भी संतान है क्या ?''

राजा ने कहा, ``एक कन्या है, जिसका नाम रुक्मिणी है ।

नारदजी ने पूछा, ``क्या उसका लग्न हो गया है ?''

राजा ने कहा, ``लग्न तो नहीं हुआ है, किंतु शिशुपाल को वाग्‌दान हो चुका है ।''

नारदजी ने रुक्मिणी को देखने की इच्छा व्यक्त की । तत्काल राजा ने अपनी सहमति प्रदान कर दी ।

नारदजी ने अंतःपुर में प्रवेश किया । उस अंतःपुर में राजा की बालविधवा बहिन पंडिता भी रहती थी । पंडिता ने नारदजी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया । तत्पश्चात् अन्य कन्याओं ने भी नारदजी को नमस्कार किया । जब रुक्मिणी ने नारदजी को नमस्कार किया, तब नारदजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, **``चौंसठ कलाओं में निपुण तू श्रीकृष्ण महाराजा की मुख्य पटरानी बन ।''**

श्रीकृष्ण के नाम को सुनकर रुक्मिणी एकदम चौंक उठी । उसने पंडिता की ओर नजरकर पूछा, ``नारदजी ने जो वचन दिया है वह स्नेह से कहा है या हास्य से ?''

उसी समय पंडिता ने कहा, ``मैं तो श्रीकृष्ण से सर्वथा अपरिचित हूँ, वे कौन हैं ?''

नारदजी ने श्रीकृष्ण का परिचय देते हुए कहा, **``वे देवताओं से स्तुत्य वासुदेव और देवकी माता के पुत्र हैं । नेमिनाथ प्रभु के वे चचेरे भाई हैं । पुरुषों की 72 कलाओं में निपुण हैं । बाल्यकाल में ही जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था । यमुना के गहरे जल में कालिए नाग को मार डाला था । दुष्ट कंस**

को जिन्होंने परलोक पहुँचा दिया था । ऐसे श्रीकृष्ण अनेक गुणों से युक्त हैं । इस जीभ से मैं उनके कितने गुणों का वर्णन करूँ ?''

नारदजी के मुख से श्रीकृष्ण के अद्‌भुत गुणों का वर्णन सुनकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण से विवाह करने के लिए उत्कंठित बन गई ।

रुक्मिणी ने पंडिता को पुनः पूछा, ``मुझे तो शिशुपाल को दे दी है, फिर मुनि का वचन कैसे सत्य होगा ?''

पंडिता ने कहा, **''नारदजी का वचन मिथ्या नहीं होता है ।''** वास्तव में तेरे माता-पिता ने शिशुपाल को नहीं दी है, परंतु तेरे भाई रुक्मि ने तुझे शिशुपाल को देने का वचन दिया है ।

रुक्मिणी ने कहा, ``मेरे भाई ने मेरा वाग्‌दान कैसे किया ?''

पंडिता ने कहा, ``एक बार शिशुपाल दुश्मन राजा से लड़ने के लिए गया, उस समय उसने दूत द्वारा तुम्हारे पिता को समाचार कहलाए, ``आप मेरे मित्र हो, मित्र की सहायता करने का अवसर आया है । आप सैन्य सहित मेरी मदद के लिए आ जाना ।''

समाचार मिलते ही तेरे पिता युद्ध में जाने के लिए तैयार हो गए । युद्ध में जाने के पूर्व उन्होंने रुक्मि के राज्याभिषेक का निर्णय किया ।

रुक्मि को जैसे ही इस बात का पता चला, उसने राज्य लेने से इन्कार कर दिया और कहा, ``पिताजी ! आपको युद्ध में जाने की आवश्यकता नहीं है । युद्ध में मैं जाऊंगा और उस युद्ध में विजयश्री प्राप्त करके ही आऊंगा ।''

आखिर पिता ने रुक्मि के आग्रह को देख, युद्ध में जाने की स्वीकृति दे दी ।

रुक्मि अपनी विशाल सेना को साथ में लेकर शिशुपाल के साथ हो गया ।

शिशुपाल दुश्मन राजा की सीमा पर जा पहुँचा । दुश्मन राजा भी अपने विशाल सैन्य के साथ लड़ने के लिए तैयार हो गया ।

युद्धभूमि में दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गईं । समय आने पर युद्ध की भेरियाँ बज उठीं । तलवारें टकराने लगीं । कई सैनिकों के मस्तक भूमि पर गिरने लगे । देखते-ही-देखते युद्धभूमि रक्त-रंजित हो गई ।

दुश्मन राजा के सैन्य के अद्‌भुत पराक्रम के कारण शिशुपाल की सेना पीछे हटने लगी...उस समय रुक्मि राजकुमार ने अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया । अपने पराक्रम द्वारा उसने दुश्मन राजा को हरा दिया ।

रुक्मि के अद्‌भुत पराक्रम को देख शिशुपाल खुश हो गया ।

शिशुपाल और रुक्मि के बीच गाढ़ दोस्ती हो गई । शिशुपाल से अलग होने के पूर्व रुक्मि ने अपनी बहिन रुक्मिणी शिशुपाल को देने का वाग्‌दान दे दिया । खुश होकर शिशुपाल ने हाथी, घोड़े आदि देकर रुक्मि का स्वागत किया । कुंडनपुर जाकर जब रुक्मि ने सारी बात की, तब उसके कुटुंबीजन भी खुश हो गए ।

इतनी बात कहकर महापंडिता ने रूक्मिणी को कहा, **``नारद का बोला वचन सत्य होगा और इसके लिए मैं अपना पूरा प्रयास करूंगी ।''**

सत्यभामा को दु:खी करने के लिए नारदजी ने जो षड्‌यंत्र रचा था, उसका एक भाग पूरा हुआ । रुक्मिणी के मन में श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षण पैदा करने के बाद अब नारदजी ने श्रीकृष्ण के मन में रुक्मिणी का आकर्षण पैदा करने की योजना बनाई ।

कैलाशपर्वत पर जाकर नारदजी ने अपनी विशिष्ट चित्रकला द्वारा काष्ठफलक पर रुक्मिणी का चित्र बनाया । वह चित्र अत्यंत ही आकर्षक बना था ।

नारदजी उस चित्र को लेकर आकाशमार्ग से उड़ते हुए द्वारिका नगरी में आए । उसके बाद वे श्रीकृष्ण के दरबार में गए । श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़कर नारदजी को प्रणाम किया और उनकी क्षेम-कुशलता की पृच्छा की ।

उसके बाद श्रीकृष्ण ने पूछा, ``क्या आप मेरे लिए कोई आश्चर्यकारी वस्तु लेकर आए हो ?''

उस समय नारदजी ने फलक पर चित्रित रुक्मिणी का चित्र श्रीकृष्ण को बताया ।

चित्र को देखते ही श्रीकृष्ण की आँखें वहीं स्थिर हो गईं ।

श्रीकृष्ण ने पूछा, ``यह काल्पनिक चित्र है या वास्तविक किसी कन्या का चित्र है ?''

नारद ने कहा, ``यह वास्तविक चित्र है । मैंने अपनी चित्रकला से

उस रूपवती कन्या के सौंदर्य को चित्र में आलेखित करने का प्रयास किया है, परंतु मुझे पूर्ण सफलता नहीं मिली । उस कन्या के अद्‌भुत रूप व लावण्य को पूर्ण रूप से चित्रित करना मेरे वश की बात नहीं है ।''

श्रीकृष्ण ने कहा, ``आप तो सिर्फ मृत्युलोक में ही घूमते हो, क्या ऐसा अद्‌भुत रूप मृत्युलोक में संभव है ?''

नारदजी ने कहा, ``ऐसा रूप मृत्युलोक में ही है, यह कोई पाताल-कन्या या देवकन्या नहीं है ।''

कृष्ण ने कहा, ``यदि यह मानव-कन्या है तो इसकी प्राप्ति के अभाव में मैं अपना जीवन अधूरा समझूंगा । यह कन्या कौन है ?''

नारदजी ने कन्या का स्पष्ट परिचय देते हुए कहा, ``यह तो कुंडिनपुर के राजा भीष्म की पुत्री रुक्मिणी है । मैं वैताढ्य पर्वत के हजारों नगरों को देखकर आया हूँ, परंतु इस रुक्मिणी जैसा अद्‌भुत रूप कहीं भी नहीं देखा है ।''

श्रीकृष्ण ने आतुरता से पूछा, ``यह कन्या परिणीता है या अपरिणीता ?''

नारदजी ने कहा, ``यह अपरिणीता है, परंतु इसके भाई रुक्मि ने शिशुपाल को उस कन्या का वाग्‌दान किया है । अब तो आप अपने पराक्रम के बल पर ही इस कन्या को प्राप्त कर सकते हैं ।''

इधर शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के लग्न का दिन तय हो गया । लग्न की बात जानकर रुक्मिणी अत्यंत ही चिंतातुर हो गई । उसने महा पंडिता को कहा, ``मुझे या तो श्रीकृष्ण ग्रहण कर सकेंगे या अग्निदेवता ही ।''

रुक्मिणी की यह बात सुनकर महापंडिता ने उपाय बताते हुए कहा, ``तू कृष्ण के नाम पर एक पत्र लिख दे । वह पत्र मैं दूत द्वारा द्वारिका पहुँचा देती हूँ ।''

महापंडिता की बात सुनकर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के नाम एक पत्र लिखा ।

``नलिनी दूर रहते हुए भी सूर्य का कर (किरण) चाहती है और मैं कुंडिनपुर रहते हुए भी आपका कर (हाथ) चाहती हूँ ।''

इस पत्र को लेकर एक दूत श्रीकृष्ण के पास द्वारिका पहुँच गया ।

श्रीकृष्ण ने वह पत्र पढ़ा । उसके बाद दूत ने कहा, ``महा सुदी अष्टमी के दिन रुक्मिणी और शिशुपाल के लग्न निश्चित हुए हैं ।''

कृष्ण ने कहा, ``हम कुंडनपुर आएँ, परंतु रुक्मिणी हमें कैसे मिलेगी ?'' दूत ने कहा, ``कुंडनपुर नगर के पास एक प्रमद वन है । वहाँ अशोक वृक्ष पर एक ध्वजा फरक रही होगी, वह ध्वजा देखकर आपको आ जाने का है । आपके लिए उसने पहले से ही उस वृक्ष के नीचे कामदेव की मूर्ति स्थापित की होगी । कामदेव की पूजा के बहाने वह अपने भाई आदि को कहकर वहाँ आ जाएगी और वहाँ आपका मिलन हो सकेगा, संयोगवश आप वहाँ नहीं आओगे तो वह वहाँ गले में फाँसा डालकर मर जाएगी । आप आपके आगमन का कोई चिह्न दे दो ।''

श्रीकृष्ण ने स्वर्णपत्र और अपने हाथ की अंगूठी प्रदान कर उसे विदाई दी ।

दूत के जाने के बाद श्रीकृष्ण ने कुंडनपुर जाने का उपाय सोचा । आखिर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों रात्रि में रथ में आरूढ़ होकर वहाँ से कुंडनपुर के लिए निकल पड़े और क्रमशः प्रमदवन में चले गए । उस वन में उन्होंने अशोक वृक्ष देखा । रथ में से नीचे उतरकर वे उस वृक्ष के नीचे पहुँच गए ।

श्रीकृष्ण के कुंडनपुर की ओर प्रयाण के बाद नारदजी शिशुपाल के पास चेदीनगर पहुँच गए । शिशुपाल ने आदर पूर्वक नारदजी को नमस्कार किया । उसके बाद अनजाने बनकर नारदजी ने पूछा, ``रुक्मिणी के साथ आपके विवाह की बात सत्य है ?''

शिशुपाल ने कहा, ``हाँ ! बिल्कुल सत्य है ।''

नारदजी ने कहा, ``आपकी लग्न-पत्रिका बताओगे ?''

उसी समय शिशुपाल ने नारदजी को अपनी लग्न-पत्रिका बताई ।

लग्न-पत्रिका देखकर शिशुपाल को शंका पैदा कराने के लिए नारदजी ने अपना सिर हिलाया ।

शिशुपाल ने पूछा, ``महाराज ! आपने अपना मस्तक क्यों हिलाया ? क्या कोई आपत्ति की संभावना है ?''

नारदजी ने कहा, ``आपकी पत्रिका देखकर मेरा मन दुःखी हो गया ।

लग्न के लिए जाने पर आपके शरीर पर आपत्ति आने की संभावना है अतः आप सावधान रहना अन्यथा आपकी मृत्यु भी हो सकती है । अतः वहाँ जाना हो तो सैन्य के साथ जाना ।''

इतना कहकर नारदजी अन्यत्र चले गए । एक दिन नारदजी की सूचनानुसार शिशुपाल ने विराट सैन्य के साथ कुंडनपुर की ओर प्रयाण किया । कुंडनपुर पहुँचकर पूरे नगर को घेर लिया ।

शिशुपाल के आगमन को सुनकर रुक्मिणी चिंतातुर हो गई । उसने महापंडिता को कहा, ``मुझे लेने के लिए श्रीकृष्ण कैसे आएंगे और मैं नगर बाहर कैसे जाऊंगी ?''

महापंडिता ने कहा, ``नगर बाहर जाने का उपाय मैंने कर लिया है ।''

दूसरे दिन रुक्मिणी को साथ में लेकर महापंडिता गाजते बाजते कामदेव की पूजा के लिए नगर बाहर जाने लगी ।

तभी शिशुपाल के सैनिकों ने उसे रोक दिया । उसी समय महापंडिता ने गुस्से में आकर कहा, **``बाल्यकाल में रुक्मिणी ने कामदेव की मूर्ति के आगे यह प्रतिज्ञा की थी कि हे प्रभो ! इस जीवन में मेरा विवाह शिशुपाल के साथ होगा तो लग्न के दिन सोने के फूलों से आपकी पूजा करूंगी ।''** इस मनौती की पूर्ति के लिए रुक्मिणी कामदेव की पूजा के लिए जा रही है, तो तुम उसे क्यों रोक रहे हो ?''

सैनिकों ने जाकर यह बात शिशुपाल को कही । शिशुपाल ने तत्काल कामदेव की पूजा के लिए जाने की अनुमति दे दी ।

बस, प्रमदवन में जाकर रुक्मिणी उस अशोक वृक्ष की ओर जाने लगी ।

श्रीकृष्ण ने जैसे ही दूर से आती हुई रुक्मिणी को देखा, वे सोच में पड़ गए, **'अहो ! यह कोई किन्नरी है या विद्याधरी है ?'**

नजदीक आने पर रुक्मिणी बोली, ``यदि मेरे पुण्य से द्वारिकाधीश यहाँ आए हों तो वे मुझे दर्शन दें ।''

रुक्मिणी का यह कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने अनुमान किया, ``यह मुझ में अनुरक्त है ।''

उसके बाद श्रीकृष्ण ने कहा, ``मैं तेरे वचन-पालन के लिए द्वारिका से यहाँ आया हूँ ।''

उसी समय बलराम की सूचना से श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को अपने रथ में बिठा लिया...तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शँख फूँककर लोगों को जानकारी दी, ``मैंने (श्रीकृष्ण ने) रुक्मिणी का अपहरण किया है, यदि किसी की ताकत हो तो उसे छुड़ा ले ।''

श्रीकृष्ण के शंखनाद को सुनकर क्रोधातुर बने शिशुपाल, भीष्म और रुक्मि आदि पराक्रमी योद्धा श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए तैयार हो गये ।

युद्ध के वातावरण को देख रुक्मिणी घबरा गई । वह सोचने लगी, अहो ! मेरे खातिर इन दोनों भाइयों की मृत्यु हो जाएगी ।

उसी समय श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को कहा, **``देवी ! तू व्यर्थ ही चिंता करती है ? सूर्य के उदय के साथ ही अंधकार नष्ट हो जाता है । बस, मेरे सामने सभी सेना तितर-बितर हो जाएगी ।''** उसी समय श्रीकृष्ण ने अपने हाथ की अंगुली में से हीरे की अँगूठी निकालकर उसे चूर-चूर कर दी । उसके बाद एक पंक्ति में रहे ताड़ के सात वृक्षों को एक ही अर्धचंद्र बाण से बींध दिया ।

श्रीकृष्ण के इस पराक्रम को देख रुक्मिणी को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगी, ``ये अपने पराक्रम से मेरे पिता व भाई को मार डालेंगे ।''

उसने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, ``आप इस युद्ध में मेरे पिता व भाई को अभयदान दे दो, तभी मुझे शांति होगी ।'' श्रीकृष्ण ने उस वचन को स्वीकार किया । बलराम ने शिशुपाल की सेना के साथ और कृष्ण ने शिशुपाल के साथ युद्ध प्रारंभ किया ।

बलराम ने अपने अद्‌भुत पराक्रम द्वारा शिशुपाल की सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी । गुस्से में आकर रुक्मि बलराम को मारने के लिए दौड़ा...तभी बलराम ने नागपाश छोड़कर रुक्मि और उसके पिता को बंधन-ग्रस्त कर अपने रथ में डाल दिया ।

इधर शिशुपाल व श्रीकृष्ण का युद्ध जारी था । अंत में श्रीकृष्ण ने अर्ध चंद्राकार बाण से शिशुपाल के सारे बाल काट दिए...इसके साथ ही शिशुपाल का सारा तेज नष्ट हो गया ।

युद्ध में विजयश्री प्राप्तकर श्रीकृष्ण व बलराम रुक्मि के पास आए । रुक्मि की प्रार्थना से उन दोनों को नागपाश में से मुक्त कर दिया ।

बलराम ने रुक्मि को समझाया, ``अब विरोध छोड़कर खुश हो जाओ ! सेवक भाव को स्वीकार कर प्रेम में अभिवृद्धि करो ।''

समझाने पर भी रुक्मि ने अपना द्वेष भाव नहीं छोड़ा । आखिर बलराम ने उसे रथ से नीचे उतार दिया । रुक्मिणी को लेकर श्रीकृष्ण-बलराम ने द्वारिका की ओर प्रयाण प्रारंभ कर दिया ।

क्रमशः आगे बढ़ते हुए रैवताचल तीर्थ की यात्रा कर रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण व बलराम ने द्वारिका नगरी में प्रवेश किया । श्रीकृष्ण के प्रवेश के पूर्व समस्त द्वारिकानगरी को सजा दिया गया ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को रहने के लिए विशाल महल प्रदान किया ।

रुक्मिणी ने मात्र अपने रूप लावण्य से ही नहीं, बल्कि विनय-नम्रता आदि सद्‌गुणों से भी वासुदेव कृष्ण को इस प्रकार मोहित कर दिया कि अब वे सत्यभामा आदि रानियों को सर्वथा भूल गए ।

इस परिस्थिति को देख सत्यभामा मन-ही-मन अत्यंत दुःखी हो गई । वह रुक्मिणी के प्रति रहे कृष्ण के प्रेम को धिक्कारने लगी ।

श्रीकृष्ण-वियोग से पीड़ित सत्यभामा ने स्नान, विलेपन, अलंकार-शणगार आदि का भी त्याग कर दिया ।

मालती फूल की प्राप्ति के बाद भ्रमर, केरड़े के फूल के पास नहीं जाता है, इसी प्रकार रुक्मिणी को प्राप्तकर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा आदि का सर्वथा त्याग कर दिया ।

सत्यभामा की इस दुःखदायी स्थिति को देखकर बदले की भावना से नारदजी खुश हो गए ।

एक बार रुक्मिणी ने एकांत में श्रीकृष्ण को पूछा, ``सत्यभामा आपकी पटरानी है, परंतु आप तो कभी भी उसके महल में जाते नहीं हो ?''

श्रीकृष्ण ने कहा, **``सत्यभामा में अनेक गुण हैं, परंतु वह अभिमानी है । अभिमानी स्त्री पति को पसंद नहीं होती है ।''**

यह सुनकर रुक्मिणी को भय लगा, ``कहीं ये मेरा भी त्याग न कर दें ।''

ईर्ष्या की आग

ईर्ष्या की आग बहुत ही खतरनाक है । बाहर की आग तो दिखाई देती है, उससे बचने का प्रयास भी हो सकता है, परंतु ईर्ष्या की आग तो बाहर से दिखाई नहीं देती है, वह मन को ही जलाती है ।

रुक्मिणी के मान-सम्मान और वैभव को देखकर सत्यभामा मनोमन ईर्ष्या की आग में जलने लगी । जब से श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ पाणिग्रहण हुआ, तब से सत्यभामा की नींद हराम हो गई, वह अत्यंत ही बेचैन हो गई ।

रुक्मिणी की सुख-समृद्धि सत्यभामा के लिए महादुःख का कारण बन गई । वह सोचने लगी, **``हाय ! रुक्मिणी मुझ से छोटी है, फिर भी उसको इतना मान और सम्मान मिल रहा है और मैं बड़ी हूँ, फिर भी मेरी सर्वत्र उपेक्षा हो रही है ।**

अब ऐसा क्या उपाय करूँ, जिससे रुक्मिणी आपत्ति में आ जाय...उसका मान-सम्मान कम हो जाय और सर्वत्र मेरा मान-सम्मान बढ़ जाय ।'' इस प्रकार सोच ही सोच में कई दिन बीत गए ।

सोचते-सोचते एक दिन उसे एक उपाय मिल गया और वह खुशी के मारे झूम उठी ।

उसने सोचा, ``मैं बड़ी हूँ, अतः सर्वप्रथम पुत्ररत्न की मुझे प्राप्ति होगी और रुक्मिणी छोटी है, अतः उसे बाद में पुत्र होगा ।''

रुक्मिणी के पहले मुझे पुत्र-प्राप्ति होने से मेरे पुत्र का विवाह पहले होगा, अतः मेरा मान-सम्मान अधिक होगा, इससे रुक्मिणी अवश्य ही दुःखी होगी । इस प्रकार विचार कर अपनी दासी को बुलाकर कहा, ``तू जाकर रुक्मिणी को एक संदेश दे ।''

``पुण्योदय से यदि तुझे सर्वप्रथम पुत्र-प्राप्ति होगी और तेरे पुत्र का विवाह पहले हो गया तो मैं अपने सिर के बाल उतारकर तुझे सौंप दूंगी और भाग्ययोग से मुझे पहले पुत्र हो गया और उसका विवाह पहले हो गया तो तू अपने सिर के बाल उतार कर मुझे दे देना । हे रुक्मिणी ! श्रीकृष्ण की अत्यंत प्रियतमा होने और श्रेष्ठ सौंदर्य के कारण तुझे अभिमान हो तो इस शर्त को अवश्य स्वीकार करना ।''

दासी ने जाकर रुक्मिणी को सत्यभामा का संदेश बताया । रुक्मिणी ने तत्क्षण कहा, ``सत्यभामा मेरी बड़ी बहिन है, अतः उसकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही होगा । उसकी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है ।''

दासी ने जाकर सत्यभामा को सब बात कह दी ।

सत्यभामा ने सोचा, ``रुक्मिणी ने मेरी शर्त को स्वीकार तो कर लिया है, परंतु इस संबंध में बलराम और श्रीकृष्ण को भी साक्षी-रूप बना दूँ तो रुक्मिणी इस वचन का भंग नहीं कर पाएगी ।''

इस प्रकार विचार कर सत्यभामा ने अपनी दासी को श्रीकृष्ण और बलराम के पास भेजकर सारी बात बतला दी ।

बलराम ने कहा, ``बहुत अच्छा ! कुछ कौतुक देखने को मिलेगा ।''

दासी ने जाकर सत्यभामा को बात कही ।

सत्यभामा भी खुश हो गई ।

इधर रुक्मिणी ने भी राजसभा में अपनी दासी को भेजकर बलराम और श्रीकृष्ण को इस शर्त के समाचार दे दिए ।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा ।

एक शुभ दिन रात्रि के अंतिम प्रहर में रुक्मिणी ने **``सफेद बैल पर रहे विमान में मैं स्वयं चढ़ रही हूँ ।''** इस प्रकार का स्वप्न देखा । स्वप्न देखकर रुक्मिणी जागृत हो गई । उसी समय आठवें महाशुक्र देवलोक से एक दिव्यात्मा का च्यवन हुआ और रुक्मिणी की कुक्षि में उसका अवतरण हुआ ।

स्वप्न देखकर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को वह स्वप्न सुनाया । श्रीकृष्ण ने कहा, ``प्रिये ! इस स्वप्न के प्रभाव से तू अत्यंत ही पराक्रमी तथा मोक्षगामी पुत्र को जन्म देने वाली माता बनेगी ।''

स्वप्न-फल को सुनकर रुक्मिणी खुश हो गई । गर्भ के प्रभाव से रुक्मिणी का मान-सम्मान बढ़ने लगा ।

इधर रुक्मिणी को आए स्वप्न की बात सुनकर सत्यभामा के दुःख का पार न रहा । उसने ऐसे ही श्रीकृष्ण को कह दिया, ``मैंने आज स्वप्न में गजेन्द्र को देखा है ।''

सत्यभामा को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, ``तू इस स्वप्न के प्रभाव से प्रभावशाली पुत्र को जन्म देगी ।''

सत्यभामा ने सोचा, **``विष्णु का वचन कभी मिथ्या नहीं होता है, अतः मैं भी अवश्य पुत्र की जनेता बन जाऊंगी ।''**

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

एक शुभ दिन शुभ मुहूर्त में रुक्मिणी ने सूर्य के समान अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

कृष्ण को ज्योंही पुत्रजन्म की बधाई के समाचार मिले, उनके आनंद का पार न रहा । खुश होकर उन्होंने दासी को कीमती अलंकार आदि भेंटकर जीवन भर के लिए उसके दारिद्र्य को दूर कर दिया ।

श्रीकृष्ण ने तत्काल संपूर्ण द्वारिकानगरी को सजाने का आदेश दिया । आदेश होते ही द्वारिका के समस्त राजमार्गों को ध्वजा, पताका, तोरण व द्वारों से सजा दिया गया । इस प्रसंग पर दीन-दु:खी याचकों को भी खूब दान दिया गया ।

रुक्मिणी के पुत्रजन्म को सुनकर सत्यभामा को अत्यंत ही आघात लगा ! सद्भाग्य से उसने भी दूसरे दिन तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । पुत्र जन्म से सत्यभामा खुश हो गई । समय व्यतीत होने पर उस बालक का **भानुकुमार** नामकरण किया गया ।

पुत्र का अपहरण

श्रीकृष्ण के दिल में पुत्र के मुखदर्शन की तीव्र उत्कंठा होने से वे रुक्मिणी के महल में गए । सिंहासन पर बैठकर श्रीकृष्ण ने पुत्र को मंगाया । पुत्ररत्न को हाथ में लेते ही श्रीकृष्ण खुश हो गए, ``अहो ! यह अश्विनी कुमार है या सूर्यबिंब ? इसने तो अपने तेज से सभी दिशाओं को प्रकाशित कर दिया है, अत: इस बालक का नाम **``प्रद्युम्नकुमार''** रखता हूँ ।''

इसी बीच पूर्व भव का वैरी देव अपने वैर का बदला लेने के लिए वहाँ आया । नवजातशिशु प्रद्युम्नकुमार को आपत्ति में डालने के लिए उस वैरी देव ने रुक्मिणी का रूप किया और श्रीकृष्ण के पास से उस बालक को ले लिया ।

वह वैरी देव उस बालक को लेकर वैताढ्य पर्वत पर **भूत-रमण** नाम के वन में आया । पहले तो उसने उस बालक को शिला पर गिराकर मार डालने का निश्चय किया, परंतु बाद में सोचा, **``शास्त्र में बालहत्या को भयंकर पाप बतलाया है, अत: क्यों न इस बालक को अपने हाथों से मारने के बजाय इस जंगल में ही छोड़ दूँ-यह बालक स्वत: भूख और प्यास से मर जाएगा ।''**

इस प्रकार विचार कर उस देव ने प्रद्युम्नकुमार को एक शिला पर छोड़ दिया और स्वयं देवलोक में चला गया ।

इसी बीच **कालसंवर** नाम का विद्याधर विमान द्वारा **अग्निज्वालापुर** से अपने नगर की ओर जा रहा था, ज्योंही वह विमान उस बालक पर से प्रसार हुआ, त्योंही उस बालक के पुण्य प्रभाव से वह विमान वहीं पर स्तंभित हो गया। **कालसंवर** ने विमान के अवरोध के कारण की शोध की। नीचे उतरने पर उसने तेजस्वी बालक को देखा। बालक को देखकर वह खुश हो गया। उसने उस बालक को उठा लिया। पूर्णिमा के चांद समान बालक का मुख था। वह बालक सूर्य के समान देदीप्यमान था। उसने उस बालक का नाम **``प्रद्युम्नकुमार''** रखा।

कालसंवर विद्याधर उस बालक को लेकर अपने नगर में गया और वहाँ जाकर उसने बालक अपनी महारानी को सौंप दिया। महाराजा ने नगर में बात फैलाई कि गूढगर्भा महारानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है।

महाराजा ने खूब धूमधाम के साथ पुत्र-जन्म का भव्य महोत्सव मनाया।

इधर थोड़ी देर के बाद **रुक्मिणी** अपने पुत्र को लेने के लिए **श्रीकृष्ण** के पास आई...परंतु **श्रीकृष्ण** के पास तो पुत्र था नहीं।

श्रीकृष्ण ने कहा, ``अरे ! अभी तो तू पुत्र लेकर गई है।'' रुक्मिणी ने कहा, ``मैं कहाँ आई थी ? कहाँ है वह पुत्र ? मेरा पुत्र मुझे दो !'' इस प्रकार कहकर पुत्रवियोग की पीड़ा से रुक्मिणी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

कृष्ण ने सोचा, **``जरूर किसी देव, देवी, विद्याधर या व्यंतर ने मुझे ठग लिया है। किसी ने छल-कपट करके मेरे पुत्र का अपहरण कर लिया है। क्या इस पुत्र का अपहरण करनेवाला मुझसे भी अधिक बलवान होगा ?''**

पुत्रवियोग से श्रीकृष्ण चिंतातुर हो गए। पुत्र की शोध के लिए चारों ओर छानबीन प्रारंभ हुई, परंतु कहीं से भी प्रद्युम्नकुमार के कुछ भी समाचार नहीं मिले।

रुक्मिणी की पुत्र-वियोग की पीड़ा को जानकर सत्यभामा मनोमन अत्यंत ही खुश हो गई। **ईर्ष्यालु व्यक्ति की यही तो स्थिति होती है। वह दूसरे को दुःखी करके या दुःखी देखकर ही आनंद पाता है।**

सत्यभामा सोचने लगी, ``अहो ! इस रुक्मिणी ने आकर मेरा श्रीकृष्ण के साथ वियोग कराया तो अब उस पाप के कारण उसे पुत्रवियोग की

पीड़ा सहन करनी पड़ी है । **जो दूसरे का बुरा करता है, उसका बुरा अवश्य होता है । रुक्मिणी को अपने ही पाप की सजा मिल रही है ।''**

रुक्मिणी के पुत्रवियोग की पीड़ा के कारण सत्यभामा के पुत्र-जन्म का महोत्सव भी नहीं मनाया गया ।

रुक्मिणी ने सरस भोजन, सुंदर वस्त्र, अलंकार तथा शणगार आदि का सर्वथा त्याग कर दिया । वह एक योगिनी की भाँति दिखाई देने लगी ।

वह करुण विलाप करती हुई बोली, ``हे श्रीकृष्ण ! हे जनार्दन ! हे माधव ! मैंने आपको अपना पुत्र दिया था, अब वापस आप मेरा पुत्र मुझे लौटाओ, अन्यथा आपको न्यासापहार का पाप लगेगा । **उत्तम पुरुष न्यासापहार के पाप से डरते हैं । आपने शिशुपाल जैसे पराक्रमी राजाओं को परास्त कर दिया तो मेरे पुत्र का अपहरण करनेवाले को क्यों छोड़ रहे हो ?''**

``हे पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तेरे मुखदर्शन से मैं कितनी प्रसन्न हुई थी ? तुझे बड़ा करने का मेरा मनोरथ था...परंतु मेरे मनोरथ को किसी ने चूर-चूर कर दिया । क्या तुझे दूध पिलाने का सौभाग्य मेरा नहीं है ?''

हे प्रभो ! मैंने गत जन्म में ऐसा कौनसा पाप किया होगा, जिस कारण जन्म के साथ ही पुत्रवियोग की पीड़ा सहन करनी पड़ रही है !

इस प्रकार रुक्मिणी सतत करुण विलाप करने लगी । उसके दुःख का पार न रहा ।

रुक्मिणी की इस दुर्दशा को देखकर श्रीकृष्ण भी परेशान हो गए ।

श्रीकृष्ण की परेशानी को देखकर कुशल मंत्रियों ने उनको आश्वासन देते हुए कहा, **``आपके पुत्र का कहीं मृत कलेवर भी प्राप्त नहीं हुआ है, इसका अर्थ है, वह कहीं जीवित होना चाहिए ! किसी पापी देव ने उसका अपहरण किया होना चाहिए ।''**

यादव वंश में किसी अल्प आयुष्यवाले का जन्म नहीं हुआ है, अतः आपका पुत्र जीवित ही होना चाहिए ।

नारदजी द्वारा शोध

एक बार नारद मुनि का द्वारिका में आगमन हुआ । उन्होंने सारी द्वारिका शोकमग्न देखी । नारदजी ने इसका कारण पूछा तो किसी ने कहा, ``श्रीकृष्ण के नवजात शिशु का अपहरण हो गया है ।'' यह सुनकर नारदजी

को अत्यंत ही आघात लगा । वे श्रीकृष्ण के पास आए । उन्होंने पुत्र-वियोग की सारी जानकारी प्राप्त की ।

नारदजी ने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया और कहा, ``मैं भी आपके पुत्र की शोध के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करूंगा ।''

नारदजी स्वयं रुक्मिणी से मिले । रुक्मिणी की वेदना का पार नहीं था ।

नारदजी ने रुक्मिणी को भी पुत्र-शोध हेतु प्रयत्न करने का आश्वासन दिया और कहा, **``तू जिसकी माता है और श्रीकृष्ण जिसके पिता हैं, वह पुत्र भाग्यहीन नहीं हो सकता है । उस पुत्र का संयोग अवश्य होगा । तू चिंता करना छोड़ दे ।''**

नारदजी के आश्वासन से रुक्मिणी को कुछ सांत्वना मिली !

नारदजी ने कहा, ``तेरे पुत्र का पता लगाने के लिए मैं महाविदेह में जाऊंगा ।'' इतना कहकर नारदजी वहाँ से चले गए ।

नारदजी ने अपनी विद्या के बल से विमान की रचना की, उस विमान में आरूढ़ होकर आकाशमार्ग से आगे बढ़ते हुए वे महाविदेह क्षेत्र की **पुंडरीकिणी** नगरी में पहुँच गए । वह नगरी श्री **सीमंधरस्वामी** भगवंत के चरण कमलों से पावन बनी हुई थी ।

पुंडरीकिणी नगरी के एक भाग में देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की थी, उस समवसरण में बैठकर सीमंधर स्वामी भगवंत भव्यजीवों को धर्मदेशना देते थे । नारदजी भी उस समवसरण में पहुँच गए । उन्होंने अपने नेत्रों से 500 धनुष की कायावाले श्री सीमंधर स्वामी भगवंत के दर्शन किए । प्रभु के दर्शन कर वे अपने आपको भाग्यशाली समझने लगे ।

नारदजी ने सीमंधर स्वामी की स्तुति की । उस समवसरण में हजारों देवता व नर-नारी आए हुए थे ।

महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों के सामने नारदजी की काया अत्यंत ही छोटी थी ।

पद्म चक्रवर्ती ने जब नारदजी को देखा तो उसके आश्चर्य का पार न रहा ।

उसने प्रभु को पूछा, ``यह कौनसा प्राणी है ।''

प्रभु ने कहा, ``यह भरत क्षेत्र का मानव नारदमुनि है । वे श्रीकृष्ण के पुत्र की जानकारी के लिए यहाँ आए हैं ।'' भरत क्षेत्र में पैदा हुआ मनुष्य ऐसे तो पैदल चलकर यहाँ नहीं आ सकता है, परंतु नारद मुनि के पास आकाश गामिनी विद्या है, इस विद्या के बल से ही ये यहाँ आए हैं ।

प्रभु ने कहा, ``श्रीकृष्ण की रानी रुक्मिणी के जन्मजात शिशु का पूर्व भव के वैरी देव **धूमकेतु** ने अपहरण कर लिया था । उस देव ने वह बालक **वैताढ्य** पर्वत के **भूतरमण** उद्यान में छोड़ दिया । जिसे **कालसंवर** विद्याधर अपने घर ले गया । वह कालसंवर उस बालक का पुत्रवत् पालन कर रहा है । वह सोलह प्रकार के लाभ प्राप्तकर सोलह वर्ष के बाद अपने माता-पिता के पास पहुँचेगा ।''

उसी समय पद्मनाभ चक्रवर्ती ने पूछा, ``प्रभो ! उस देव ने इस जन्मजात शिशु का अपहरण क्यों किया ? क्या पूर्व में इस बालक ने कोई पाप कर्म किया था ?''

प्रभु ने कहा, **``इसके रहस्य को जानने के लिए तुम इसके पूर्व भव के चरित्र को ध्यान से सुनो''** इतना कहकर सीमंधर स्वामी प्रभु ने प्रद्युम्नकुमार के पूर्व भव का चरित्र सुनाना प्रारंभ किया ।

जंबुद्वीप ! भरतक्षेत्र ! मगधदेश ! शालिग्राम नगर ! उस नगर में वेद व क्रियाकांड में पारगामी **सोमशर्मा** नाम का ब्राह्मण रहता था, उस ब्राह्मण के **अग्निला** नाम की पत्नी थी ।

अग्निला ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम **अग्निभूति** और **वायुभूति** थे ।

यौवनवय प्राप्त होने पर वे दोनों पुत्र वेद-विद्याओं में पारगामी हुए । रूपवती कन्याओं के साथ उनका विवाह भी हो गया ।

एक बार उस नगर के बाहर उद्यान में **नंदिवर्धनसूरिजी म.** का अपने विशाल परिवार के साथ आगमन हुआ । सभी नगरवासी आचार्य भगवंत की धर्मदेशना का पानकर अपने आपको भाग्यशाली समझने लगे ।

एक बार कुछ लोग आचार्य भगवंत की देशना-श्रवण के लिए जा रहे थे ।

अग्निभूति और वायुभूति ने उन लोगों को कहा, ``तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?''

लोगों ने कहा, ``हम आचार्य भगवंत की देशना सुनने के लिए जा रहे हैं ।''

उन दोनों भाइयों ने कहा, ``वहाँ क्यों जाते हो ? वे तो ढोंगी हैं । वे तो बाहर से गंदे हैं, उसी तरह भीतर से भी गंदे हैं ।''

उन श्रावकों ने कहा, ``तुम लोग वहाँ जाओगे तो तुम्हें उनके वास्तविक स्वरूप का ख्याल आएगा ।''

वे दोनों भाई आचार्यश्री से वाद करने के लिए उद्यान की ओर आगे बढे !

बीच मार्ग में ही उन्हें आचार्य भगवंत का एक शिष्य **``सत्यकी''** मिल गया ।

वेदवाक्य को लेकर उन दोनों भाइयों ने सत्यकी से वाद प्रारंभ किया !

वे दोनों भाई ``अज'' का अर्थ बकरा करने लगे जब कि सत्यकी ने ``अज'' का अर्थ **``नहीं उगने वाला धान्य''** किया ।

अनेक युक्तियों द्वारा सत्यकी मुनि ने अग्निभूति और वायुभूति का खंडन किया । आखिर परास्त होकर वे दोनों भाई अपने घर लौट आए ।

घर लौटने पर उन्होंने अपने पिता को सब बातें कहीं । पिता नाराज हो गए ।

गुस्से में आकर बोले ! तुम शास्त्र में पराजित हुए तो शस्त्र कला का उपयोग क्यों नहीं किया ? मुझे तुम्हारा मुँह देखते हुए शर्म आती है ।

पिता की इस बात को सुनकर वे दोनों भाई मुनि-हत्या का उपाय शोधने लगे !

इधर सत्यकी मुनि जैसे ही आचार्य भगवंत के पास आया, वैसे ही गुरुदेव ने कहा, **``अयोग्य व्यक्तियों से वाद कर तू ने उचित नहीं किया !** साधुओं की हत्या के लिए आज वे दोनों यहाँ आएंगे ।''

सत्यकी मुनि ने साधुओं की रक्षा के लिए आचार्य भगवंत से उपाय पूछा ।

आचार्यश्री ने कहा, ``क्षेत्रपाल की अनुज्ञा लेकर तुम कायोत्सर्ग में रहोगे तो सभी का कल्याण होगा ।''

शाम के समय सत्यकी मुनि ने कायोत्सर्ग की साधना प्रारंभ कर दी । इस बीच वे दोनों भाई शस्त्र लेकर मुनि हत्या के लिए आए !

जैसे ही उन दोनों भाइयों ने मुनि पर शस्त्र से प्रहार किया, तभी क्षेत्रपाल ने उन्हें रोक दिया और वह क्षेत्रपाल उन दोनों की हत्या के लिए तैयार हो गया परंतु दयालु मुनि ने उन दोनों को बचा दिया ।

प्रातःकाल होने पर राजा, प्रजाजन तथा अग्निभूति-वायुभूति का पिता भी वहाँ आ गया ।

क्षेत्रपाल ने राजा पर गुस्सा किया । राजा ने माफी मांगते हुए कहा, ``मुझे इस बात का पता ही नहीं था ।''

क्षेत्रपाल ने राजा को माफ कर दिया । क्षेत्रपाल उन दोनों भाइयों को मारने लगा तो सत्यकी मुनि ने कहा, **``इन दोनों भाइयों का भविष्य उज्ज्वल है । वे तो अल्प भवों के बाद नौवें वासुदेव श्रीकृष्ण के पुत्र शांब और प्रद्युम्न होंगे और बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु के शासन में दीक्षा अंगीकार कर शत्रुंजय तीर्थ से मोक्ष में जाएंगे ।''**

अपने उज्ज्वल भावी को सुनकर वे दोनों भाई अत्यंत खुश हो गए । उन्हें अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप होने लगा । उन दोनों ने अपने पाप का प्रायश्चित्त मांगा ।

सत्यकी मुनि ने उनके उद्धार के लिए साधुधर्म और श्रावक धर्म का विवेचन किया, जिसे सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हो गए । उन दोनों ने भावपूर्वक श्रावकधर्म स्वीकार किया, जबकि उनके पिता सोमशर्मा ने मात्र दिखावे के लिए श्रावकधर्म को स्वीकार किया ।

घर आने के बाद पिता सोमशर्मा ने अपने दोनों पुत्रों को श्रावकधर्म छोड़ देने का आग्रह किया, परंतु उन दोनों ने सद्भाव पूर्वक श्रावकधर्म का पालन किया ।

अंत में वे दोनों समाधिपूर्वक कालधर्म पाकर सौधर्म देवलोक में पाँच पल्योपम की स्थितिवाले देव बने ।

तीसरा भव

कौशल देश ! अयोध्या नगरी ! अरिंजय राजा और प्रियंवदा महारानी !

उसी नगर में **समुद्रदत्त** नाम का श्रेष्ठी रहता था, उस श्रेष्ठी के **हारिणी** नाम की स्त्री थी ।

सौधर्म देवलोक में अपने दीर्घ आयुष्य को पूर्णकर उन दोनों भाइयों का हारिणी की कुक्षि में अवतरण हुआ । गर्भकाल का समय व्यतीत होने पर हारिणी ने दो पुत्रों को जन्म दिया ! एक का नाम **माणिभद्र** और दूसरे का नाम **पूर्णभद्र** रखा गया ।

दोनों पुत्र धीरे-धीरे बड़े होने लगे । क्रमशः पुरुषों की 72 कलाओं में निपुण बने । यौवन वय प्राप्त होने पर श्रेष्ठी-कन्याओं के साथ उनका पाणि-ग्रहण भी हो गया !

एक बार पृथ्वीतल को पावन करते हुए पूज्य आचार्य श्री **महेन्द्रसू-रिजी** म. अपने विशाल परिवार के साथ **अयोध्या** नगरी के बाहर उद्यान में पधारे ।

आचार्य भगवंत के आगमन को सुनकर राजा भी अपने विशाल परिवार के साथ धर्मदेशना-श्रवण के लिए उद्यान में आया ।

आचार्य भगवंत की धर्मदेशना के श्रवण से **अरिंजय** राजा का हृदय वैराग्य रंग से रंजित हो गया । पुत्र को राजगद्दी सौंपकर उसने आचार्य भगवंत के पास दीक्षा ले ली ।

आचार्य भगवंत की देशना-श्रवण के लिए वे दोनों भाई माणिभद्र और पूर्णभद्र भी गए । देशनाश्रवण के बाद उन दोनों भाइयों ने श्रावकधर्म स्वीकार किया ।

वे प्रतिदिन परमात्मा की पूजा-भक्ति करने लगे और श्रावकोचित आचारों का दृढ़ता से पालन करने लगे ।

एक बार वे दोनों भाई उद्यान में मुनि-देशना-श्रवण के लिए जा रहे थे, तभी उन्होंने बीच मार्ग में एक चांडाल व कुत्ती को देखा । उन दोनों को देखकर उन दोनों भाइयों के मन में स्नेह भाव पैदा हो गया । वे चारों उद्यान में पहुँचे । देशना-समाप्ति के बाद दोनों भाइयों ने मुनि भगवंत को पूछा,

``प्रभो ! इस चांडाल व कुत्ती के प्रति हमारे स्नेहभाव का क्या कारण है ?''

मुनि ने कहा, ``पूर्व के तीसरे भव में यह **चांडाल** तुम्हारा **पिता सोमदेव** और यह **कुत्ती** तुम्हारी माता **अग्निला** थी । उस जन्म में जैनधर्म की निंदा करने के कारण वे दोनों मरकर नरक में पाँच पल्योपम के आयुष्यवाले नारक बने, वहाँ से निकलकर चांडाल और कुत्ती बने हैं । तुम दोनों ने जैन-धर्म की आराधना की थी उसी के फलस्वरूप तुम सौधर्म देवलोक में देव बने और वहाँ से च्यवकर श्रेष्ठी-पुत्र बने हो !

पूर्वभव के संबंध के कारण ही तुम्हें परस्पर प्रेम हुआ है ।

अपने पूर्व भव को सुनकर उस चांडाल व कुत्ती को भी पश्चात्ताप हुआ । उन दोनों ने जैन धर्म को स्वीकार किया ।

चांडाल व कुत्ती ने बारहव्रत स्वीकार किये, अंत में वह चांडाल मरकर देव बना ।

वह कुत्ती भी 7 दिन बाद मरकर राजा के यहाँ पुत्री के रूप में पैदा हुई । राजपुत्री धीरे-धीरे बड़ी होने लगी ।

यौवन वय प्राप्त होने पर एक दिन उसके लग्न के लिए स्वयंवर मंडप की रचना की गई । उसी समय वह चांडाल देव वहाँ आया और उस राजपुत्री को प्रतिबोध देने लगा ।

देव के वचनों से प्रतिबोध पाई उस राजकन्या ने स्वयंवर मंडप का त्यागकर उद्यान में जाकर **श्रुतसागर** मुनि के पास दीक्षा अंगीकार की ।

सुंदर संयमधर्म का पालनकर वह साध्वी समाधिपूर्वक कालधर्म पाकर स्त्रीवेद का छेदकर प्रथम देवलोक में देव बनी ।

माणिभद्र और पूर्णभद्र भी श्रावक धर्म की सुंदर आराधना कर प्रथम देवलोक में देव बने ।

◆ अयोध्या नगरी में **पद्मनाभ** नाम का राजा राज्य करता था, उस राजा के **धारिणी** नाम की पतिव्रता महारानी थी ।

एक दिन **माणिभद्र** और **पूर्णभद्र** देव का देवलोक से च्यवन हुआ और वे दोनों अपने देवायुष्य को पूर्णकर धारिणी महारानी की कुक्षि में पुत्र के रूप में पैदा हुए । क्रमशः उन दोनों पुत्रों का नाम **मधु** और **कैटभ** रखा गया !

एक दिन सद्गुरू भगवंत की धर्मवाणी के श्रवण के फलस्वरूप राजा

के हृदय में वैराग्य भावना पैदा हुई । मधु को राज्य और कैटभ को युवराज का पद प्रदान कर उसने भागवती दीक्षा अंगीकार कर अपनी आत्मा का कल्याण किया ।

राज्यप्राप्ति के बाद मधुराजा न्याय व नीतिपूर्वक प्रजा का पालन-पोषण करने लगा ।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा ।

एक बार गुप्तचर ने आकर समाचार दिए कि भीम राजा ने अयोध्या की सीमा पर आक्रमण प्रारंभ कर दिया है । इस समाचार को सुनते ही मधुराजा आगबबूला हो उठा । उसने तत्क्षण सेनापति को सेना की तैयारी के लिए आदेश दिया और वह स्वयं भी युद्ध के लिए तैयार हो गया ।

बस, दूसरे ही दिन मंगल मुहूर्त में विराट सेना के साथ मधु राजा ने प्रयाण कर दिया ।

क्रमशः आगे बढ़ते हुए मधुराजा ने **बटपुर** नगर में प्रवेश किया । बटपुर नगर के **हेमरथ** राजा ने मधुराजा का भव्य सत्कार किया ।

हेमरथ राजा मधुराजा को राजसभा में ले गया और उसे अपने स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाया ।

हेमरथ राजा की महारानी **इन्दुप्रभा** भी राजसभा में आई । उसने स्वस्तिक की रचना कर चावल द्वारा मधु राजा को बधाया !

मधुराजा ने इन्दुप्रभा के रूप व लावण्य को प्रत्यक्ष देखा । इन्दुप्रभा के अद्‌भुत रूप को देखकर वह कामातुर हो गया । वह सोचने लगा, **``अहो ! यह कौन है ? यह उर्वशी है, रंभा है या पाताल सुंदरी है ?''** इस प्रकार विचार कर वह इन्दुप्रभा के विचारों में खो गया ।

स्वागत-समारोह की समाप्ति के बाद रात्रि में मधुराजा की नींद हराम हो गई । उसे एक मात्र इन्दुप्रभा के ही विचार सताने लगे ।

राजा की इस स्थिति को देख मंत्री ने राजा को समझाने की कोशिश की, परंतु राजा का मन तो इन्दुप्रभा में ही खो गया था ।

आखिर मंत्री ने आश्वासन दिया, ``युद्ध में विजयश्री पाने के बाद लौटते समय इन्दुप्रभा को पाने के लिए योग्य प्रयास किया जाएगा ।''

राजा ने मंत्री की बात मान ली और वहाँ से आगे की ओर प्रयाण प्रारंभ किया ।

क्रमशः आगे बढ़ते हुए मधुराजा अयोध्या की सीमा पर पहुँच गए और कुछ ही दिनों में मधुराजा के सैनिकों ने भीमराजा को जीवित ही पकड़ लिया ।

युद्ध में विजय पाने के बाद मधु राजा ने पुनः अयोध्या की ओर प्रयाण प्रारंभ किया ।

मधुराजा के मन में इन्दुप्रभा बस गई थी...परंतु मंत्रीश्वर ने बटुपुर का मार्ग ही बदल दिया । मधुराजा सीधे अयोध्या पहुँच गए ।

इन्दुप्रभा की प्राप्ति नहीं होने से मधुराजा ने मंत्रीश्वर को खूब ठपका देते हुए कहा, **``अरे दुष्ट ! तू ने मुझे क्यों ठग लिया ?''**

मंत्रीश्वर ने कहा, **``मुझे तो मार्ग का पता नहीं था, मैं तो सेनापति का अनुसरण कर रहा था ।''**

राजा ने सेनापति को बुलाकर ठपका दिया । सेनापति ने कहा, ``रात्रि में अंधकार होने से बटुपुर के मार्ग का पता ही नहीं चला ।''

राजा के चित्त को प्रसन्न करने के लिए आखिर मंत्री ने एक योजना तैयार की ।

मंत्री की सलाह से राजा ने वसंतोत्सव का आयोजन किया और उस वसंत उत्सव में उसने सभी राजाओं को रानियों के साथ आने का आमंत्रण भेजा ।

मधुराजा ने हेमरथ राजा को भी महारानी सहित इस महोत्सव में पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

एक शुभ दिन महोत्सव का मंगल प्रारंभ हुआ । इस महोत्सव में अनेक महाराजा अपनी-अपनी रानियों के साथ पधारे । हेमरथ राजा भी इन्दुप्रभा के साथ वहाँ उपस्थित हुआ ।

खूब धूमधाम पूर्वक एक मास तक वसंत उत्सव का आयोजन हुआ । महोत्सव-समाप्ति के बाद मधु राजा ने सभी राजाओं को भेंट स्वरूप उत्तम वस्तुएँ प्रदान कर सबको सम्मान सहित विदाई दी, परंतु हेमरथ राजा की विदाई का प्रश्न आया तब राजा ने कहा, ``महारानी के योग्य आभूषण अभी तक तैयार नहीं हो पाए हैं, अतः कुछ दिन तक आपकी महारानी यहीं रुक जाय...आभूषण तैयार होते ही मैं महारानी को सुरक्षित रूप से आपको पहुँचा दूंगा ।''

विश्वास में आकर हेमरथ राजा ने अपनी सहमति प्रदान कर दी और एक दिन हेमरथ राजा ने वहाँ से विदाई ले ली ।

हेमरथ राजा के चले जाने के बाद अवसर देखकर मधुराजा ने दबाव डालकर...प्रलोभन आदि देकर इन्दुप्रभा को अपने वश में करने का प्रयत्न किया ।

पहले तो इन्दुप्रभा ने राजा को समझाने का भरसक प्रयत्न किया परंतु कामाधीन बने राजा ने उसकी एक न सुनी । आखिर इन्दुप्रभा को उसने अपने अधीन बना लिया और उसके साथ सांसारिक सुख भोगने लगा ।

कुछ समय बाद हेमरथ राजा को जब मधु राजा के षड्यंत्र का पता चला तो उसे अत्यंत ही आघात लगा । हेमरथ ने अपनी पत्नी वापस लौटाने के लिए मधुराजा को आजिजी भरी प्रार्थना की, परंतु मधुराजा ने उसकी बात की ओर लेश भी ध्यान नहीं दिया । इन्दुप्रभा भी अब मधुराजा को दिल से चाहने लगी ।

अपनी प्राणप्यारी पत्नी के वियोग की पीड़ा हेमरथ राजा के लिए असह्य हो गई । इन्दुप्रभा की याद में वह एक दिन अपने नगर से बाहर निकल गया और जहाँ-तहाँ भटकने लगा ।

गाँव-गाँव में भटकता हुआ हेमरथ अयोध्या में आ गया और नगर में घूमने लगा ।

नगर में रही किसी भी स्त्री को देखकर ``इन्दुप्रभा'' कहकर बुलाने लगा और उसे पकड़ने की कोशिश करने लगा । इस प्रकार की हेमरथ की चेष्टा को देखकर वे स्त्रियाँ उसे पीटने लगीं ।

एक बार किसी दासी ने जाकर इन्दुप्रभा से यह बात कही, **``आपके पति हेमरथ राजा आपके वियोग में पागल जैसे हो गए हैं और जहाँ-तहाँ भटक रहे हैं । आपको विश्वास न हो तो उनकी यह हालत प्रत्यक्ष देख सकोगे ।''**

दासी की बात सुनकर इन्दुप्रभा ने अपने पति हेमरथ की बुरी हालत प्रत्यक्ष देखी । **हेमरथ की बुरी हालत देख इन्दुप्रभा को अत्यंत ही दुःख हुआ । उसे अपनी भूल का तीव्र पश्चाताप हुआ ।** इसी बीच मधुराजा स्वयं वहाँ आ गया ।

इन्दुप्रभा ने मधुराजा का स्वागत किया । उसी समय राजा का कोतवाल एक पुरुष को पकड़कर लाया और बोला, **``राजन् ! यह पुरुष**

(66) मूलदेव-
पृष्ठ नं. 245

(67) विष्णुकुमार मुनि-
पृष्ठ नं. 259

परस्त्री लंपट है । यह परस्त्री सेवन का पापाचरण कर रहा है, अतः आप आज्ञा फरमाए-इसे कौनसी सजा की जाय ?''

कोतवाल की बात सुनकर आवेश में आकर राजा ने कहा, **''इस पापी को फांसी की सजा दे दी जाय ।''**

राजाज्ञा को सुनकर कोतवाल वहाँ से चला गया । इन्दुप्रभा ने राजा को पूछा, ``क्या परस्त्री सेवन गुनाह है ?''

राजा ने कहा, **''यह तो भयंकर अपराध है । पर-स्त्री-सेवन करनेवाले को कम-से-कम 7 बार नरक में जाना पड़ता है । इस लोक में भी उसकी अपकीर्ति होती है ।''**

इन्दुप्रभा ने कहा, ``मेरा विवाह तो हेमरथ राजा के साथ हुआ था तो फिर आपने मुझसे संबंध क्यों किया ? **क्या दूसरा भूल करे तो उसे भयंकर सजा हो और आप भूल करें तो कुदरत आपको माफ कर देगी ?''**

रानी की बात सुनते ही मधुराजा का मोह भंग हो गया । उसे अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप होने लगा ! **''हाय ! मोह के अधीन बनकर मैंने कितना भयंकर पापाचरण कर दिया ? धिक्कार हो मेरी आत्मा को ! मेरी आत्मा की कैसी दुर्दशा होगी ?''**

उसी समय किसी साधु महात्मा का वहाँ आगमन हुआ । राजा ने उन्हें गोचरी बहोराई । महात्मा ने धर्मलाभ की आशिष दी ।

निराशंस भाव से आहार पानी वापरने के बाद वे महात्मा कायोत्सर्ग की साधना में लीन बन गए । इस ध्यान साधना के फलस्वरूप उनके समस्त घाति कर्मों के बंधन टूट गए और उन्हें केवलज्ञान हो गया ।

देवताओं ने आकर केवली भगवंत का महोत्सव किया । सभी नगरवासी केवली भगवंत की देशना सुनने के लिए उद्यान की ओर जाने लगे । राजा को इस बात का पता चला । वह भी केवली भगवंत की देशना सुनने के लिए उद्यान में गया ।

धर्मदेशना के श्रवण से राजा के मन में वैराग्य भावना पैदा हुई ! उसने अपने पुत्र को राजगद्दी सौंपकर केवली भगवंत के पास दीक्षा ले ली । उसके भाई कैटभ ने भी पत्नी सहित दीक्षा ले ली । निर्मल संयम धर्म का पालन कर सभी देवलोक में गए ।

देवलोक में अपने आयुष्य को पूर्णकर इन्दुप्रभा का जीव वैताढ्य पर्वत पर **हरिराजा** की महारानी **हरीवती** की कुक्षि से पुत्री के रूप में पैदा हुआ । उसका नाम **कमलमाला** रखा गया ।

यौवन वय प्राप्त होने पर **मेघकूट** के राजा **कालसंवर** के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ ।

मधुराजा का जीव स्वर्ग से च्यवकर **रुक्मिणी** की कुक्षि से **प्रद्युम्नकुमार** के रूप में पैदा हुआ ।

कैटभ का जीव **जांबवती** की कुक्षि से **शांब** के रूप में पैदा होगा ।

हेमरथ राजा मरकर अनेक योनियों में भटककर **धूमकेतु** असुर के रूप में पैदा हुआ ।

अपने विभंगज्ञान से उसने अपने पूर्वभव की पत्नी का अपहरण करनेवाले **प्रद्युम्नकुमार** को देखा और उसी समय उस देव ने उस कुमार का अपहरण कर लिया ।

उस देव ने वह बालक वैताढ्य पर्वत के उद्यान में रख दिया ।

कालसंवर विद्याधर का वहाँ आगमन हुआ और उस राजा ने उस राजकुमार को उठा लिया और जाकर अपनी पत्नी कमलमाला को सौंप दिया ।''

....श्री सीमंधर स्वामी भगवंत के मुख से प्रद्युम्नकुमार के पूर्व भव व अपहरण की रोमांचक घटनाओं को सुनकर नारदजी को खूब आश्चर्य हुआ । प्रद्युम्नकुमार के अस्तित्व का पता लग जाने से उनके आनंद का पार न रहा ।

कालसंवर राजा और कनकमाला महारानी के पालक पुत्र के रूप में प्रद्युम्नकुमार धीरे धीरे बड़ा होने लगा ।

यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही वह सभी प्रकार के शस्त्र व शास्त्र कला में निपुण हो गया । शुक्ल पक्ष के चंद्र की भाँति उसका रूप सौंदर्य खिलने लगा ।

दया, दान, न्याय-नीति, परोपकार आदि सद्गुणों के कारण वह सभी को अत्यंत ही प्रिय बन गया ।

उसके अद्‌भुत पराक्रम को देखकर बलवान शत्रु भी मित्र बन गए । पिता के आदेश को प्राप्तकर विराट सेना को लेकर वह चल पड़ा और उसने सभी विद्याधरों को जीत लिया !

पिता ने बड़े आडम्बर के साथ प्रद्युम्नकुमार का भव्य नगर प्रवेश कराया, तत्पश्चात् उसे युवराज का पद प्रदान किया ।

कालसंवर राजा के अन्य भी 500 स्त्रियाँ थीं । उन सभी के भी पुत्र थे । जब वे पुत्र अपनी-अपनी माता को प्रणाम करने लगे, तब वे माताएँ गुस्से में आकर कहने लगीं, **``तुम सभी को धिक्कार हो ! तुम सब के होते हुए भी एक अज्ञात कुल-शीलवाला व्यक्ति आकर युवराज के पद पर आसीन हो जाता है, अतः तुम्हारे में पराक्रम हो तो किसी भी उपाय से उसे खत्म कर दो ।''**

उन रानियों की यह बात सुनकर उन सभी राजकुमारों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई । उन्होंने अपनी माताओं को आश्वासन देते हुए कहा, ``हम किसी भी उपाय से प्रद्युम्नकुमार को खत्म करके ही रहेंगे ।''

प्रद्युम्नकुमार को खत्म करने की मलिन भावना से उन सभी राजकुमारों ने प्रद्युम्नकुमार के साथ कपटपूर्ण मैत्री का संबंध स्थापित करना प्रारंभ किया । वे उसी के साथ खाना-पीना बैठना-उठना आदि करने लगे ।

एक बार प्रद्युम्नकुमार को मारने के लिए उन राजकुमारों ने उसे भोजन में विष दिया, परंतु वह जहर भी अमृत के रूप में बदल गया । उस विष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा ।

उसके बाद वज्रदंष्ट्र आदि राजकुमार, प्रद्युम्नकुमार को वैताढ्य पर्वत पर ले गए । वहाँ जिन मंदिर में दर्शन-पूजन करने के बाद पर्वत के शिखर पर ले गए ।

पर्वत के शिखर पर एक गुफा थी ।

वज्रदंष्ट्र ने कहा, ``इस गुफा में प्रवेश कर जो कुशलता पूर्वक बाहर आता है उसे मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति होती है ।''

वज्रदंष्ट्र की यह बात सुनकर प्रद्युम्नकुमार ने कहा, ``आप सभी की सहमति हो तो मैं इस गुफा में जाऊँ !''

तत्क्षण अन्य राजकुमारों ने अपनी सहमति प्रदान कर दी ।

प्रद्युम्नकुमार ने उसी समय गर्जना करते हुए उस गुफा में प्रवेश किया और भूमि पर जोर से प्रहार किया ।

प्रहार के साथ ही अधिष्टायक नागकुमार देव प्रगट हुआ और गुस्से में आकर बोला, ``अरे दुष्ट ! पापी ! निर्लज्ज ! तू ने यह क्या कर दिया ? पाँव से प्रहार कर मेरा अपमान कर तूने मृत्यु को आमंत्रण दिया है ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``अरे मूढ़ ! तू मुझे क्यों डराता है, शक्ति हो तो मेरे साथ युद्ध के लिए तैयार हो जा !''

गुस्से में उस देव ने कुमार पर प्रहार करने का प्रयत्न किया, उसी समय कुमार ने मुट्ठी के प्रहार से उस देव को हरा दिया ।

परास्त हुए उस देव ने कहा, ``हे पुरुषोत्तम ! आज से मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हो ।'' इस प्रकार कहकर उसने कुमार को रत्नजड़ित मुकुट प्रदान किया ।

रत्नजड़ित मुकुट से अलंकृत होकर जब प्रद्युम्नकुमार गुफा में से बाहर आया, तब सभी राजकुमारों के आश्चर्य का पार न रहा ।

◆ उसके बाद कालसंवर के पुत्रों ने प्रद्युम्नकुमार को खत्म करने का दूसरा षड्यंत्र रचा । उसे एक भयंकर गुफा में ले गए । परंतु उस गुफा के अधिष्टायक द्वारा प्रद्युम्नकुमार को पुण्य प्रभाव से दो चामर, छत्र और तलवार की प्राप्ति हुई ।

◆ उसके बाद प्रद्युम्नकुमार नागगुफा में गया, वहाँ से भी आत्मरक्षक विद्या की प्राप्ति हुई ।

◆ तत्पश्चात् प्रद्युम्न ने देवता अधिष्ठित बावड़ी में प्रवेश किया, उस देवता द्वारा उसे मकरध्वज की प्राप्ति हुई । उसके बाद कुमार ने देवता अधिष्ठित अग्निकुंड में प्रवेश किया और उसे सुवर्णमय वस्त्र प्राप्त हुए ।

◆ तत्पश्चात् प्रद्युम्नकुमार देवता अधिष्ठित आम्रवृक्ष पर चढ़ा, उस देव ने उसे अमृत कलश, मुकुट और आकाशगामिनी पादुका प्रदान की ।

◆ उसके बाद प्रद्युम्नकुमार ने कपित्थवन में प्रवेश किया । देवता ने उसे कामगज प्रदान किया ।

◆ उसके बाद प्रद्युम्नकुमार पर्वत के शिखर पर गया । वहाँ उसे दिव्य मुद्रिका प्राप्त हुई ।

◆ उसके बाद कुमार शराव पर्वत पर गया । वहाँ के देवता ने कुमार को कंठहार, अंगद व कटक प्रदान किया ।

◆ उसके बाद कुमार शुकराकार पर्वत पर चढ़ा । उस देव ने कुमार को पुष्पधनु व जयशंख प्रदान किया ।

◆ उसके बाद कुमार कमल वन में गया । उस वन के अधिष्ठायक ने कुमार को मनोहर हार प्रदान किया ।

◆ उसके बाद प्रद्युम्न को कालवन में ले गए । उस वन के अधिष्ठायक ने उसे विविध धनुष और बाण प्रदान किये ।

◆ उसके बाद प्रद्युम्न को भीम कंदरा में ले गए । उस कंदरा के अधिपति देव ने प्रद्युम्न को दिव्य पुष्पशय्या प्रदान की !

◆ उसके बाद कुमार को विपुलवन में ले गए । उस वन में उसे अत्यंत रूपवती ``रति'' नाम की कन्या की प्राप्ति हुई । कुमार ने उसके साथ पाणिग्रहण किया ।

◆ बीच मार्ग में शकटासुर ने उसे पुष्पस्थ प्रदान किया ।

इस प्रकार कालसंवर के अन्य पुत्र प्रद्युम्नकुमार की हत्या करना चाहते थे, परंतु कुमार के असीम पुण्योदय से उसे एक साथ क्रमशः सोलह वस्तुओं की प्राप्ति हुई ।

प्रबल पुण्योदय से देवांगना जैसी ``रति'' कन्या को लेकर रथ में आरूढ़ होकर प्रद्युम्नकुमार जब घर आया तब सर्वप्रथम उसने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया । उसके बाद वह प्रणाम करने के लिए अपनी माता के पास गया ।

उसने आदर व बहुमान पूर्वक कनकमाला के चरणों में प्रणाम किया । वह थोड़ी देर के लिए माँ के पास बैठा ।

प्रद्युम्नकुमार के अद्‌भुत रूप व लावण्य को देखकर कनकमाला उसके प्रति मोहित हो गई और कामभोग की प्रार्थना करने लगी ।

कुमार ने कहा, ``आप तो मेरी माता हो...आपको ।

तत्क्षण कनकमाला ने कहा, **``मैं तेरी जन्मदात्री माता नहीं हूँ...मैंने तो सिर्फ तेरा पालन-पोषण किया है ।''**

इतना कहकर रमण उद्यान में कुमार की किस प्रकार प्राप्ति हुई थी, वह सारी घटना उसने बता दी ।

कनकमाला ने कहा, **``यदि तुम मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करोगे तो मैं अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगी और तुमको स्त्री-हत्या का पाप लगेगा ।''**

कनकमाला की इन बातों को सुनकर प्रद्युम्नकुमार को खूब आश्चर्य हुआ ।

कुमार ने अपनी माता को समझाने की कोशिश की, फिर भी कनक-माला अपनी जिद पर अटल रही ।

आखिर अवसर देखकर, प्रद्युम्नकुमार महल में से बाहर आ गया और किसी जंगल में चला गया ।

भाग्ययोग से प्रद्युम्नकुमार को उस जंगल में किसी अवधिज्ञानी महात्मा के दर्शन हो गए ।

कुमार ने आदरपूर्वक महात्मा को प्रणाम किया । महात्मा ने धर्मलाभ की आशिष दी ।

अंत में कुमार ने पूछा, **``कनकमाला मेरी माता है, वह मुझे देखकर कामातुर क्यों हुई ?''**

प्रद्युम्नकुमार का प्रश्न सुनकर ज्ञानी गुरुदेव ने उसके पूर्व के तीसरे मधुराजा के भव का वर्णन किया । उस भव में यह कनकमाला इन्दुप्रभा थी, उस भव में हुए राग-संबंध के कारण ही इस भव में तुम्हें देखकर उसके दिल में कामवासना जागृत हुई है ।

पूर्व के वैरभव के कारण ही हेमरथ राजा, जो बाद में धूमकेतु देव बना, उसने जन्म के बाद तुम्हारा अपहरण किया था ।

मुनिवर ने कहा, ``तुम कनकमाला के पास से युक्ति पूर्वक दो विद्याएँ प्राप्त कर लेना ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``प्रभो ! मेरी माता का मुझे वियोग क्यों हुआ ?''

मुनिवर ने कहा, ``इसी जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र में मगधदेश में **लक्ष्मीपुर** नाम का नगर है, उस नगर में षट्कर्म में निष्णात **सोमशर्मा** ब्राह्मण रहता था । **कमला** नाम की उसकी पत्नी थी ।

एक दिन कमला ने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम **लक्ष्मीवती** रखा गया ।

एक बार लक्ष्मीवती अपने देह का शणगार कर दर्पण में अपना मुँह देख रही थी, उसी समय किसी मुनि भगवंत का आगमन हुआ । **मुनि के मलिन देह व मलिन वस्त्रों को देख उसने मुनि की खूब निंदा की । उस निंदा के फलस्वरूप उसने भयंकर पाप कर्म का बंध किया ।**

उस पापोदय से उसके शरीर में कोढ़ रोग हो गया । आर्त ध्यान में मरकर वह गधी बनी । उसके बाद सुअर, कुत्ती के भव कर, मच्छीमार के यहाँ पुत्री के रूप में पैदा हुई । उसका शरीर अत्यंत दुर्गंधित था ।

गंगा तट पर नाव चलाकर वह अपनी आजीविका चलाती थी ।

एक बार हेमंत ऋतु में गंगा तट पर ठंडी से काँप रहे मुनि की उसने भक्ति की ।

बाद में उसने मुनि को अपने उद्धार का उपाय पूछा । मुनि ने उसे श्रावक धर्म समझाया । उसने श्रावक के व्रत स्वीकार किये ।

एक बार पुनः उसे साध्वीजी भगवंत का परिचय हुआ । साध्वीजी भगवंत के परिचय से धर्म भावना में अभिवृद्धि हुई ।

एक बार एक साध्वीजी म. गुफा में कायोत्सर्ग की साधना कर रही थी, तभी साध्वीजी की सुरक्षा के लिए वह गुफा के बाहर बैठी रही । तभी किसी बाघ ने आकर उसका भक्षण कर लिया ! शुभ ध्यान में मरकर वह दूसरे देव-लोक में गई ।

देवलोक में से आयुष्य पूर्णकर भीष्म राजा की पुत्री रुक्मिणी बनी और उसी की कुक्षि से तुम्हारा जन्म हुआ ।

प्रद्युम्न ने पूछा, ``हमारे बीच वियोग का कारण ?''

मुनिवर ने कहा, **``ब्राह्मण पुत्री लक्ष्मीवती एक बार जंगल में गई थी, वहाँ मोर के बच्चे को पकड़कर माता से उसे सोलह घड़ी तक अलग रखा था । बस, इसी पाप के कारण उसे 16 वर्ष तक पुत्र वियोग की पीड़ा सहन करनी पड़ी ।**

विद्याप्राप्ति

प्रद्युम्नकुमार वापस अपने महल में आ गया । सुंदर अलंकारों से सज धजकर वह पुनः अपनी माता कनकमाला के पास गया ।

कनकमाला ने सोचा, ``अब यह स्वयं मेरे पास आया है, अतः मेरी प्रार्थना का भंग नहीं करेगा ।''

कनकमाला ने कहा, ``तुम मेरी बात मानोगे तो मैं तुम्हें प्रज्ञप्ति और रोहिणी विद्या दूंगी ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``मैंने कब तुम्हारी प्रार्थना का भंग किया है ?''

विश्वास में आकर कनकमाला ने प्रद्युम्नकुमार को दोनों विद्याएँ प्रदान कर दीं ।

उसके बाद प्रद्युम्न ने कहा, ``मैं अपने जन्मदाता माता-पिता के बारे में कुछ भी नहीं जानता हूँ, अतः आप ही मेरी माता और कालसंवर मेरे पिता हैं । मुझे पुत्रयोग्य कार्य कहो, ``मैं अवश्य करूंगा ।''

कनकमाला ने देखा कि यह मेरी बात मानने के लिए तैयार नहीं है, उसी समय उसने स्त्री-चरित्र भजना प्रारंभ किया ।

अपने ही नाखूनों से अपने शरीर के अंगोपांग पर घाव कर लिये और जोर से चिल्लाने लगी ।

उसी समय कालसंवर वहाँ आ गया । कनकमाला ने अपने पुत्र प्रद्युम्न पर ही बलात्कार का झूठा आरोप लगाया ।

इस बात को सुनकर राजा भी गुस्से में आ गया । उसने भी अपने अन्य पुत्रों को बुलाकर उनके सामने प्रद्युम्नकुमार की खूब निंदा की और कहा, ``तुम किसी भी उपाय से उसको मार डालो ।''

पिता की इस भावना को देखकर वे राजकुमार प्रद्युम्नकुमार को जंगल में ले गए और क्रीड़ा के बहाने प्रद्युम्न को बावड़ी में डुबोकर मारने का प्रयत्न करने लगे ।

विद्याबल से कुमार को इस बात का पता लग गया ।

उसने एक को छोड़कर अन्य सभी राजकुमारों को बावड़ी में स्तंभित कर दिया । उस राजकुमार ने नगर में जाकर पिता से बात कही ।

गुस्से में आकर कालसंवर भी चतुरंगिणी सेना के साथ वहाँ आ गया ।

प्रद्युम्न ने भी विद्या के बल से सेना उत्पन्न कर दी । इस युद्ध में कालसंवर की सेना पीछे हटने लगी, तभी कालसंवर रोहिणी व प्रज्ञप्ति विद्याओं को लेने के लिए कनकमाला के पास आया ।

कनकमाला ने कहा, ``ये विद्याएँ तो मैं प्रद्युम्न को दे चुकी हूँ !''

राजा ने प्रद्युम्न को मार डालने के लिए भरसक प्रयत्न किये...परंतु कुमार ने नागास्त्र का उपयोग किया ।

उसी समय नारदजी का वहाँ आगमन हो गया ।

नारदजी ने उन दोनों को समझा-बुझाकर शांत किया ।

युद्ध शांत हो गया ।

प्रद्युम्न ने नारदजी को कहा, ``यहाँ मेरा कौन है ?''

नारदजी ने कहा, ``द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण तुम्हारे पिता हैं और रुक्मिणी तुम्हारी माता है । अब द्वारिका चलो ।''

प्रद्युम्न ने द्वारिका जाने के लिए हाँ भर दी ।

नारदजी ने कहा, ``अब शीघ्र ही द्वारिका चलते हैं ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``यहाँ से विदाई के पूर्व मैं अपने माता-पिता को मिलकर आ जाता हूँ ।''

इस प्रकार नारदजी को कहकर प्रद्युम्न पुनः अपने महल में आया । उसके बाद वह माता-पिता के चरणों में नमस्कार करके बोला, **``अज्ञानतावश मैंने आपका जो अपराध किया है, अतः आप मुझे क्षमा करें ।''** अभी तक मैं आपको ही जन्मदाता माता-पिता के रूप में मान रहा था । अब आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने जन्मदाता माता-पिता के दर्शन करूँ !''

प्रद्युम्न के इस विनय को देखकर कालसंवर और कनकमाला दोनों लज्जित हुए ।

उन्होंने प्रद्युम्न को अपनी मूक सहमति प्रदान की । उसके बाद कुमार ने नगर से विदाई ली । सभी नगरवासी प्रद्युम्न के गुणगान कर रहे थे ।

कुमार ने कहा, ``नारदजी ! यहाँ से द्वारिका कितनी दूर है ?''

नारद ने कहा, ``यह तो वैताढ्य पर्वत है, यहां सिर्फ खेचर ही रहते हैं । यहाँ से द्वारिका काफी दूर है । अतः पैदल जाना शक्य नहीं है । मैं एक विमान की रचना कर देता हूँ, उस विमान में बैठकर हम चले जाएंगे ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``आप जल्दी विमान की रचना करें ।'' थोड़ी ही देर में विद्याबल से नारदजी ने विमान की रचना कर दी !

प्रद्युम्न ने कहा, ``क्या यह विमान हम दोनों के भार को वहन कर पाएगा ?''

नारदजी ने कहा, ``क्यों नहीं ? हमारा भार तो इसके लिए अर्क तुल्य है । यह तो हम से हजार गुणा भार वहन करने में समर्थ है ।''

नारदजी की बात सुनकर प्रद्युम्न ने विमान में बैठने का प्रयास किया । परंतु यह क्या ! वह विमान तो उसी समय चूर चूर हो गया ।

प्रद्युम्न ने कहा, ``आप तो देश-विदेश में घूमते हो, ऐसा क्या विमान बनाया ?''

नारद ने कहा, ``मैं तो वृद्ध हो चुका हूँ, अब तुम ही विमान तैयार कर लो ।''

उसी समय प्रद्युम्न ने एक भव्य विमान की रचना की । दोनों उस विमान में आरूढ़ हो गए ।

उसके बाद प्रद्युम्न ने विमान चालू किया । विमान की गति धीमी होने से नारदजी ने कहा, ``वत्स ! थोड़ी गति बढ़ाओ । तुम्हारी माता तुम्हारे वियोग में अत्यंत ही दुःखी है ।''

नारदजी की बात सुनकर प्रद्युम्न ने विमान की गति इतनी अधिक बढ़ा दी कि नारदजी खूब परेशान हो गए ।

नारदजी ने कहा, ``वत्स ! तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारे माता-पिता आदि सभी मेरा आदर करते हैं और तुम मुझे परेशान क्यों करते हो ?''

यह सुनकर प्रद्युम्न ने विमान को रोक दिया और बोला, ``मैं विमान को धीरे चलाता हूँ तो आप कहते हैं-तेज चलाओ और तेज चलाता हूँ तो कहते हैं, धीरे चलाओ । अब मैं अकेला ही कहीं चला जाऊंगा । आप कहीं भी जा सकते हैं ।''

नारदजी ने कहा, ``तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे विवाह के लिए अत्यंत ही उत्सुक हैं अतः तुम देरी मत करो ।''

विवाह की बात सुनकर प्रद्युम्न तुरंत ही तैयार हो गया !

विमान तीव्र गति से आगे बढ़ने लगा । बीच मार्ग में नारदजी प्राकृतिक दृश्य दिखाने लगे ।

नारदजी ने कहा, **``तुम्हारे जन्म के पूर्व कृष्ण और दुर्योधन के बीच बातचीत हुई थी । उसके अनुसार तुम्हारे जन्म के साथ ही दुर्योधन की पुत्री उदधि का तुम्हारे साथ पाणिग्रहण करने का निश्चय हुआ था । परंतु जन्म के बाद तुम्हारा अपहरण हो जाने से अब उस कन्या का लग्न सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार के साथ होने वाला है ।**

प्रद्युम्न ने कहा, ``नारदजी ! उस कन्या को देखना चाहता हूँ, अतः आप यहीं ठहर जाइए ।'' इतना कहकर प्रद्युम्नकुमार विमान में से बाहर आ गया और उसने भील का रूप कर लिया ।

दुर्योधन के सैन्य के साथ वह कन्या द्वारिका जा रही थी ।

विकराल आकृतिवाले भील के रूप में रहे प्रद्युम्नकुमार ने उस वन से आगे बढ़ती हुई सेना को रोक दिया और कहा, ``मैं विष्णु का शुल्कधर हूँ, आप अपना कर दिये बिना आगे नहीं जा सकोगे !''

सैनिकों ने कहा, ``तू कृष्ण का सेवक है तो हमें परेशान क्यों करता है । जो भी हाथी-घोड़ा पसंद हो, वह ले सकोगे ।''

उसने कहा, ``मुझे हाथी घोड़ा नहीं चाहिए, मुझे तो मेरी मनपसंद वस्तु चाहिए ।''

किसी सैनिक ने मजाक करते हुए कहा, ``इस सेना में सबसे श्रेष्ठ वस्तु तो राजपुत्री है, वह तुम ले लो ।''

भील ने कहा, ``तब तो बहुत अच्छा होगा । ऐसे भी इस जंगल में मैं अकेला हूँ ।''

बात ही बात में भील और कौरव सेना के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया ।

प्रद्युम्न ने अपनी विद्या के बल से विराट् भीलसेना तैयार कर दी ।

प्रद्युम्न के पराक्रम के आगे कौरव सेना टिक नहीं सकी । आखिर भील रूप में रहे प्रद्युम्न ने वह कन्या उठा ली और उसे लेकर नारदजी के पास आ गया ।

भील के विकराल रूप से भयभीत बनी वह कन्या नारदजी के आगे रोती हुई बोली, ``हे नारदजी ! आप तो दयालु हो ! मैंने गत भव में ऐसा कौन सा पाप किया होगा, जिस कारण एक भील के साथ मेरा विवाह संबंध हो रहा है । मैं तो जन्म के साथ ही रुक्मिणी-पुत्र को दी जा चुकी थी, परंतु जन्म से ही उनका अपहरण हो जाने से अब सत्यभामा के पुत्र के साथ मेरा

विवाह होने जा रहा था । परंतु बीच मार्ग में इस भील ने मुझे पकड़ लिया, अब मेरा रक्षण कैसे होगा ? अब तो मैं प्राणत्याग कर दूंगी ।''

उदधि की इन बातों को सुनकर नारदजी ने आश्वासन देते हुए कहा, **''पुत्री ! तू हर्ष के स्थान में शोक क्यों करती है ? यह भील नहीं है किंतु रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्नकुमार ही हैं ।''**

इधर नारदजी ने भील रूप में रहे प्रद्युम्नकुमार को अपना मूल स्वरूप प्रकट करने के लिए निवेदन किया । उसी समय उस कन्या के संतोष के लिए कुमार ने अपना मूल स्वरूप प्रकट किया ।

प्रद्युम्नकुमार के अद्‌भुत रूप को देख कन्या के आश्चर्य का पार न रहा । अहो ! मृत्युलोक में इससे बढ़कर रूप किसी का नहीं हो सकता । ये तो कामदेव के साक्षात् अवतार लगते हैं ।

कुछ देर पूर्व विलाप करती वह कन्या एकदम शांत हो गई और अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगी ।

उसके बाद नारदजी व अपनी भावी पत्नी के साथ प्रद्युम्नकुमार आगे बढा ।

क्रमशः आगे बढ़ते हुए द्वारिका नगरी में पहुँच गए । नारदजी कुमार को द्वारिका नगरी का वर्णन करने लगे ।

प्रद्युम्न ने कहा, ``आप यहीं रहें, मैं अकेला ही द्वारिका नगरी की समृद्धि देख आता हूँ !''

नारदजी ने कहा, ``यहाँ के यादव खूब बलवान हैं, अतः आप अकेले न जाएँ ! पहले माता-पिता से मिल लो, फिर उसके बाद नगरी में घूमना ही है न !''

कुमार ने कहा, ``एक बार माता-पिता को मिलने के बाद द्वारिका नगरी देखने को नहीं मिलेगी, अतः आप मुझे अभी जाने दो ।''

नारदजी की इच्छा नहीं होते हुए भी आखिर उन्हें स्वीकृति देनी पड़ी ।

द्वारिका में अद्‌भुत पराक्रम

प्रद्युम्नकुमार ने एक वृद्ध घुड़सवार का रूप किया और वह द्वारिका नगरी के राजमार्ग पर आगे बढ़ा । उसी समय सत्यभामा का पुत्र भानुकुमार अपने मित्रों के साथ खेलने के लिए जा रहा था ।

एक वृद्ध के पास तेजस्वी अश्वरत्न को देखकर भानुकुमार को खूब आश्चर्य हुआ ।

भानुकुमार ने कहा, ``यह घोड़ा किसका है ?''

वृद्ध ने कहा, ``यह मेरा अश्वरत्न है । मैं यह घोड़ा बेचना चाहता हूँ ।''

``क्या कीमत है इसकी ?''

``एक करोड़ सोना मोहर !''

कीमत सुनकर भानुकुमार आश्चर्यचकित हो गया । उसने कहा, ``एक घोड़े की इतनी कीमत ?''

वृद्ध ने कहा, ``शंका हो तो इसकी परीक्षा कर लो ।''

परीक्षा के लिए भानुकुमार उस अश्व पर सवार हुआ । उसने मैदान के तीन चक्कर लगाए, जैसे ही चौथा चक्कर लगाया, उसके शरीर पर रहे आभूषण नीचे गिरने लगे और पाँचवें चक्कर में तो वह खुद ही भूमि पर गिर पड़ा । अन्य राजकुमारों के साथ वह वृद्ध भी हँसने लगा । वह घोड़ा उस वृद्ध के पास पहुँच गया ।

वृद्ध ने कहा, ``आपको घुड़सवारी करना आती नहीं है, यह कला मुझ से सीखनी चाहिए ।''

भानुकुमार ने कहा, ``तुम अपनी कला बताओगे ?''

``क्यों नहीं ?''

वृद्ध ने भानुकुमार के साथियों को कहा, ``तुम मुझे इस घोड़े पर बिठा दो ।''

वे कुमार उस वृद्ध को घोड़े पर बिठाने लगे । परंतु यह क्या ! वह तो धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा !

दो-तीन बार उस वृद्ध को घोड़े पर बिठाने की कोशिश की परंतु वह हर बार नीचे गिरता रहा ।

अंत में, भानुकुमार की छाती पर ही पैर रखकर वह घोड़े पर चढ़ गया और कुछ ही क्षणों में वह पवनवेग की तरह आकाश में उड़ने लगा ।

उस वृद्ध की इस अश्वकला को देख सभी राजकुमार दिग्मूढ़ हो गए !

◆ आगे चलकर प्रद्युम्नकुमार सत्यभामा के उद्यान में आ गया । उद्यान के पास आकर उसने विद्याबल से सात घोड़े बनाए और स्वयं उन घोड़ों का रक्षक बना ।

अश्वरक्षक उन घोड़ों को सत्यभामा के उद्यान के पास ले आया और उद्यानपाल को कहा, ``ये मेरे घोड़े भूखे हैं, इन्हें इस उद्यान में घास चरने दो ।''

उद्यानपाल ने कहा, ``अरे ! यह सत्यभामा का वन है, इसमें प्रवेश करने की सख्त मनाई है ।''

उसी समय अश्वरक्षक ने उद्यानपाल को एक सोने की अँगूठी दे दी !

बस, अँगूठी मिलते ही उद्यानपाल ने कहा, ``नदी के तट पर की घास चराना ।''

उद्यानपाल थोड़ा दूर चला गया ! इधर वे घोड़े उद्यान के सभी वृक्षों के फल खा गए । सारी लताएँ नष्ट कर दीं-और सभी बावड़ियों का जल पी गए ।

उसके बाद चांडाल और बंदर का रूपकर प्रद्युम्नकुमार ने उद्यानपाल से बंदर के लिए एक फल माँगा । उद्यानपाल ने मना कर दिया ।

प्रद्युम्न ने वह बंदर उद्यान में छोड़ दिया । उद्यानपाल उसे मारने के लिए दौड़ा-उस समय प्रद्युम्न ने विद्या के बल से हजारों बंदर खड़े कर दिये और उद्यान को तहस-नहस कर दिया ।

◆ द्वारिकानगरी में भानुकुमार के लग्न की तैयारी चल रही थी । भानुकुमार सुवर्ण रथ में बैठा हुआ था । रथ पर ध्वजा फरक रही थी । भानुकुमार के विवाह के लिए कुंभकार के घर से मंगल कलश लाए जा रहे थे ।

प्रद्युम्नकुमार ने चांडाल का रूप किया । उसने एक रथ तैयार किया । उस रथ में एक गधा और एक ऊँट जुता हुआ था ।

भानुकुमार के रथ के सामने ही, वह चांडाल अपना रथ ले गया और बहुत जोर से भानुकुमार के रथ को टक्कर लगा दी । इस टक्कर से भानुकुमार के रथ में रहे सभी मंगल कलश टूटकर चूर-चूर हो गए ।

◆ प्रद्युम्नकुमार घूमता हुआ एक बावड़ी के पास आया । उसने ब्राह्मण का रूप किया ।

ब्राह्मण ने किसी से पूछा, ``यह बावड़ी किसकी है ?''

किसी ने कहा, ``यह तो सत्यभामा की बावड़ी है ।''

ब्राह्मण ने कहा, ``मैं इस बावड़ी में स्नान करना चाहता हूँ ।''

बावड़ी के इर्दगिर्द रही स्त्रियों ने कहा, ``इस बावड़ी में तो सिर्फ कृष्ण, सत्यभामा और भानुकुमार ही स्नान करते हैं ।''

ब्राह्मण ने कहा, ``मैं भी कृष्ण का बड़ा बेटा हूँ, तुम मुझे बावड़ी में स्नान करने से क्यों रोकते हो ?''

आगे चलकर ब्राह्मण ने कहा, ``दुर्योधन ने अपनी पुत्री भानुकुमार के लिए भेजी थी, परंतु बीच मार्ग में भीलों ने वह कन्या उन कौरवों के पास से लेकर अपने नायक को दे दी !''

उस नायक ने सोचा, ``यह कन्या तो किसी राजकुमार के योग्य है ।'' उस समय मैं वहाँ उपस्थित था, उस भील नायक ने वह कन्या मुझे सौंप दी है ।''

उन स्त्रियों ने कहा, ``तुम ब्राह्मण होकर झूठ क्यों बोलते हो ?''

उस समय वह ब्राह्मण सभी को दूरकर बावड़ी में चला गया । वे स्त्रियाँ ब्राह्मण को पीटने लगीं । ब्राह्मण के शरीर का स्पर्श होने से वे स्त्रियाँ अत्यंत रूपवती बन गईं ।

वे स्त्रियाँ उस ब्राह्मण की प्रशंसा करने लगीं । तभी उस ब्राह्मण ने उस बावड़ी में से अपने कमंडल में पानी भर लिया और उसके साथ ही वह बावड़ी सूख गई । वह ब्राह्मण वहाँ से चल पड़ा ।

बावड़ी को सूखी देखकर कुछ लोग उस ब्राह्मण के पीछे पड़े । ब्राह्मण ने अपना कमंडल फोड़ दिया और वहाँ गंगा जैसी नदी बहने लगी । नदी में डूबने के भय से लोग वहाँ से भाग गए ।

वहाँ से प्रद्युम्न आगे बढ़ा ।

◆ आगे चलने पर कृष्ण के पिता वसुदेव का महल दिखाई दिया । वसुदेव को मेषयुद्ध अत्यंत प्रिय था, अतः एक विलक्षण मेष को लेकर ब्राह्मण ने वसुदेव के भवन में प्रवेश किया ।

वसुदेव ने पूछा, ``यह किसका मेष है ?''

``यह तो मेरे राजा का है, आपको बताने के लिए लाया हूँ, यह लड़ने में बहुत होशियार है ।''

राजा ने कहा, ``यह मेष मेरे घुटने पर प्रहार करे तो इसके बल का पता लग जाएगा ।''

उसी समय उस मेष ने वसुदेव के घुटने पर इतने जोर से प्रहार किया कि वसुदेव भूमि पर गिर पड़े ।

इसके बाद वह मेष और वह ब्राह्मण वहाँ से गायब हो गए ।

◆ आगे चलकर प्रद्युम्न सत्यभामा के महल के पास आया, वहाँ पर भानुकुमार के लग्न निमित्त भोजन की तैयारी चल रही थी ।

प्रद्युम्न ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप किया, उसके बाद वह भोजन मंडप की ओर भोजन के लिए आगे बढ़ा । वहाँ उसने एक कुब्जा दासी को अपनी विद्या के बल से ठीक कर दिया और उसे रूपवती बना दिया ।

दासी ने भवन में प्रवेश किया ।

सत्यभामा ने कहा, ``तेरा यह रूप कैसे बदल गया ?''

दासी ने ब्राह्मण का नाम लिया ।

सत्यभामा ने उस ब्राह्मण को अंदर बुलाया और उसे आसन प्रदान किया ।

ब्राह्मण ने उसे **``सौभाग्यशालिनी भव''** का आशीर्वाद दिया ।

सत्यभामा ने कहा, ``आप मेरे सौंदर्य को बढ़ा दो ।''

ब्राह्मण ने कहा, ``यदि ऐसा है तो पहले आप अत्यंत बेडोल बन जाओ ! मस्तक का मुंडन कराकर मैले कपड़े पहिन लो और अपने पूरे शरीर पर काली स्याही लगा दो ।''

सत्यभामा ने वैसा ही किया ।

उसके बाद ब्राह्मण की सूचना से सत्यभामा कुल देवता के मंदिर में मंत्र जाप करने लगी ।

ब्राह्मण ने कहा, ``मुझे भूख लगी है, भोजन दो ।

सत्यभामा ने कहा, ``भोजन खंड में जाकर भोजन कर लो ।''

वहाँ अन्य भी ब्राह्मण थे । उसने विद्या के बल से उन ब्राह्मणों को परस्पर लड़ा दिया और स्वयं अकेला ही भोजन के लिए बैठ गया ।

विवाह के लिए जितनी रसोई बनाई थी, वह सब रसोई वह ब्राह्मण खा गया ।

उसकी यह स्थिति देख, लोगों ने सोचा, ``यह कोई भूत लगता है ।''

थोड़ी देर में ब्राह्मण वहाँ से अदृश्य हो गया ।

रुक्मिणी के महल में

ब्रह्मचारी निर्मल साधु का रूप कर प्रद्युम्न ने अपनी माता रुक्मिणी के भवन में प्रवेश किया ।

उस साधु ने रुक्मिणी को प्रणाम किया और फिर भोजन की मांग की ।

रुक्मिणी ने कहा, ``मेरे यहाँ भोजन नहीं बनता है, जब से मेरे पुत्र का अपहरण हुआ है तब से मैं मंत्रजाप में लीन हूँ !''

देवी ने कहा था-जब वृक्ष पर आम्र फल लगेंगे, तब तुझे पुत्र के दर्शन होंगे ।

परंतु वृक्ष पर फल आ गए हैं लेकिन पुत्र के दर्शन नहीं हो पाए हैं ।

साधु ने कहा, ``आपके घर में जो सिद्ध अन्न हो, वह दे दो ।''

रुक्मिणी ने कहा, ``मेरे घर में लड्डू हैं लेकिन वे तो कृष्ण सिवाय कोई पचा नहीं सकता है, आप लोगे तो ऋषि-हत्या का पाप लगेगा ।''

ब्राह्मण ने कहा, ``आप चिंता न करें ।''

बस, वह साधु सब लड्डू खा गया फिर भी उसे कुछ भी असर नहीं हुआ ।

रुक्मिणी के आश्चर्य का पार न रहा ।

बाल ब्रह्मचारी साधु को देखते-देखते रुक्मिणी की छाती भर आई । उसके स्तनों में से दूध झरने लगा ।

वह सोचने लगी, ``क्या यह मेरा पुत्र है ?'' उसने साधु के माता-पिता, कुल आदि के बारे में पूछा ।

साधु ने कहा, ``आप तो जैनधर्म में प्रवीण हो, ये बातें साधु को नहीं पूछी जाती हैं । फिर भी आपका आग्रह है तो कहता हूँ आप ही मेरी माता हैं, कृष्ण मेरे पिता हैं और यादव मेरे भाई हैं ।''

इधर सत्यभामा ने रुक्मिणी के पास दासियों के साथ हजाम को बाल उतारने के लिए भेजा ।''

हजाम को देखकर रुक्मिणी घबरा गई । रुक्मिणी की आँखों में आँसू आ गए ।

उसी समय प्रद्युम्न ने कंचुकी का वेष धारण किया और विद्याबल से

रुक्मिणी का प्रतिबिंब बना दिया । जैसे ही हजाम रुक्मिणी के बाल काटने के लिए तैयार हुआ, वैसे ही उसका नाक कट गया ।

सत्यभामा ने दासी को भेजकर बलराम को शिकायत की तो बलराम ने कहलाया, ``अभी मेरे नौकर रुक्मिणी के घर को लूट लेंगे और उसके बाल उतार देंगे ।''

बलराम के नौकर जैसे ही रुक्मिणी के द्वार के पास आए, प्रद्युम्न ने उन सभी को स्तंभित कर दिया ।

ये समाचार मिलते ही बलराम स्वयं वहाँ आए । ``प्रद्युम्न ने सिंह का रूप कर पंजे से ऐसी थप्पड़ लगाई कि वे नीचे गिर पड़े ।''

पुत्र की विद्या से खुश होकर रुक्मिणी ने कहा, ``नारद मुनि कहाँ हैं ?''

प्रद्युम्न ने कहा, ``वे आपकी पुत्रवधू की रक्षा कर रहे हैं ।''

``बेटा ! तू ने शादी कब की ?''

प्रद्युम्न ने कहा, ``दुर्योधन ने भानुकुमार के लिए जो पुत्री भेजी थी, भील का रूप कर मैंने उसको उठा लिया । पूर्व की शर्त के अनुसार मैंने उस कन्या के साथ शादी की है ।''

प्रद्युम्न ने कहा, ``मैं अपने परिचय के लिए पिता से युद्ध खेलना चाहता हूँ ।'' इतना कहकर वह माता को हाथ से उठाकर, कृष्ण की सभा के सामने जोर से बोला, ``तुम लोग चुप क्यों बैठे हो ? मैं रुक्मिणी का अपहरण कर रहा हूँ । शक्ति हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ।''

प्रद्युम्न ने विद्याबल से सेना तैयार कर दी । दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । हजारों सैनिक मरने लगे ।

अंत में कृष्ण स्वयं रथ में आरूढ़ होकर लड़ने के लिए आए । प्रद्युम्न भी सामने आ गया ।

उसी समय कृष्ण की दाहिनी आँख फरकने लगी । कृष्ण सोचने लगे, ``इसने मेरी पत्नी का अपहरण कर लिया, फिर भी मेरे दिल में स्नेह क्यों उमड़ रहा है ?''

प्रद्युम्न ने कहा, **``युद्ध में स्नेह प्रदर्शन तो कायरता है ।''**

बस, दोनों के बीच पुनः घमासान युद्ध हुआ । आखिर नारदजी बीच में पड़े और कृष्ण के पास जाकर बोले, ``यह तो आपका ही पुत्र है ।''

प्रद्युम्न को जाकर कहा, **``यह बालचेष्टा छोड़ दो । पिता का आदर करना ही उचित है ।''**

प्रद्युम्न, कृष्ण के पास आ गया और पिता के चरणों में गिर पड़ा । कृष्ण ने भी उसे आशीर्वाद दिया ।

प्रद्युम्न ने युद्ध में मरे हुए सभी को पुनः विद्याबल से जीवित कर दिया ।

प्रद्युम्न को पाकर बलदेव, वसुदेव तथा समुद्रविजय आदि खुश हो गए ।

उसके बाद रुक्मिणी और प्रद्युम्न की पत्नी को भी वहाँ लाया गया ।

समस्त द्वारिका नगरी को सजा दिया गया । तब प्रद्युम्न के साथ कृष्ण ने नगरप्रवेश किया ।

प्रद्युम्न की सूचना से वैताढ्य पर्वत पर से पालक माता-पिता काल-संवर और कनकमाला आदि को भी बुलाया गया । फिर अनेक राजकन्याओं के साथ प्रद्युम्न का पाणिग्रहण हुआ ।

अनन्तर भानुकुमार का भी अन्य राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ ।

◆ एक शुभ दिन महाशुक्र विमान में से कैटभ देव का च्यवन हुआ और जांबवती की कुक्षि में उसका अवतरण हुआ ! गर्भ काल व्यतीत होने पर उसने एक अत्यंत ही तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । उस बालक का नाम **शांब** रखा गया ।

कुछ काल बाद सत्यभामा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम **सुभानु** रखा गया ।

धीरे-धीरे शांब व सुभानु बड़े होने लगे । शांब प्रकृति से अत्यंत ही उदार था । जो भी संपत्ति उसे प्राप्त होती, दान में उसका उपयोग कर लेता था । नगर में चारों ओर एक दानेश्वरी के रूप में उसकी ख्याति फैल गई ।

शांब के सत्त्व आदि गुणों की परीक्षा करने के लिए कृष्ण ने एक मास के लिए अपना साम्राज्य शांब को दे दिया...परंतु राज्यप्राप्ति के बाद तो शांब अत्यधिक कामुक और विलासी बन गया ।

नगर की स्त्रियों के साथ वह दुर्व्यवहार करने लगा । आखिर 1 मास

की समाप्ति के बाद कृष्ण ने राज्यसत्ता अपने हाथ में ले ली और विलासी शांब को देशनिकाले की सजा कर दी । कुछ समय बाद वापस उसे नगर में ले लिया ।

एक बार प्रद्युम्न ने सुभानु को खूब हैरान किया । उसने आकर माँ को शिकायत की ।

गुस्से में आकर सत्यभामा ने कहा, ``शांब की तरह तू भी नगर छोड़कर क्यों नहीं जाता है ?''

प्रद्युम्न ने पूछा, ``कहाँ जाऊँ ?''

श्मशान में ।

``वापस कब आऊँ ?''

``जब मैं अपने हाथों से शांब को पकड़कर लाऊँ, तब तू आ जाना ।''

``जैसी आपकी आज्ञा !'' कहकर प्रद्युम्न नगर छोड़कर श्मशान भूमि में आ गया । शांब भी वहाँ आ गया ।

◆ एक बार श्रीकृष्ण ने नेमिनाथ प्रभु को पूछा— **``हे प्रभो ! उत्पत्ति, स्थिति और विनाश यह वस्तु मात्र का स्वभाव है तो इस द्वारिका का नाश स्वाभाविक होगा या किसी निमित्त विशेष से होगा ?''**

नेमिनाथ प्रभु ने कहा, ``शराब के नशे में चकचूर शांब आदि कुमार द्वैपायन ऋषि को मारेंगे । वह तापस देव बनकर यादव सहित इस नगरी का नाश करेगा...और तुम्हारे भाई जराकुमार के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी ।''

इस बात को सुनकर जराकुमार को अत्यंत ही आघात लगा । अहो ! मैं वसुदेव का पुत्र होकर अपने भाई का ही घातक बनूंगा । इस प्रकार विचार कर वह द्वारिका छोड़कर जंगल में चला गया ।

मदिरापान की अनर्थता जानकर श्रीकृष्ण ने समस्त द्वारिका में मदिरापान पर प्रतिबंध लगा दिया और नगर में जो भी दारु था, वह भी कदंबवृक्ष के पास शिलाकुंड में फिंकवा दिया ।

वृक्षों के फूल गिरने से वह दारु और अधिक तेज हो गया ।

एक बार शांब घूमता हुआ वहाँ पहुँच गया और शराब देखकर उसका मन ललचा गया । उसने पेट भरकर शराब पी ली ।

शराब के नशे में चकचूर बनकर नाचता-कूदता हुआ जा रहा था, तभी बीच मार्ग में उसने द्वैपायन ऋषि को देखा ।

उस ऋषि को देखकर शाम्ब बोला, ``अरे ! यह ऋषि तो हमारे कुल का विध्वंसक है, अतः इसे मार डालो ।''

शाम्बकुमार की बात सुनते ही सभी कुमार उस ऋषि को पत्थर, लकड़ियों व मुष्टियों से मारने लगे ।

कुमारों के प्रहार से वह ऋषि जमीन पर ढल पड़ा । उसे मृतप्राय जानकर सभी यादवकुमार द्वारका में आ गए ।

श्री कृष्ण को ज्योंही इस बात का पता चला, वह बलदेव को साथ लेकर द्वैपायन ऋषि के पास आए और ऋषि को शान्त करने के लिए मधुर वचन कहने लगे-**``हे महर्षे ! क्रोध तो आत्मा का भयंकर शत्रु है, वह एक जन्म में नहीं, किन्तु लाखों जन्म तक आत्मा को दुःख पहुँचाता है, अतः मद्यपान से अन्धे बने हमारे पुत्रों ने जो कुछ भी अपराध किया है, उसे आप क्षमा करें, क्योंकि आपके जैसे महर्षियों के लिए कोप करना उचित नहीं है ।''**

श्रीकृष्ण के समझाने पर भी द्वैपायन ऋषि शान्त नहीं हुआ । वह बोला, ``हे कृष्ण ! ये बातें अब रहने दो, तुम्हारे पुत्रों ने मुझे जो भयंकर मार लगाई, उस समय मैंने समस्त लोकों के साथ द्वारिका का विनाश करने का संकल्प किया है, अतः अब तुम दोनों को छोड़कर अन्य किसी का छुटकारा नहीं हो सकेगा ।''

बलदेव के आग्रह से श्रीकृष्ण पुनः महल में आ गए ।

श्रीकृष्ण ने द्वारिका में आकर समस्त प्रजाजनों को द्वैपायन ऋषि के निदान की बात कह दी और साथ में कहा-**``हे प्रजाजनो ! तुम सब लोग धर्म-कर्म में अधिक तत्पर बन जाओ । धर्म की प्रचण्ड शक्ति है ।''** श्रीकृष्ण महाराजा के वचन सुनकर सभी प्रजाजन धर्म-कार्य में अधिक तत्पर बन गए ।

शाम्ब आदि की दीक्षा

कुछ समय बाद नेमिनाथ प्रभु पुनः द्वारिका पधारे । प्रभु की वैराग्यमय धर्मदेशना का श्रवण कर शाम्ब, प्रद्युम्न, उत्सुक, सारण आदि अनेक यादव-

कुमारों ने तथा जाम्बवती, रुक्मिणी आदि अनेक यादव-स्त्रियों ने प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार ली ।

अन्त में श्रीकृष्ण ने पूछा-``प्रभो ! द्वारिका का नाश कब होगा ?''

प्रभु ने कहा-``आज से बारह वर्ष के बाद द्वैपायन द्वारिका का नाश करेगा ।''

श्रीकृष्ण सोचने लगे-``धन्य है समुद्रविजय आदि बन्धुओं को जिन्होंने पहले ही दीक्षा स्वीकार कर ली, मैं मन्दभागी हूँ कि दीक्षा नहीं ले सका ।''

द्वारिका-नाश

द्वैपायन ऋषि निदान करके मरकर भवनपति निकाय में वह्निकुमार देव बना । द्वारिका के प्रजाजन भी आयंबिल उपवास-छट्ठ-अट्ठम आदि विविध प्रकार के तप करने लगे । लोगों के तप धर्म के प्रभाव से द्वैपायन देव द्वारिका-नाश का इच्छुक होने पर भी द्वारिका का नाश न कर सका । इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए ।

लोगों ने सोचा-``तप आदि के प्रभाव से पापात्मा द्वैपायन ऋषि का प्रभाव नष्ट हो चुका है, अतः अब किसी प्रकार का भय रखने की आवश्यकता नहीं है ।'' सभी यादवों ने धर्मप्रवृत्ति के प्रति उपेक्षा कर दी और इच्छापूर्वक मद्यपान आदि करने लगे ।

भवितव्यता बलवान होती है । विनाशकाल निकट आने पर यादव लोग स्वतः धर्मप्रवृत्ति से निवृत्त हो गए ।

बस, द्वैपायन ऋषि देव को अवसर हाथ लग गया और उसने समस्त द्वारिका में आग लगा दी ।

चारों ओर आकाश में उल्कापात होने लगा । पृथ्वी काँपने लगी । चारों ओर धुआँ फैलने लगा । अकालसमय में सूर्य और चन्द्र के ग्रहण होने लगे । भयंकर संवर्तक वायु के प्रकोप से बड़े-बड़े वृक्ष भी नीचे गिरने लगे, ऐसा लग रहा था मानों, सम्पूर्ण द्वारिका एक चिता बन गई हो । आग की लपटें आकाश को छूने लगीं । भय के मारे लोग इधर-उधर भागने लगे, फिर भी आग की लपटों से कोई बच न सका ।

बालक, वृद्ध और स्त्रियों के करुण रुदन से समस्त वातावरण

गमगीन बन गया । बलराम और श्रीकृष्ण के हल-मुशल चक्र आदि शस्त्र भी नष्ट हो गए ।

इसी बीच बलदेव और कृष्ण ने वसुदेव, देवकी और रोहिणी को बचाने के लिए रथ में बिठा दिया और नगर के द्वार की ओर आगे बढ़ने लगे । कुछ दूर चलने के बाद अश्व स्तम्भित हो गए । अश्वों को दूर कर श्रीकृष्ण और बलदेव स्वयं रथ को खींचने लगे । भवितव्यतावश उसी समय रथ की धुरी भी तड्-तड् आवाज करती हुई टूट गई ।

दीनता से रुदन करते हुए वसुदेव आदि के रथ को श्रीकृष्ण द्वार तक ले आए । इसी बीच दरवाजे बन्द हो गए । बलदेव ने अपने पाद-प्रहार से उन दरवाजों को तोड़ दिया, फिर भी रथ आगे नहीं बढ़ सका ।

तभी द्वैपायन देव ने आकर कहा, ``हे श्रीकृष्ण ! तुम व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो । तुम दोनों के सिवाय इस आग से कोई भी बचनेवाला नहीं है ।''

यह सुनकर वसुदेव-देवकी ने कहा-``हे पुत्रो ! तुम अपना प्रयत्न छोड़ दो । भवितव्यता बलवान और दुर्लंघ्य है । हम अभागे हैं कि हमने प्रभु के पास दीक्षा नहीं ली ।''

अपना मरण निकट जानकर वसुदेव-देवकी व रोहिणी ने नेमिनाथ प्रभु की शरणागति स्वीकार की । पंचपरमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण किया । उसी समय द्वैपायन देव ने उन पर अग्नि की वर्षा की । वे तीनों शुभध्यान में समाधिपूर्वक मरकर देव बने ।

बलदेव और श्रीकृष्ण नगर के बाहर आकर जीर्ण उद्यान में खड़े होकर द्वारिका के विनाश को अपनी आँखों से देख रहे थे । द्वारिका नगरी के राजमहल, माणक-स्तम्भ, चन्दन के स्तम्भ आदि धू-धू कर जल रहे थे । समस्त नगरी अग्निमय बन गयी थी ।

नेमिनाथ प्रभु के पास दीक्षा अंगीकार कर प्रद्युम्न मुनि ने द्वादशांगी का अध्ययन किया । इसके साथ ही वे उग्रतप और ध्यान करने लगे ।

द्वारिका दाह, कृष्ण-मृत्यु आदि बातों को जानकर प्रद्युम्न मुनि अति घोर तप करने लगे ।

प्रद्युम्न मुनि ने अट्ठम द्वारा वीश स्थानक तप किया । उसके बाद उन्होंने लघु सिंह निष्क्रीड़ित तप किया । उसके बाद महासिंह निष्क्रीड़ित, व्रत

पद्मोत्तर, महाभद्र, सर्वतोभद्र, एकावली, मुक्तावली, रत्नावली, सर्वांग सुंदर भद्र, सुधर्म चक्रवालक तप भी किया ।

वे क्षुधा, तृषा आदि 22 परिषहों को समता पूर्वक सहन करने लगे ।

वे आधाकर्मी आदि दोषों से रहित आहार लेते थे, वह आहार भी शरीर के पोषण के लिए नहीं, बल्कि शरीर टिकाने के लिए ही लेते थे ।

वे अनित्य, अशरण, संसार आदि भावनाओं से निरंतर अपनी आत्मा को भावित करते रहते थे ।

शत्रुंजय यात्रा

भयंकर पापाचरण करने वाली अनेक आत्माएँ भी इस महान् शत्रुंजय तीर्थ का, अवलंबन लेकर मोक्ष में गई हैं । निकट मुक्तिगामी आत्माएँ ही इस तीर्थ की स्पर्शना आदि का लाभ ले पाती हैं ।

इस तीर्थ के नाम स्मरण, जाप, ध्यान से भी अनंत पाप राशि का नाश होता है ।

इस गिरिराज के 108 शिखर हैं, उसमें 21 मुख्य हैं । शांब और प्रद्युम्न मुनि अपने विशाल परिवार के साथ इस शत्रुंजय महातीर्थ पर पधारे ।

भांडवे के डूंगर के नाम से प्रख्यात पाँचवें शिखर पर जाकर शांब और प्रद्युम्न आदि साढ़े आठ करोड़ मुनियों ने अनशन व्रत को स्वीकार किया...और फागुण सुदी 13 के शुभ दिन उन सभी के सभी घातिकर्म नष्ट हो गए...और उसके साथ ही लोकालोक प्रकाशक ऐसे केवलज्ञान को प्राप्त किया...तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त के बाद ही शेष चार अघाति कर्मों का क्षय हो जाने से तत्क्षण वे शाश्वत अजरामर मोक्ष पद के भोक्ता बन गए ।

शांब और प्रद्युम्न मुनि आदि की याद में आज भी हजारों नर-नारी शत्रुंजय महातीर्थ की छ गाउ की यात्रा करते हैं । आज का दिन महान् दिन है । इस महातीर्थ की स्पर्शना से उन आत्माओंने शाश्वत-पद प्राप्त किया...हम भी इस तीर्थ की यात्रा-स्पर्शना कर अन्तर्मन में यही भावना करें कि शीघ्र-अतिशीघ्र अपनी आत्मा भी मोह के बंधनों से मुक्त बनकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करे ।

❑ ❑ ❑

66. मूलदेव

मनःशुद्ध्या ददद् दाने, शुद्धं जनः सुसाधवे ।
मूलदेव इवाप्नोति, राज्यादिसुखसम्पदम् ।।

❑ जो मनुष्य मन की शुद्धिपूर्वक
साधु पुरुषों को सद्भावपूर्वक
दान देता है, वह भविष्य में
मूलदेव की भाँति
राज्य आदि सुख-संपत्ति प्राप्त करता है ।

❑ *जुआ, वेश्यागमन आदि पाप*
जीवन में होने पर भी
सद्गुरू के समागम और
निर्मल चारित्र धर्म की
आराधना के फलस्वरूप
एक पापी आत्मा भी
महान् आराधक बन सकती है और
साधना व समृद्धि के शिखर पर
पहुँच जाती है,
उसका जीता जागता दृष्टांत है
'मूलदेव !'

❑ संपूर्ण चरित्र
पठनीय और मननीय है ।
उसमें से
बहुत कुछ प्रेरणाएँ
प्राप्त हो सकती हैं ।

गौड़ देश में पाटलीपुर नाम का एक नगर था । उस नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था । उस राजा के सभी कलाओं में निपुण ऐसा **मूलदेव** नाम का पुत्र था ।

मूलदेव सभी धूर्त विद्याओं में कुशल था । चोरों के बीच वह चोर जैसा था तो सरल व्यक्ति के साथ सरल था । एक विद्याधर की भाँति वह अनेक प्रकार की कलाओं के द्वारा नगरजनों को खुश करता था ।

मूलदेव में अनेक गुण होने पर भी ``सोने की थाली में लोहे की कील'' की भाँति एक बड़ा दुर्व्यसन था जुएँ का ।

मूलदेव को व्यसनमुक्त बनाने के लिए राजा ने बहुत प्रयत्न किये । मूलदेव को समझाने में कोई कमी नहीं रखी परंतु मूलदेव जुएँ के व्यसन से मुक्त नहीं बन पाया । आखिर कोपायमान हुए राजा ने मूलदेव को गृहत्याग का आदेश कर दिया ।

नगर में देवदत्ता नाम की वेश्या रहती थी । वह अत्यंत ही बुद्धिशाली थी । इस वेश्या को लुब्ध करने के लिए मूलदेव उसके भवन के पास ही एक मकान के ओटले पर बैठकर वीणा बजाने लगा ।

वीणा की इस मधुर ध्वनि को सुनकर देवदत्ता को खूब आकर्षण हुआ ।

वेश्या ने वीणावादक को जानने के लिए अपनी दासी को भेजा ।

दासी ने जाकर गुटिका के प्रयोग से वामन रूप में रहे हुए मूलदेव को देखा ।

दासी ने आकर देवदत्ता को कहा, **``कोई गंधर्व मधुर गीत गा रहा है, वह देह से वामन है, किंतु गुणों से तो विराट् है ।''** यह बात सुनकर देवदत्ता खूब प्रभावित हुई । उसने अपनी कुबड़ी माधवी दासी को कहा, ``तू जाकर उस गंधर्व को बुला ला ।''

दासी ने जाकर मूलदेव को कहा, ``मेरी स्वामिनी देवदत्ता आपको आदरपूर्वक बुला रही हैं ।''

दासी की आजिजी भरी प्रार्थना को सुनकर भी मूलदेव आने के लिए तैयार नहीं हुआ, इतना ही नहीं, माधवी की पीठ पर उसने मुट्ठी का प्रहार किया जिससे उसकी पीठ का कुबड़ापन दूर हो गया ।

माधवी जब देवदत्ता के पास पहुँची तो उसने पूछा, ``तेरी पीठ सीधी कैसे हो गई ?''

उसने कहा, ``वीणावादक ने मेरी पीठ पर प्रहार किया और मेरी पीठ ठीक हो गई ।''

यह सब जानकर देवदत्ता और खुश हो गई । उसने माधवी को कहा, **``तू एक बार वापस जाकर आग्रहपूर्ण विनंति कर एक बार उन्हें बुला ला ।''**

माधवी दासी मूलदेव को बुलाने के लिए वापस गई । अति आग्रह करने पर मूलदेव उस दासी के साथ वेश्यागृह में आया ।

उसी समय वहाँ पर कोई वीणावादक आया और वीणा बजाने लगा । वीणा की मधुर ध्वनि को सुनकर देवदत्ता खुश हो गई ।

तभी मजाक करते हुए मूलदेव ने कहा, ``उज्जयिनी नगरी के लोग वस्तु की परीक्षा करने में बहुत ही चतुर होते हैं ।''

वेश्या ने कहा, ``क्या इसमें भी कुछ भूल लगती है ?''

मूलदेव ने कहा, **``इस वीणा के गर्भ में कंकड़ है और उसके तार में बाल है ।''**

देवदत्ता ने कहा, ``आप को कैसे पता चला ?'' मूलदेव ने वीणा अपने हाथ में ली और उसमें छिपे हुए कंकड़ और बाल को बाहर निकालकर देवदत्ता को बता दिया ।

मूलदेव ने वह वीणा ठीक कर दी । उसके बाद वह स्वयं वीणा बजाने लगा ।

वीणा के कर्णप्रिय मधुर संगीत को सुनकर वेश्या ने कहा, ``अहो ! यह कलानिधि सामान्य मानव नहीं है, यह तो मनुष्य के रूप में साक्षात् सरस्वती का ``अवतार'' है ।

वह वीणावादक मूलदेव के चरणों में गिरकर बोला, ``मैं आपके पास वीणावादन की कला सीखना चाहती हूँ, आप मुझ पर कृपा करें ।'' मूलदेव ने कहा, ``वीणावादन कला में मैं निपुण नहीं हूँ, इसके सच्चे ज्ञाता तो मेरे गुरुदेव हैं ।''

देवदत्ता ने कहा, ``वे अभी कहाँ हैं ?''

मूलदेव ने कहा, पाटलीपुर में रहनेवाले विक्रमदेव आचार्य मेरे गुरु-देव हैं और मैं उनका शिष्य हूँ ।''

इसी बीच वहाँ पर विश्वभूति नाम के कलाचार्य का आगमन हुआ ।

उसी समय देवदत्ता बोली, ``अहो ! पधारो ! आप तो साक्षात् सरस्वती के अवतार हो ।''

मूलदेव ने सोचा, **``यह अपने आपको विद्वद् शिरोमणि मान रहा है, अतः इसका गर्व दूर करना चाहिए ।''** इस प्रकार विचारकर मूलदेव ने नाट्यशास्त्र के संदर्भ में कुछ प्रश्न पूछे, परंतु विश्वभूति उन प्रश्नों का सही समाधान नहीं कर सके । इससे विश्वभूति को गुस्सा आ गया और गुस्से में आकर वे असंबद्ध बातें करने लगे और वहाँ से रवाना हो गए ।

देवदत्ता ने अपनी माधवी दासी को कहा, ``स्नान के पहले अंगमर्दक की जरूरत रहेगी ।''

मूलदेव ने कहा- ``अंगमर्दन का कार्य तो मैं भी कर सकूंगा ।''

वेश्या ने कहा, ``क्या आप यह कला भी जानते हो ?'' मूलदेव ने कहा, हाँ !''

उसके बाद मूलदेव ने देवदत्ता के शरीर का मर्दन किया । मूलदेव के अंगमर्दन से देवदत्ता की सारी थकावट दूर हो गई ।

देवदत्ता ने कहा, ``आप गुणों से महान् हो तो अब कपट करके अपने मूल स्वरूप को क्यों छिपाते हो ? कृपा करके आप अपने मूल स्वरूप से मुझे दर्शन दो । भक्त के आग्रह से तो साक्षात् देवता भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं ।''

देवदत्ता के अति आग्रह को देख मूलदेव ने अपने मुंह में से गुटिका बाहर निकाल दी, इसके साथ ही उसका सारा स्वरूप ही बदल गया ।

उसके अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर देवदत्ता के आनंद का पार न रहा ।

मूलदेव और देवदत्ता ने साथ में बैठकर भोजन किया, उसके बाद देवदत्ता बोली, **``लोकोत्तर गुणों से आपने मेरे हृदय को हर लिया है अतः अब आपके बिना मैं एक क्षण भी रहने में समर्थ नहीं हूँ ।''**

मूलदेव ने कहा, ``मेरे जैसे निर्धन और विदेशी व्यक्ति के साथ ऐसा नाता नहीं जोड़ना चाहिए ।''

देवदत्ता ने कहा, ``आप जैसे गुणवान व्यक्ति के लिए तो सभी स्वदेश ही हैं । गुणसंपत्ति के आप स्वामी हो अतः आप निर्धन कैसे ? अब आपको कहीं जाना नहीं है ।''

देवदत्ता के साथ मूलदेव आनंदपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

2.

एक दिन महाराजा की ओर से देवदत्ता को राजदरबार में नृत्य कला दिखाने के लिए आमंत्रण मिला ।

मूलदेव भी गुप्त वेष में राजदरबार में आया ।

देवदत्ता ने राजदरबार में अपनी अद्‌भुत नृत्यकला का प्रदर्शन किया, उसी समय मूलदेव ने तबला बजाने का कार्य किया ।

देवदत्ता के नृत्य से राजा खुश हो गया और बोला, ``तुम्हें जो चाहिए, मांग लो ।

उसने कहा, ``मेरा वरदान न्यास के रूप में रहने दो ।''

इसी बीच पाटलीपुर के राजा का द्वारपाल विमलसिंह आया और राजा को बोला, **``ऐसी अद्‌भुत कला तो मूलदेव की ही होनी चाहिए । मूलदेव को छोड़कर ऐसी अद्‌भुत कला अन्य किसी की नहीं हो सकती ।''**

राजा ने कहा, ``यदि ऐसा है तो वह अपना मूल-स्वरूप प्रगट करे । रत्न की भाँति मूलदेव के दर्शन में मुझे भी कौतूहल है ।''

उसी समय मूलदेव ने अपने मुँह में से गुटिका बाहर निकाल दी । इसके साथ ही उसका मूल स्वरूप प्रगट हुआ ।

विमलसिंह ने मूलदेव का आलिंगन किया । मूलदेव भी राजा के चरणों में गिर पड़ा ।

राजा भी मूलदेव पर खूब प्रसन्न हो गया । देवदत्ता के वहाँ रहते हुए भी मूलदेव जुएँ के व्यसन को नहीं छोड़ पाया ।

देवदत्ता ने भी मूलदेव को समझाने की बहुत कोशिश की, परंतु उसे सफलता नहीं मिली ।

उसी नगर में अचल नाम का धनवान सार्थवाह रहता था । मूलदेव के पहले वह उस देवदत्ता में आसक्त था ।

उस सार्थवाह को मूलदेव के प्रति ईर्ष्या थी । वह उसे किसी भी उपाय से खत्म करना चाहता था ।

एक दिन अक्का ने देवदत्ता को कहा, ``बेटी, तू उस निर्धन और जुएँ के व्यसनी ऐसे मूलदेव को छोड़ दे । हर रोज अचल कितना धन देता है ?''

देवदत्ता ने कहा, ``मुझे धन का नहीं, उसके गुणों का आकर्षण है ।''

अक्का ने कहा, ``उस जुएँ के व्यसनी में गुण कहाँ से ?''

देवदत्ता ने कहा, ``धन की लोलुपता ही आपसे ऐसा कहलवा रही है ।''

अक्का ने कहा, ``तो उन दोनों की परीक्षा की जाय ।''

देवदत्ता ने कहा, ``मंजूर है मुझे !''

उसी समय अक्का ने अपनी माधवी दासी अचल के पास भेजकर कहलाया, ``देवदत्ता को इक्षु खाने की इच्छा है, अतः इक्षु मंगाई है ।''

माधवी दासी ने जाकर अचल सेठ से बात की तो उसी समय अचल सेठ ने बैलगाड़ी भरकर इक्षु भिजवा दिए ।

देवदत्ता ने कहा, ``बैलगाड़ी भरकर इक्षु भेजने का क्या प्रयोजन है ?''

अक्का बोली, ``अरे ! तू तो उसके दोष ही देखती है ।''

उसके बाद वह माधवी दासी मूलदेव के पास जाकर बोली, ``देवदत्ता को इक्षु खाने की इच्छा है ।''

उसी समय मूलदेव कुमार ने गाँठ रहित इक्षु खंड के टुकड़े चांदी की प्लेट में व्यवस्थित तैयार करके माधवी दासी को दिए ।

देवदत्ता ने जब वे टुकड़े देखे तो वह खुश हो गई । उसने कुछ टुकड़े खाने के लिए अक्का को भी दिये ।

देवदत्ता ने अक्का को कहा, ``मेरु और सरसों की भाँति मूलदेव और अचल में रहे अंतर को देखा ?''

अक्का ने सोचा, ``यह देवदत्ता मूलदेव में मुग्ध हो गई है, अतः किसी भी उपाय से मूलदेव को यहाँ से भगाना होगा ।''

एक दिन अक्का ने अचल सेठ को कहा, ``तुम ऐसा कुछ उपाय करो ताकि वह मूलदेव यहाँ आए नहीं ।''

अन्य गाँव जाने का कहकर अचल वहाँ से निकल गया ।

अचल के जाने के बाद देवदत्ता ने मूलदेव को बुला लिया । इधर अचानक ही अक्का ने अचल को बुला लिया । देवदत्ता को पता चलते ही उसने मूलदेव को अपने पलंग के नीचे छिपा दिया ।

अचल पलंग पर बैठा और बोला, ``आज मैंने एक स्वप्न देखा ! स्वप्न में संकेत हुआ कि आज तुम पलंग पर बैठकर स्नान करोगे तो तुम्हारी पत्नी जीवित रहेगी, अन्यथा मर जाएगी ।''

देवदत्ता ने कहा, ``यहाँ बैठकर स्नान करोगे तो सारी गद्दी खराब हो जाएगी ।''

अचल ने कहा, ``तुम इतनी कृपण क्यों बनती हो ? तुम्हारी जैसी स्त्रियाँ तो पति के लिए अपना शरीर भी छोड़ सकती हैं ।''

अचल में आसक्त अक्का ने पलंग पर बैठे अचल को स्नान कराया । स्नान का गंदा जल मूलदेव पर गिरा । इस प्रकार अनेक रीति से अपमानित हुए मूलदेव को अचल ने हाथ पकड़कर घर से बाहर निकाल दिया ।

अपने ही कर्म को दोष देकर मूलदेव देवदत्ता के घर से निकल गया । नदीतट पर जाकर उसने स्नान किया और वहाँ से बेन्नातट की ओर आगे बढ़ा ।

बेन्नातट पहुँचने के लिए बीच में 12 योजन का जंगल आता था । जंगल पार करने के लिए मूलदेव किसी साथी को शोध रहा था, सद्भाग्य से एक ब्राह्मण मिल गया । परस्पर बातचीत करते हुए आसानी से रास्ता पार हो जाएगा । इस विचार से मूलदेव खुश हो गया । इस प्रकार निरंतर चलते हुए उन दोनों ने वह जंगल पार कर लिया । आगे बढ़ने पर एक तालाब आया । हाथ-पाँव धोकर मूलदेव वृक्ष की छाया में बैठा ! वह ब्राह्मण अपने पास में रहे शंबल में से खाने के लिए बैठ गया । उसने अकेले ही खाया, मूलदेव को कुछ भी नहीं दिया ।

नगर में प्रवेश के पूर्व मूलदेव ने उस ब्राह्मण का परिचय पूछा । उसने कहा, ``मेरा नाम सद्धड़ है । लोग मुझे निर्घृण शर्मा के नाम से भी बुलाते हैं ।''

ब्राह्मण को अपना परिचय देते हुए मूलदेव ने कहा, ``मेरा नाम मूलदेव है, मैं बेन्नातट जाऊंगा । मेरे योग्य कुछ भी काम हो तो मुझे कहना ।''

मूलदेव को भूख लगी हुई थी । पास में ही किसी गाँव में से उसे खाने के लिए कुछ उड़द मिल गए ।

जैसे ही वह खाने के लिए बैठा उस समय सद्भाग्य से मासक्षमण के एक तपस्वी महात्मा का उसे योग हो गया । महात्मा को देख वह खुश हो गया । खूब आदर व बहुमान के साथ उसने महात्मा को गोचरी बहोराई ।

उसकी उदारता व उत्कृष्ट भावना को देख वहीं पर आकाशवाणी हुई, **``आधे श्लोक द्वारा तुम्हें जो चाहिए, वह मांग लो ।''**

इस देववाणी को सुनकर मूलदेव ने कहा, ``देवदत्ता गणिका और 1000 हाथियों के साथ राज्य मुझे प्राप्त हो ।''

देवी ने कहा, ``तहत्ति ।''

मुनि को वंदन कर और भोजन कर मूलदेव आगे बढ़ा । वह नगर के बाहर पांथशाला में सो गया । रात्रि के अंतिम प्रहर में स्वप्न में उसने पूर्ण चंद्र को अपने मुँह में प्रवेश करते हुए देखा ।

ऐसा ही स्वप्न उसी पांथशाला में सोए हुए कार्पटिक (ब्राह्मण) ने भी देखा । सुबह होने पर उस कार्पटिक ने अपने स्वप्न की बात दूसरे कार्पटिक को कही ।

उसने कहा, **``आज तुम्हें घी-गुड़ के साथ अच्छा भोजन मिलेगा ।''**

दूसरे दिन उस कार्पटिक को मीठा भोजन खाने को मिला ।

स्वप्नदर्शन के बाद मूलदेव बगीचे में गया । वहाँ से सुंदर फल-फूल लेकर किसी निमित्तज्ञ के घर गया । वहाँ जाकर उसने निमित्तज्ञ का सत्कार-सम्मान किया । उसके बाद उसने स्वप्न का फल पूछा ।

स्वप्न की बात सुनकर निमित्तज्ञ खुश हो गया उसने कहा, ``पहले आप मेरी कन्या के साथ पाणिग्रहण करो, उसके बाद मैं इस स्वप्न का अर्थ कहूंगा ।''

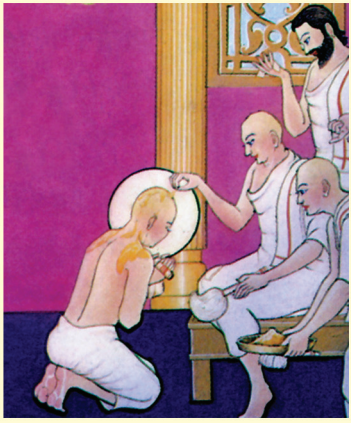

68.

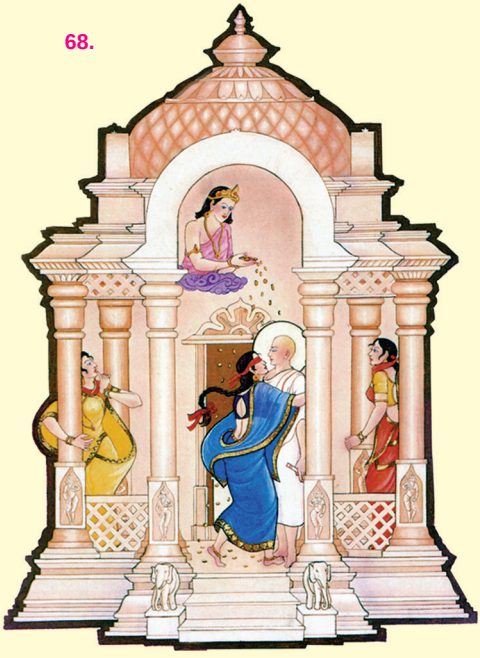

(68) आर्द्रकुमार महामुनि-पृष्ठ नं. 265

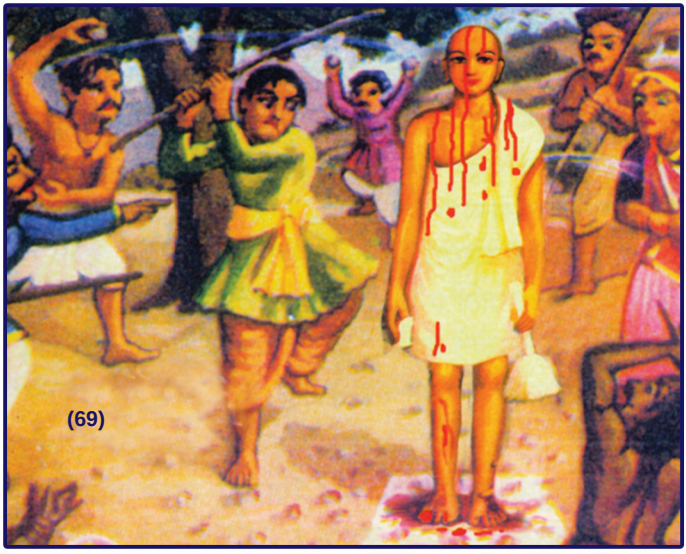

(69)

(69) दृढ़-प्रहारी-
पृष्ठ नं. 273

मूलदेव ने हाँ भरी ।

स्वप्न पाठक ने धूमधाम से अपनी कन्या का पाणिग्रहण मूलदेव से कराया ।

उसके बाद स्वप्न का फल बताते हुए उस निमित्तज्ञ ने कहा, **''सात दिन के भीतर तुम इस नगर के राजा बनोगे ।''**

स्वप्न का फल सुनकर मूलदेव खुश हो गया ।

इधर पाँचवें दिन मूलदेव चंपक वृक्ष के नीचे आराम से सोया हुआ था । योगानुयोग उसी दिन उस नगर के पुत्ररहित राजा की मृत्यु हो गई ।

नवीन राजा की पसंदगी के लिए दिव्य किया गया, जिसमें हाथी की सूंड में मंत्रित जल से भरा कलश रखा गया । यह हाथी जिस पर कलश ढोलेगा, उसे बेन्नातट नगर का राजा बनाया जाएगा ।

वह हाथी नगर में चारों ओर घूम आया परंतु कहीं पर किसी पर उसने अपने कलश से अभिषेक नहीं किया । आखिर वह हाथी नगर के बाहर आया और चंपक वृक्ष के नीचे सोए हुए मूलदेव के ऊपर उसने अभिषेक कर दिया । तत्काल मूलदेव को हाथी पर बिठाया गया और राजभवन में ले जाकर उसका विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया गया ।

उसी समय आकाशवाणी हुई, **''दिव्य प्रभाव से यह विक्रम राजा के तुल्य राजा होगा, अतः इसका दूसरा नाम विक्रमराज हो ! जो व्यक्ति इनकी आज्ञा का भंग करेगा, उसे कठोरतम सजा की जाएगी ।''**

इस दिव्य वाणी को सुनकर सभी सामंत मंत्री आदि नूतन राजा विक्रमराज के अधीन हो गए ।

विक्रमराजा न्याय व नीतिपूर्वक प्रजा का अच्छी तरह से पालन करने लगा ।

3.

अक्का के द्वारा मूलदेव की विडंबना करने के बाद देवदत्ता ने अचल सेठ को कह दिया, ''मैं तुम्हारे साथ संबंध नहीं करूंगी । यदि तुम बलात्कार करोगे तो आत्महत्या कर लूंगी । तुमने मूलदेव का अपमान करके अच्छा नहीं किया ।'' इतना कहकर उसने अचल को निकाल दिया ।

देवदत्ता राजा के पास चली गई और बोली, ``मूलदेव ही मेरा वर हो ! मूलदेव को छोड़कर अन्य पुरुष मेरे पास नहीं आए ।''

राजा ने उसका कारण पूछा तो उसने अचल सेठ द्वारा मूलदेव की सारी विडंबना की बात कही ।

जितशत्रु राजा अचल सेठ को बुलाकर उसे ठपका देते हुए बोला, **``मूलदेव तो नगर के रत्न तुल्य है । उसके अपमान के बदले में तो तुझे मौत की ही सजा होनी चाहिए ।**

राजा की इस सजा को सुनकर अचल सेठ एकदम घबरा गया ।

राजा ने कहा, तू मूलदेव को सम्मान सहित लेकर आ, अन्यथा तेरी मौत ही होगी ।

राजा की यह आज्ञा सुनकर अचल सेठ मूलदेव की शोध में निकल पड़ा ।

मूलदेव ने जितशत्रु राजा के पास अपना दूत भेजकर कहलाया कि देवदत्ता पर मुझे गाढ़ प्रीति है, अतः देवदत्ता की इच्छा हो तो तुरंत उसे यहाँ भिजवा दो ।

जितशत्रु राजा ने देवदत्ता से बात की । मूलदेव राजा के संदेश को प्राप्तकर देवदत्ता तुरंत ही बेन्नातट जाने के लिए तैयार हो गई । देवदत्ता को पाकर मूलदेव राजा खुश हो गया ।

एक शुभ दिन बेन्नातट नगर में धर्मघोषसूरिजी म. का आगमन हुआ । राजा को भी आचार्य भगवंत के आगमन के समाचार मिले । राजा भी आचार्य भगवंत की देशना सुनने के लिए उद्यान में गया । आचार्य भगवंत की भव-निर्वेदिनी धर्मदेशना को सुनकर मूलदेव राजा ने सम्यक्त्व सहित बारह व्रत स्वीकार किये ।

एक दिन अचल सेठ पारसी लोगों के देश में बहुत सारी संपत्ति प्राप्त कर बेन्नातट में आया ।

अचल सेठ मूल्यवान मोती आदि से भरा हुआ थाल लेकर राजा को भेंट देने के लिए राजदरबार में आया ।

मूलदेव राजा ने अचल सेठ को तुरंत ही पहिचान लिया, परंतु अचल सेठ राजा को पहिचान नहीं पाया ।

राजा ने पूछा, ``तुम कहाँ से आए हो ?''

उसने कहा, ``पारसी लोगों के देश से आया हूँ । मेरा नाम अचल सेठ है । मेरे वाहनों में रहे हुए माल को देखने के लिए आपको विनती करता हूँ ।''

सेठ की यह प्रार्थना सुनकर राजा अन्य राजकर्मचारियों के साथ समुद्र तट पर आया ।

वह अचल सेठ किराणे की सामग्री बताने लगा ।

राजा ने पूछा, ``क्या यही माल है या दूसरा भी है ? हमारे राज्य में जो शुल्क Tax की चोरी करता है, उसे मौत की सजा दी जाती है ।''

अचल ने कहा, ``मैं कभी भी झूठ नहीं बोलता हूँ ।''

राजा ने अपने सेवकों को कहा, ``यह सेठ सत्यवादी है, अतः इसका आधा Tax माफ कर दिया जाय परंतु इसके सामान की बराबर तलाशी ली जाय ।''

राजकर्मचारी अचल सेठ के सब सामान की शोध (Check) करने लगे । अचानक शोध करते हुए उस सामान में से अनेक मूल्यवान वस्तुएँ मिलीं । राजसेवकों ने अचल सेठ की खूब पिटाई की और उसे बाँधकर राजा के सामने उपस्थित किया । राजा ने कहा, **``अचल ! तुम मुझे पहिचानते हो ?''**

अचल ने कहा, **``जगत् प्रकाशक सूर्य की भाँति आपको कौन नहीं जानता है ?''**

उसी समय देवदत्ता भी वहाँ आ गई और बोली- `कर्म की गति बड़ी विचित्र है ।' देवदत्ता को पास में खड़ी देखकर अचल सेठ शर्मिंदा हो गया ।

देवदत्ता ने कहा, ``ये मूलदेव हैं, जिनका तुमने अपमान किया था । अभी तुम्हें मार डाले तो भी तुम क्या कर सकते हो ? परंतु ये तुम्हारे जैसे हल्के नहीं हैं । तुम तो दुर्जन हो । तुमने जो व्यवहार किया है उसके लिए तो तुम्हें मौत की ही सजा होनी चाहिए ।''

अचल ने कहा, ``मैं आपका दास हूँ, आप मेरे अपराध को क्षमा करें ।''

उसके बाद अचल को बंधन में से मुक्त कर दिया गया ।

अचल सेठ मूलदेव के चरणों में गिर पड़ा और बोला, ``मैं भयंकर अपराधी हूँ । आपके अपराध के कारण आगे भी जितशत्रु राजा ने मुझे उज्जयिणी नगरी से निकाल दिया था ।''

मूलदेव की अनुमति से जितशत्रु राजा ने भी अचल सेठ को उज्जयिणी में प्रवेश हेतु सहमति प्रदान की ।

एक बार प्रजाजनों ने आकर मूलदेव राजा को शिकायत की, ``नगर में चारों ओर घर-घर चोरियाँ हो रही हैं, परंतु चोर पकड़ा नहीं जा रहा है । नगर के आरक्षक भी चोरों को पकड़ने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं, परंतु वे चोर अंजन के द्वारा अदृश्य बनकर चोरी कर रहे हैं, अतः पकड़े नहीं जा रहे हैं ।''

राजा ने प्रजाजनों को आश्वासन देते हुए कहा, ``शीघ्र ही चोरों को पकड़ने की कोशिश की जाएगी ।''

तत्काल राजा ने नगर के आरक्षकों को बुलाकर चोरों को पकड़ने के लिए आदेश किया ।

आरक्षकों ने कहा, ``कोई एक चोर है जो पिशाच की भाँति पकड़ा नहीं जा रहा है ।''

आरक्षकों की बात सुनकर राजा ने मनोमन निश्चय किया कि चोर की मैं स्वयं शोध करूंगा ।

एक दिन रात्रि में नीले वस्त्र धारण कर राजा स्वयं चोर की शोध के लिए निकल पड़ा । राजा ने चारों ओर शोध की परंतु कहीं से भी वह चोर राजा को हाथ नहीं लगा ।

आखिर राजा खंडित देवकुल में गया । ``कदाचित् चोर यहाँ आएगा'' मानकर वह राजा देवकुल में सो गया ।

रात्रि में मंडिक नाम का चोर उसी देवकुल में आया । उस चोर ने राजा को पूछा, ``तुम कौन हो और यहाँ क्यों सोए हो ?''

राजा ने कहा–``मैं कपड़े का व्यापरी हूँ ।''

चोर ने कहा, ``तुम्हे धनवान बनना हो तो मेरे साथ चलो ।''

कार्पटिक वेष में रहे राजा ने तुरंत हाँ भर दी । चोर के साथ राजा भी चला । वह चोर एक घर में घुसा । वहाँ से मूल्यवान वस्तुएँ लेकर, कार्पटिक को बोला, ``उठाओ, इस पोटले को ।''

अपने मस्तक पर धन के भार को उठाकर राजा उस चोर के साथ उद्यान में आया । वहाँ से उसने किसी गुफा में प्रवेश किया ।

पोटले को राजा के मस्तक पर से नीचे उतारकर उस चोर ने अपनी बहिन रूपसुंदरी को आदेश देते हुए कहा, ``इस अतिथि के पाँवों का प्रक्षालन करो ।''

रूपसुंदरी राजा को कुएँ के किनारे ले गई । राजा के पाँवों का प्रक्षालन करते हुए श्रेष्ठ चिह्नों को देखकर रूपसुंदरी का हृदय दया से भर आया । राजा के रूप में मोहित बनी रूपसुंदरी ने कहा ``पादप्रक्षालन के बहाने से यहाँ कई श्रीमंतों को कुएँ में फेंक दिया गया है । चोरों के दिल में दया कहाँ से हो ? अतः मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप यहाँ से जल्दी भाग जाओ ।''

रूपसुंदरी के कहने से राजा तुरंत ही वहाँ से भाग गया ।

राजा के भाग जाने के बाद रूपसुंदरी जोर से चिल्लाई, ``भाई ! जल्दी आओ । अपना अतिथि तो भाग गया है ।''

उसी समय म्यान में से नंगी तलवार लेकर वह चोर राजा के पीछे भागा । चोर को आते हुए देखकर राजा एक स्तंभ के पीछे छिप गया । चोर उस स्तंभ को ही कार्पटिक समझकर स्तंभ पर ही तलवार का प्रहार कर रवाना हो गया ।

चोर को पहिचानने की निशानी कर राजा अपने महल में आ गया ।

दूसरे दिन राजा उस चोर को पकड़ने के लिए चल पड़ा । कपड़े की दुकान से कपड़ा खरीदते हुए उस चोर को राजा ने पहिचान लिया ।

राजा ने अपने राजसेवकों को भेजकर उस चोर को पकड़वा लिया ।

राजा ने पूछा, ``तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ?''

मूलदेव राजा ने उस चोर को मंत्री पद पर स्थापित किया । उस चोर ने राजा के साथ अपनी बहिन रूपसुंदरी का पाणिग्रहण करवाया । उसके बाद राजा ने अपनी पत्नी रुपसुन्दरी के माध्यम से उसके भाई का बहुतसा द्रव्य मँगवा लिया । राजपत्नी भी अपने भाई के घर से अलग-अलग वस्तुएँ लाने लगीं ।

एक दिन राजा ने पूछा, ``अब तुम्हारे भाई के घर में कुछ बचा है क्या ?''

रूपसुंदरी ने कहा, ``अब कुछ नहीं बचा है ।'' राजा ने वह सारा धन नगर में घोषणा कर उनके मालिकों को सौंप दिया ।

एक बार उस नगर में महाज्ञानी गुरु भगवंत का आगमन हुआ । राजा भी उनके उपदेश श्रवण हेतु गुरु भगवंत के चरणों में उपस्थित हो गया ।

गुरु भगवंत ने कहा, **जल में पैदा होनेवाली तरंगों की भाँति सारी संपत्ति चंचल है । यह यौवन तो शीघ्र ही विदाई लेनेवाला है । शरद् ऋतु के बादलों की भाँति यह आयुष्य अस्थिर है ।**

पूज्यों की पूजा, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप, तप, श्रुतज्ञान का अभ्यास और परोपकार की आराधना में ही मानव-जन्म की सफलता है ।

इस प्रकार धर्मोपदेश का श्रवणकर मूलराज भी धर्म आराधना के लिए समुत्सुक हो गया । उसने शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की । उसने उत्तम सात क्षेत्रों में अपनी संपत्ति का सद्व्यय किया । अंत में अपने पुत्र रणसिंह को राजगद्दी सौंपकर भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

निर्मल संयम धर्म की साधना कर मूलदेव मुनि स्वर्ग गए । वहाँ से च्यवकर मानव भव प्राप्तकर पुनः संयम की साधना कर शाश्वत अजर-अमर मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

इस प्रकार जो मनुष्य शुद्ध भाव से दान देता है, वह अवश्य ही स्वर्ग और मोक्ष के सुख को प्राप्त करता है ।

❑ ❑ ❑

67. विष्णुकुमार मुनि

रत्नत्रयी की निर्मल आराधना-साधना के
फलस्वरूप आत्मा में
अनेक प्रकार की लब्धियाँ / सिद्धियाँ
पैदा होती हैं

निजी स्वार्थ के लिए या
मान-सम्मान या प्रतिष्ठा पाने के लिए
उस लब्धि का प्रयोग किया जाय तो
वह आत्मा के लिए अहितकर ही होता है ;

परंतु

शासन के हित के लिए उस लब्धि का
प्रयोग किया जाय तो स्व-पर का कल्याण होता है ।

❑ साधना के फलस्वरूप प्राप्त वैक्रिय लब्धिधारी विष्णुकुमार मुनि मेरुपर्वत पर साधना कर रहे थे ।

इधर सत्ताधीश बने नमुचि ने
श्रमण संघ को देशनिकाले की सजा की,
उसे सजा करने के लिए
विष्णुकुमार मुनि ने अपनी वैक्रिय लब्धि से
1 लाख योजन का शरीर बनाकर उस
नमुचि को दंडित किया था ।

निःस्वार्थ भाव से शासन की सेवा करनेवाले
महामुनि को कोटि कोटि वंदना ।

प्रभावनां जीनाधीशमते, कुर्वन् जनोऽनिशम् ।
विष्णुकुमारवन्मुक्तिं स तामाप्नोति हेलया ।।

भरत क्षेत्र !

हस्तिनापुर नगर !!

पद्मोत्तर राजा और ज्वाला महारानी !! स्वप्न में एक शुभ दिन ज्वाला महारानी ने रात्रि में केसरी सिंह देखा । स्वप्न देखकर ज्वाला रानी खुशी से झूम उठी । गर्भकाल पूर्ण होने पर एक शुभ दिन शुभवेला में ज्वाला रानी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । बालक का नाम रखा गया- **विष्णुकुमार !**

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा ।

एक शुभ रात्रि में रानी ने 14 महास्वप्न देखे । गर्भकाल व्यतीत होने पर रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया-**महापद्म ।**

वय की वृद्धि के साथ विष्णुकुमार और महापद्म के ज्ञान की वृद्धि होने लगी ।

इधर उज्जयिनी नगरी में **श्रीवर्म** नाम का राजा राज्य करता था । **नमुचि** नाम का उसका मुख्य मंत्री था जो जैन धर्म का अत्यंत ही द्वेषी था ।

एक बार मुनिसुव्रतस्वामी के वरदहस्तों से दीक्षित बने **सुव्रत आचार्य अपने विशाल परिवार के साथ पृथ्वीतल को पावन करते हुए उज्जयिनी नगरी में पधारे ।**

नमुचि के हृदय में जैन मुनियों के प्रति तीव्र द्वेष-भाव रहा हुआ था अतः आचार्य भगवंत को परास्त करने के लिए वह उनके पास आया और जैसे-तैसे बकवास करने लगा ।

एक क्षुल्लक (बाल) मुनि ने नमुचि को वाद में परास्त कर दिया ।

पराजय से दुःखी हुआ नमुचि रात्रि में द्वेष भाव से बालमुनि को मारने के लिए उपाश्रय में आया । परंतु शासन देवी ने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया ।

प्रातःकाल होने पर राजा व अन्य लोगों ने नमुचि को दयनीय स्थिति में देखा । आखिर उसने क्षमायाचना की जिसके फलस्वरूप वह बंधन से मुक्त बना ।

इधर सुव्रत आचार्य भगवंत विहार करते हुए हस्तिनापुर नगर पधारे ।

उनकी धर्मदेशना को सुनकर पद्मोत्तर राजा के मन में वैराग्य भावना उत्पन्न हुई और वह दीक्षा लेने के लिए समुत्सुक बना ।

उसने आचार्य भगवंत से विनती करते हुए कहा- ``मैं पुत्र को राज्य सौंप कर शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण करने के लिए आपके चरणों में उपस्थित हो जाऊँगा, अतः कृपया आप उतने समय तक यहीं स्थिरता करें ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``इस कार्य में लेश भी प्रमाद मत करना ।''

पद्मोत्तर राजा ने नगर में प्रवेश किया । राजमहल में आने के बाद राजा ने विष्णुकुमार को बुलाया और उसे राज्यग्रहण के लिए आदेश किया ।

विष्णुकुमार ने कहा, **``पिताजी ! आपकी तरह मेरा भी मन भव से विरक्त बन चुका है...मैं भी इस सुलगते संसार में क्षण भर भी नहीं रहना चाहता हूँ...मैं तो आप ही के साथ मोह के बंधनों का परित्याग कर चारित्र धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ ।**

राज्य ग्रहण करने से इन्कार करने पर पद्मोत्तर राजा ने अपने छोटे पुत्र महापद्म राजकुमार को अपनी राजगद्दी प्रदान की ।

महापद्म राजा ने अपने पिता व ज्येष्ठ बंधु के महाभिनिष्क्रमण का भव्यातिभव्य महोत्सव किया और एक शुभ दिन शुभ वेला में पिता-पुत्र पद्मोत्तर राजा व विष्णुकुमार ने भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

गुरुदेव के साथ पृथ्वीतल पर विहार करते हुए विशुद्ध संयम धर्म के प्रभाव से पद्मोत्तर मुनि ने केवलज्ञान प्राप्त किया और आयुष्य पूर्णकर वे शीघ्र ही सिद्धपद के भोक्ता बन गए ।

इधर विष्णुकुमार मुनि ने भी उत्कृष्ट तप किया ! उस तप के प्रभाव से उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ उत्पन्न हुईं । परंतु वे कभी भी निजी स्वार्थ के लिए उन लब्धियों का उपयोग नहीं करते थे ।

इधर उज्जयिनी नगरी का त्याग कर नमुचि मंत्री हस्तिनापुर में आ गया । अपनी व्यावहारिक कुशलता से उसने महापद्म राजा को प्रसन्न किया । खुश होकर महापद्म राजा ने उसे अपना मंत्री बना लिया ।

राज्य की सीमा पर सिंहबल नाम का राजा प्रजाजनों को अत्यंत ही परेशान करता था ।

महापद्म राजा ने नमुचि मंत्री को कहा, ``क्या सिंहबल को वश में करने का कोई उपाय है ?''

नमुचि ने कहा, ``आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं स्वयं जाकर उसे बंधनग्रस्त बना देता हूँ ।''

बस, महाराजा की आज्ञा प्राप्त कर नमुचि मंत्री ने सिंहबल पर आक्रमण किया और बहुत ही अल्प प्रयास द्वारा उसे बंदी बनाकर महाराजा के सामने उपस्थित कर दिया ।

सिंहबल को बंदी हुआ देखकर महाराजा खुश हो गए । खुश होकर उन्होंने नमुचि को एक वरदान माँगने को कहा ।

नमुचि ने कहा, **``मेरा वरदान न्यास के रूप में आपके पास भले रहे...अवसर आने पर मैं वरदान माँग लूंगा ।''**

एक बार अपने विशाल परिवार के साथ सुव्रत आचार्य चातुर्मास करने के लिए हस्तिनापुर नगर में पधारे ।

अपने वैर का बदला लेने का अवसर देखकर नमुचि ने राजा को कहा, **``राजन् ! आपने जो मुझे वरदान दिया था, उस वरदान के रूप में आप मुझे सात दिन का राजा बनाएँ ।''**

दृढ़प्रतिज्ञ महापद्म ने नमुचि की बात स्वीकार कर ली और उसे सात दिन का राजा बना दिया ।

इधर नमुचि ने नगर बाहर एक यज्ञ प्रारंभ किया । यज्ञ के अभिषेक प्रसंग पर सभी धर्म के आचार्य उपस्थित हुए परंतु जैन मुनि नहीं आए । बस, छिद्रान्वेषी नमुचि सुव्रताचार्य के पास आकर गुस्से में बोला, **``यज्ञ के अभिषेक प्रसंग पर सभी धर्म के आचार्य आए परन्तु तुम क्यों नहीं आए ? तुम राज्य विरुद्ध चलने वाले होने से अपराधी हो, अतः 7 दिन के भीतर इस नगर को छोड़कर चले जाओ, अन्यथा तुम्हें मार दिया जाएगा ।''** इतना कहकर नमुचि चला गया ।

आचार्य भगवंत ने अपने परिवार को इकट्ठा किया और संघ-शासन के ऊपर आई हुई इस आपत्ति के निवारण के लिए विचारविमर्श प्रारंभ किया ।

उसी समय एक मुनि ने कहा, ``विष्णुकुमार मुनि ने छह हजार वर्ष तक दीर्घ तप किया है, इस तप के प्रभाव से उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ उत्पन्न हुई हैं, वे महापद्म राजा के ज्येष्ठ बंधु भी हैं, अतः उनके वचन से

यह नमुचि अवश्य शांत हो सकता है । अतः उन्हें यहाँ बुलाने के लिए किसी लब्धिधारी मुनि को मेरुपर्वत पर जाना चाहिए, क्योंकि वे अभी मेरुपर्वत पर ध्यान-साधना कर रहे हैं ।

इस उपाय को सुनकर एक मुनि ने कहा, **``मैं अपनी विद्या के बल से मेरुपर्वत तक जाने में समर्थ हूँ, परंतु वहाँ से लौटने की शक्ति मुझमें नहीं है ।''**

आचार्य भगवंत ने कहा, ``विष्णुकुमार मुनि तुम्हें वापस ले आएंगे, अतः तुम्हें वहाँ जाना चाहिए ।'' बस, गुरुदेव की आज्ञा होते ही वे मुनि तत्काल आकाश मार्ग से उड़ते हुए मेरुपर्वत पर आ पहुँचे ।

वर्षाऋतु में अचानक मुनि के आगमन को देखकर विष्णुकुमार मुनि सोचने लगे, **``वर्षाऋतु में मुनिगण कहीं भी नगर छोड़कर बाहर नहीं जाते हैं, परन्तु ये मुनि यहाँ आए हैं तो अवश्य ही शासन या संघ का अनिवार्य कार्य होना चाहिए ।''**

इसी बीच मुनि ने आकर विष्णुकुमार मुनि को वंदना की । विष्णुकुमार मुनि ने उनके आगमन का कारण पूछा ।

मुनि ने अपने आगमन का कारण बता दिया । कारण का पता चलते ही विष्णुकुमार मुनि उस मुनि को साथ लेकर तत्काल हस्तिनापुर आ गए । गुरुदेव के चरणों में गिरकर उन्होंने भावपूर्वक वंदना की ।

उसके बाद विष्णुकुमार मुनि ने नमुचि राजा को समझाते हुए कहा, **``जैन मुनि वर्षाऋतु में अन्यत्र कहीं भी विहार नहीं करते हैं और वे भिक्षावृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, वे वर्षाकाल तक यहीं रहें तो आपको क्या तकलीफ है ?''**

महामुनि की यह बात सुनकर गुस्से में आकर नमुचि ने कहा, ``ज्यादा बकवास मत करो, मैं तुम्हें यहाँ रहने नहीं दूंगा ।''

अत्यंत समर्थ होते हुए भी विष्णुकुमार महामुनि समता व धैर्य धारण कर नमुचि राजा को समझाते हुए बोले, ``यदि तुम्हारी सहमति हो तो वे नगर के बाहर रह जाएंगे ।''

गुस्से में आकर नमुचि ने कहा, ``मैं उनकी गंध भी सहन करने के लिए तैयार नहीं हूँ, अतः ज्यादा बकवास मत करो । यदि तुम्हें जीवन प्रिय हो तो नगर छोड़कर चले जाओ ।''

अंत में मुनिवर ने कहा, ``अच्छा ! तो हमें रहने के लिए तीन कदम भूमि दे दो ।''

नमुचि ने कहा, ``लो, मैं तुम्हें तीन कदम भूमि देता हूँ...परन्तु तीन कदम से बाहर रहे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा ।''

बस, संघ और शासन के ऊपर आई हुई इस आपत्ति को देखकर दुष्ट को दंडित करने के लिए विष्णुकुमार महामुनि ने अपनी लब्धि के बल से अपना शरीर बढ़ाना प्रारंभ किया ।

अपने विशाल देह से पृथ्वी को प्रकंपित करने वाले विष्णुकुमार महामुनि ने लब्धि के बल से एक लाख योजन ऊँचा अपना शरीर बना दिया । उन्होंने अपना एक पैर जंबुद्वीप के पश्चिम समुद्र के किनारे पर और दूसरा पैर पूर्व समुद्र के किनारे पर रख दिया ।

इस वृत्तांत को जानकर महापद्म राजा वहाँ पर आया और अपने अग्रज मुनिवर को भावपूर्वक वंदना करके बोला, ``आप लोकोत्तर गुणों के स्वामी हो और मेरे हृदय मंदिर में बिराजमान हो । यह दुष्ट नमुचि हमेशा संघ व शासन की आशातना-हीलना करता आया है...परन्तु अभी तक मैं उसके अपराध को जान नहीं सका । वह दुष्ट पापी मेरा सेवक है...अतः आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें । इस पापी मंत्री के अपराध से सभी भयभीत बने हुए हैं...अतः आप कोप का त्याग करें ।'' उस समय अनेक सुर-असुरों तथा चतुर्विध संघ ने भी विविध प्रकार से स्तुति की और उनके कोप को शांत करने के लिए प्रयत्न किया । आखिर संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर विष्णुकुमार मुनि ने अपना विशाल रूप संकुचित करना प्रारंभ किया और कुछ ही समय बाद वे अपने मूल रूप में आ गए ।

संघ के आग्रह से महामुनि ने नमुचि मंत्री को छोड़ दिया और राजा ने भी उस दुष्ट मंत्री को देशनिकाले की सजा कर दी ।

तत्पश्चात् विविध तप की आराधना कर विष्णुकुमार महामुनि ने घाति-कर्मों का क्षय कर लिया । वे केवली बने ।

अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर अपना आयुष्य पूर्ण कर समस्त अघाति कर्मों का क्षयकर विष्णुकुमार महामुनि ने शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया । ❑ ❑ ❑

68. आर्द्रकुमार महामुनि

- **महाव्रतों का निरतिचार पालन**
  आत्मा को उसी भव में
  शाश्वत मोक्षपद प्रदान कर देता है
  जबकि
  महाव्रतों में लगा अतिचार-दोष
  आत्मा को इस संसार में
  कहीं फेंक देता है ।

- व्रत में लगे
  अतिचार-दोष के कारण
  सामयिक मुनि
  सद्धर्म से सर्वथा विहीन
  ऐसे अनार्यदेश में पैदा हुए
  और बुद्धिनिधान **अभयकुमार** की
  मैत्री के फलस्वरूप
  अनार्य देश को छोड़कर भी
  आर्द्रकुमार आर्य देश में आ गए ।

- निर्मल संयम साधना द्वारा
  शिवसुख के भोक्ता बने
  आर्द्रमुनि को
  कोटि-कोटि वंदना ।

◆ कामराग के पाप की आलोचना के अभाव के
कारण अनार्य देश में पैदा हुए
आर्द्रकुमार को
अभयकुमार ने एक जिनप्रतिमा भेंट भेजी ।

जिन-प्रतिमा को देख
राजकुमार आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ ।

जैसे-तैसे उपाय करके भी
आर्द्रकुमार भागकर आर्यदेश में आया ।

उन्होंने भागवती-दीक्षा अंगीकार की

परंतु

भोगावली कर्म के उदय के कारण उन्हें
12 वर्षों तक पुनः संसार-वास में रहना पड़ा ।

आखिर

पुनः भागवती दीक्षा अंगीकार कर
निर्मल साधना के फलस्वरूप
कैवल्य-लक्ष्मी को प्राप्त कर
शाश्वत अजरामर मोक्षपद के
भोक्ता बने ।

68. आर्द्रकुमार

श्री वीतरागबिम्बस्य, वीक्षणाद् देहिनामिह ।
बोधिलाभो भवेदार्द्रकुमास्येव तत्क्षणात् ।।

अपने पूर्वजों की प्रीति बढ़ाने के लिए एक बार श्रेणिक राजा ने अनार्यदेश में रहे आर्द्रक राजा को एक कीमती वस्तु भेंट में भेजी ।

श्रेणिक के मंत्री ने जाकर वह भेंट आर्द्रक राजा के चरणों में अर्पित की और महाराजा की क्षेमकुशलता पूछी ।

आर्द्रक राजा ने भी श्रेणिक राजा की क्षेमकुशलता पूछी ।

आर्द्रक राजा ने पूछा, **''आपके महाराजा के राजकुमार का क्या नाम है ?''**

मंत्री ने कहा, **''उनका नाम अभयकुमार है, वे बुद्धिनिधान हैं, 500 मंत्रियों के अधिपति हैं, धर्मज्ञ हैं और तत्त्वज्ञ हैं ।''**

आर्द्रक राजा का राजकुमार आर्द्रकुमार भी वहीं खड़ा था । अभयकुमार का परिचय सुनकर उसके मन में अभयकुमार के प्रति आकर्षण पैदा हुआ ।

अभयकुमार से मैत्री का संबंध स्थापित करने के लिए आर्द्रकुमार ने मूल्यवान वस्तुएँ भेंट के रूप में भेजीं और कहलाया कि **''आर्द्रकुमार आपसे मैत्री चाहता है ।''**

मंत्री ने जाकर श्रेणिक और अभयकुमार को सारी बातें कहीं और आर्द्रकुमार द्वारा भेजी गई भेंट भी अभयकुमार को दे दी ।

अभयकुमार ने सोचा, वह मुझ से मैत्री संबंध जोड़ना चाहता है । अतः कोई उत्तम आत्मा होनी चाहिए । पूर्व भव में शायद कोई विराधना की होगी, जिसके फलस्वरूप वह अनार्य देश में पैदा हुआ है, परंतु उसमें अंतरंग योग्यता अवश्य रही हुई है, इसी कारण वह मुझ से मैत्री करना चाहता है । इस प्रकार विचार कर अभयकुमार ने दूसरी बार रत्नमय अरिहंत की प्रतिमा भेंट के रूप में भेजी ।

मंत्री ने जाकर वह प्रतिमा आर्द्रकुमार को भेंट दी । पेटी खोलकर जब

आर्द्रकुमार ने वह प्रतिमा देखी तो वह सोचने लगा, ``यह कौनसा अलंकार है ?'' इसे किस तरह कहाँ कैसे पहिना जाय ? यह गले में पहिनने का आभूषण है या मस्तक पर ?''

इस प्रकार खूब सोचते-सोचते पुनःपुनः प्रतिमा का निरीक्षण करते करते आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । उसे अपना पूर्व का तीसरा भव स्पष्ट दिखाई दिया ।

वह सोचने लगा, ``अहो ! पूर्व के तीसरे भव में मैं **सामयिक** नाम का सद्गृहस्थ था, मेरी पत्नी का नाम बंधुमती था । सद्गुरु के उपदेश का श्रवण कर हम दोनों ने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी ।

एक बार साध्वियों के समूह में अपनी रूपवती पत्नी साध्वी को देखकर उसके प्रति मेरे दिल में मोह पैदा हो गया था । मैंने उसके पास काम-भोग की याचना की थी ।

मेरी पत्नी साध्वी ने व्रतभंग के भय से अनशन कर लिया था और वह मरकर देवी बन गई थी ।

उसके वियोग से दुःखी होकर मैंने भी अनशन व्रत स्वीकार किया था । मरकर देव बना । देवलोक से च्यवकर व्रतविराधन के मानसिक पाप के कारण अनार्य देश में उत्पन्न हुआ हूँ ।

मेरे धर्मगुरु अभयकुमार को धन्य है, जिन्होंने मेरे प्रतिबोध के लिए यह प्रतिमा भेजी है ।''

एक बार अवसर देखकर आर्द्रकुमार ने अपने पिता को कहा, ``मैं अभयकुमार से मिलने के लिए राजगृही जाना चाहता हूँ ।''

पुत्र की इच्छा देखकर आर्द्रक राजा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया, इतना ही नहीं, वह भागकर कहीं चला न जाय, इस हेतु आर्द्रकुमार की रखवाली के लिए 500 सैनिकों को भी नियुक्त कर दिया ।

पिता के द्वारा निषेध करने पर भी आर्द्रकुमार का मन शांत नहीं हुआ, उसके मन में अभयकुमार से मिलने की इच्छा और तीव्र हो गई...और एक शुभ दिन अपनी सुरक्षा के लिए नियुक्त किए सैनिकों को ठगकर भी वह राजगृही नगरी पहुँच गया ।

उस समय आकाशवाणी हुई, ``तुम्हारे भोगावली कर्म बाकी हैं ।'' परन्तु आर्द्रकुमार ने उस देव-वाणी की उपेक्षा करके भी भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

एक बार पृथ्वीतल पर विहार करते हुए आर्द्रमुनि वसंतपुर नगर के बाहर उद्यान में पधारे और कायोत्सर्ग में खड़े रहे ।

इधर उनके पूर्वभव की पत्नी बंधुमती की आत्मा देवलोक में से च्यवकर वसंतपुर नगर में किसी श्रेष्ठी के घर **``श्रीमती''** के रूप में पैदा हुई थी ।

एक बार वह श्रीमती अपनी सहेलियों के साथ खेलती हुई उस उद्यान में आ गई, जहाँ आर्द्रमुनि कायोत्सर्ग कर रहे थे ।

वे लड़कियाँ मजाक में बोलीं, ``अपने मन पसंद वर का चयन करो ।'' उस समय श्रीमती बोली, **``मैं तो इस मुनि के साथ विवाह करूंगी ।''**

उस समय आकाश में देववाणी हुई, ``तूने योग्य वर को पसंद किया है ।'' देवताओं ने दुंदुभि के नादपूर्वक रत्नों की वृष्टि की । दुंदुभि के भय से वह बालिका आर्द्रमुनि के चरणों में चिटक गई ।

अनुकूल उपसर्ग जानकर आर्द्रमुनि ने वहाँ से विहार कर दिया ।

आकाश से हुई वृष्टि के धन को लेने के लिए जब राजपुरुष आए तब देवताओं ने उन्हें रोक दिया और कहा, **``यह धन तो श्रीमती के विवाह के लिए दिया गया है ।''** उसके बाद वह सारा धन श्रीमती के पिता ने ग्रहण किया ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । श्रीमती ने यौवन वय में प्रवेश किया । उसके योग्य वर के लिए शोध होने लगी तब वह बोली, ``मैं तो उसी मुनि के साथ विवाह करूंगी ।''

पिता ने कहा, ``तू उस मुनि को कैसे पहिचान पाएगी ?''

पिता की सहमति से श्रीमती प्रतिदिन मुनियों को दान देने लगी ।

ठीक 12 वर्ष के बाद आर्द्रमुनि वापस वहाँ आए । उनके चरणचिह्नों को देखकर वह पहिचान गई और बोली, ``हे स्वामिन् ! आप मुझे छोड़कर क्यों चले गए ? अब मैं आपको जाने नहीं दूंगी ।''

उस आकाशवाणी को यादकर आर्द्रमुनि ने उस श्रीमती कन्या के साथ पाणि-ग्रहण किया । उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई ।

एक बार आर्द्रकुमार ने पत्नी को कहा, ``तेरा पुत्र अब बड़ा हो रहा है, अब मैं दीक्षा लूंगा ।''

पति की यह बात सुनकर श्रीमती मौन हो गई ।

वह चर्खे से रुई कातने लगी ।

बालक ने पूछा, ``माँ ! तू चर्खा क्यों कात रही है ?''

माँ ने कहा, ``बेटा ! तेरे पिता दीक्षा लेने की बात कर रहे हैं, अतः उनकी दीक्षा के बाद तो चरखा कातकर ही तेरा भरण-पोषण करना पड़ेगा न ।''

बेटे ने कहा, ``मैं पिताजी को जाने नहीं दूंगा'' इतना कहकर वह पलंग पर सोए हुए अपने पिता के पाँव को कच्चे सूत के धागे से बाँधने लगा ।

पाँवों को बाँधकर वह बोला, **``पिताजी ! मैंने आपको बाँध दिया है, अब आप कैसे जाओगे ?''**

आर्द्रकुमार ने उन धागों को देखा । अपने पाँव में 12 धागों का बंधन देखकर सोचा, **``मुझे 12 साल और रहना पड़ेगा ।''**

आर्द्रकुमार 12 वर्ष तक घर में रहे ।

एक बार रात्रि में आर्द्रकुमार सोचने लगे, `अहो ! इस संसार रूपी कुएँ में से बचने के लिए मैंने संयम रूपी डोरी का आलंबन लिया था, परंतु उस आलंबन को भी मैंने छोड़ दिया । गतभव में तो मुझे अनार्यपना प्राप्त हुआ इस बार तो मैंने व्रत लेकर भंग किया है, अतः मेरी क्या दशा होगी ? जिस प्रकार मलिन बना सोना अग्नि में तपकर शुद्ध होता है, उसी प्रकार मैं भी तप द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध बनाऊंगा ।' इस प्रकार विचार कर उन्होंने अपनी स्त्री को कहा, ``अब मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ ।''

पत्नी ने कहा, ``आपके बिना मेरा और पुत्र का क्या होगा ?''

आर्द्रकुमार ने कहा, ***``इस संसार में कौन किसका है ? सभी अकेले पैदा हुए हैं, अकेले ही जन्म लेते हैं और अकेले ही मरते हैं । मरने पर कोई किसी के साथ आता नहीं है ।***

``जो मूढ़ व्यक्ति शरीर, धन तथा पुत्र तथा स्त्री आदि को 'मेरा-मेरा'

कहता है, वह अंत में दुःखी ही होता है । जीव तो धन-पुत्र परिवार आदि से अलग ही है, अतः उसके ऊपर ममता रखने की आवश्यकता नहीं है ।''

आर्द्रकुमार के समझाने पर आखिर उनकी पत्नी ने उन्हें दीक्षा के लिए सहमति प्रदान की ।

दीक्षा लेकर आर्द्रकुमार मुनि राजगृही नगरी की ओर चले । बीच मार्ग में उन्हें चोरी से अपना जीवन निर्वाह करनेवाले 500 सामंत मिले ।

आर्द्रकुमार ने उनको पहचान लिया । वे खड़े रहे और उन्हें समझाते हुए बोले, ``अहो ! यह पापप्रवृत्ति कब से चालू की है ? **चोरी का फल तो इस लोक में वध-बंधन आदि तथा परलोक में नरक आदि दुर्गति है ।''**

उन्होंने कहा, ``हे स्वामी ! आप तो हमें छोड़कर चले गए । आपकी हमने खूब शोध की, परंतु आपका पता नहीं लगा अतः हमने सोचा, `आर्द्रकुमार तो चले गए, अब स्वामी को अपना मुँह कैसे बताएंगे ? इस प्रकार सोचकर वाहन में बैठकर हम भी इस देश में आ गए । यहां आकर अन्य कोई धंधा नहीं मिलने से चोरी कर अपना जीवननिर्वाह करते थे । आज तक आपकी शोध में ही थे, अचानक ही आपका मिलन हो गया ।''

मुनि ने कहा, ``जीवन में संकट आ जाय तो भी चोरी नहीं करनी चाहिये । मानवजीवन प्राप्त कर धर्म-आराधना करनी चाहिये, जिससे अपना आगामी भव सुधरे ।

``धर्म से ही स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है । जिनेश्वर भगवंत ने अहिंसा, सत्य वचन, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप धर्म कहा है, तुम भी मेरे भक्त हो तो इसी मार्ग का अनुसरण करो ।''

उसी समय सभी ने कहा, ``आप हमारे स्वामी हो और आपका मार्ग हमें पसंद है ।''

उसी समय उन सभी ने दीक्षा स्वीकार कर ली ।

आर्द्रमुनि उन सब मुनियों को साथ में लेकर राजगृही नगरी की ओर जा रहे थे ।

बीच मार्ग में उन्हें तापस मिले । वे तापस एक हाथी को मारकर उसका मांस खा रहे थे ।

आर्द्रकुमार ने कहा, ``अरे ! तुम जीव हिंसा मत करो । इससे नरक गति प्राप्त होती है ।''

तापसों ने कहा, ``हम तो एक जीव का वध कर रहे हैं, जब कि आप तो अनेक जीवों का वध कर रहे हो । अतः ज्यादा पाप तुम्हें लगना चाहिये ।

``एक इन्द्रियवाले धान्य के पाँच दाने से पंचेन्द्रियपना होता है और पाँच दानों से तो पेट भरता नहीं है, अतः पंचेन्द्रिय का वध करना ही अच्छा है ।''

तापस ये बातें कर रहे थे । उसी समय नजदीक में बड़े वृक्ष के साथ हाथी बँधा हुआ था, आर्द्रकुमार को देखते ही उसने वे बंधन तोड़ दिए और आर्द्रकुमार की ओर चल पडा । तापस हाहाकार करने लगे । ``यह हाथी इन महाराज को मार देगा ।'' सोचकर सभी इधर-उधर भागने लगे । तभी वह हाथी नजदीक आकर आर्द्रमुनि के चरणों में गिर पडा ।

आर्द्रकुमार ने कहा, **``हे गजेन्द्र ! तुझे धर्म की रुचि हो तो इस धर्म को स्वीकार कर । और अनशन की इच्छा हो तो अनशनव्रत स्वीकार कर ।''**

उसी समय हाथी ने अनशनव्रत स्वीकार किया । यह दृश्य देख सभी तापस भी प्रतिबोध को प्राप्त हुए । सभी ने जैनधर्म स्वीकार किया ।

आर्द्रमुनि प्रभु वीर के चरणों में पहुँच गए । निरतिचार चारित्रधर्म का पालन कर सभी कर्मों का क्षयकर उन्होंने अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया ।

❑ ❑ ❑

69. परिषह विजेता दृढ़प्रहारी

- **एक ही दिन में**
  चार-चार की हत्या करनेवाले
  दृढ़प्रहारी,
  सद्गुरु के उपदेश को प्राप्तकर
  डाकू मिटकर संत बन गए ।

- संयम के स्वीकार के साथ ही
  एक कठोर अभिग्रह धारणकर
  छह मास तक
  अपमान-तिरस्कार-गाली-गलौज और
  लकड़ी-पत्थर के प्रहार
  क्षमता पूर्वक सहन किये,
  जिसके फलस्वरूप
  सभी घाति कर्मों का क्षयकर
  केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी के स्वामी बन गए ।

- **समता की साधना**
  तलहटी पर रही आत्मा को
  साधना के शिखर तक
  पहुँचा देती है-
  उसका यह
  प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

69. समतामूर्ति बना दृढ़-प्रहारी

क्षमया विहितानेक दुष्कृतोऽपि जनः क्षणात् ।
दृढप्रहारीव कल्याणपदवीं भजते स्फुटम् ।।

क्षितिप्रतिष्ठान नगर में एक ब्राह्मण पुत्र रहता था । प्रजाजन उसके क्रूर व्यवहार से हैरान थे । प्रजाजन ने राजा को शिकायत की और राजा ने अपने मंत्रियों को आदेश देकर उसे नगर से बाहर निकाल दिया । वह ब्राह्मणपुत्र चोरों की पल्ली में चला गया ।

मार्ग में आते-जाते मुसाफिरों को लूटना और तोड़-फोड़ करना, यही उसका दैनिक क्रम बन गया । पल्लीपति की मृत्यु के बाद उसे ही चोर-सेना का अधिपति बनाया गया ।

अत्यंत निर्दयता तथा दृढ़ता से निरपराध प्राणियों पर प्रहार करने के कारण **दृढ़प्रहारी** के नाम से वह चारों ओर प्रसिद्ध हो गया ।

एक बार वह कुशलस्थल नाम के नगर को लूटने के लिए गया । उस नगर में **देवशर्मा** नामक एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था । कोई पर्व दिन होने के कारण बालकों ने उससे मिष्टान्न की याचना की । घर-घर घूमकर ब्राह्मणी ने चावल-दूध और शक्कर इकट्ठी की और उसने मधुर क्षीर तैयार की ।

ब्राह्मण नदी पर स्नान करने के लिए चला गया और इधर **दृढ़प्रहारी** आदि तस्कर उसके घर में घुस गये । क्षुधातुर एक तस्कर क्षीरान्न का भोजन उठाकर भागने लगा । क्षीरान्न के ले जाने के कारण सभी बालक रोने-चिल्लाने लगे, उन्होंने पिता के पास जाकर इसकी शिकायत की ।

ब्राह्मण को ये समाचार मिलते ही वह चोरों के पीछे कुल्हाड़ी लेकर भागा । ब्राह्मण को आते देख तस्कराधिपति भी भागा, परन्तु मार्ग में अवरोधक गाय आ जाने से उसने गाय के पेट में तलवार भोंक दी और उसे निर्दयता से मार डाला ।

इसी बीच ब्राह्मण को समीप में आते देखकर उसने ब्राह्मण के सिर को भी तलवार से उड़ा दिया । अपने पति के सिर और धड़ को अलग देखकर वह गर्भवती ब्राह्मणी जोर-जोर से चिल्लाने लगी और उस निर्दय तस्कर को गालियाँ देने लगी । ब्राह्मणी की गालियाँ सुनकर क्रोधान्ध बने दृढ़- प्रहारी ने

उसके पेट में भी तलवार भोंक दी । क्षण भर में ब्राह्मणी और गर्भस्थ बालक के प्राणपखेरू उड़ गये ।

अपने प्राणप्रिय माता-पिता के मृत कलेवरों को देखकर सभी बालक जोर-जोर से क्रंदन करने लगे ।

नंगे-भूखे और अत्यंत विलाप करते हुए बालकों के हृदय-द्रावक क्रंदन को सुनकर दृढ़प्रहारी क्षणभर के लिए स्तब्ध हो गया । बालकों की असह्य वेदना से दृढ़प्रहारी का हृदय द्रवित हो गया और उसके हृदय से करुणा का प्रवाह बहने लगा । ज्योंही वह कुछ आगे बढ़ा, तो उसे नगर के बाह्य उद्यान में प्रशांत मुखमुद्रावाले मुनि भगवंत दिखाई दिए । त्याग-वैराग्य और करुणा की साक्षात् मूर्ति तथा क्षमा के सागर और आत्म-तत्त्व की साक्षात् दिव्य ज्योति को देखकर दृढ़प्रहारी का हृदय वैराग्य से भावित हो उठा ।

साधु का दर्शन किसको लाभ नहीं करता ? अर्थात् सभी को लाभ करता है । जैसे पारसमणि के संग से लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही महात्मा के सत्संग से दुरात्मा भी महात्मा बन जाते है ।

दृढ़प्रहारी ने देखा कि इन महात्मा के नेत्रों में करुणा का प्रवाह बह रहा है । सर्व जीवों को अभयदान देने वाले ये तो अहिंसा के साक्षात् अवतार हैं । त्याग और तप से अपने शरीर को कृश कर, आत्मा के अंतरंग शत्रुओं से भयंकर युद्ध खेल रहे हैं ।

कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न महात्मा को दृढ़प्रहारी ने पंचांग प्रणिपात नमस्कार किया । महात्मा ने भी कायोत्सर्ग पूर्ण कर **''धर्मलाभ''** की आशिष दी ।

जैन-मुनि का 'धर्मलाभ' यह सामान्य कथन नहीं है, इसमें महान् रहस्य भरहा हुआ है । जैन मुनि कभी भी धनलाभ, पुत्रवान भव अथवा आयुष्मान् भव का आशीर्वाद नहीं देते हैं, क्योंकि धन-पुत्र अथवा दीर्घायुष्य की प्राप्ति में एकांत लाभ संभव नहीं है । धनादि तो संसारवर्द्धक हैं । इसी कारण जैन मुनि हमेशा धर्मलाभ की ही आशिष देते हैं । धर्मलाभ अर्थात् सर्वविरति की साधना द्वारा जो कुछ भी धर्म (निर्जरा रूप धर्म और बंध रूप पुण्य) का उपार्जन करते हैं, उसका लाभ वे प्रदान करते हैं । धर्मलाभ यह संसार का विच्छेद कराने वाला और मोक्ष को प्राप्त कराने वाला मंगल आशीर्वाद है ।

``एक भी प्राणी की हिंसा जब नरक-गमन के लिए होती है, तो मैंने तो गाय, ब्राह्मण, ब्राह्मणी और उसके गर्भ की हत्या की है । क्रूर हत्यारे ऐसे

मेरी क्या दशा होगी ? ओ दयालु महात्मन् ! इस भयंकर पाप से छुड़ाने के लिए आप ही समर्थ हो । ओ करुणासागर !

कुछ ऐसा मार्ग बतलाओ कि इस भयंकर हत्या के पाप से अपनी आत्मा को मुक्त कर सकूँ ।

दृढ़प्रहारी के दिल में महात्मा के प्रति अपार बहुमान था । वह अपने जीवन को सम्पूर्ण समर्पित करने के लिए तैयार था ।

दुष्कृत-गर्हा, सुकृतानुमोदन और शरणग्रहण यह धर्म-प्राप्ति का मूल बीज है । जब ये गुण आत्मा में प्रकट होते हैं, तभी आत्मा में मुक्ति के योग्य गुण बीजों का वपन होता है । दुष्कृत गर्हा अर्थात् स्वपाप का अपूर्व पश्चात्ताप, सुकृतानुमोदन अर्थात् अन्य कृत सत्कार्यों की प्रशंसा, शरण-गमन अर्थात् सुदेव और सुगुरु के चरणों में अपने जीवन का समर्पण । सुकृतानुमोदन दुष्कृत-गर्हादि गुणों से दृढ़प्रहारी के विचार, वाणी और वर्तन में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ ।

मुनि भगवंत ने दृढ़प्रहारी को समझाते हुए कहा, ``हे महानुभाव ! भूल हो जाना यह संसारी आत्मा का सहज स्वभाव है, परन्तु उस भूल को स्वीकार कर लेना, यह महात्मा बनने का लक्षण है । और भविष्य में कभी भी वह भूल न हो जाये उसके लिए प्रयत्न करना यह आत्मा में से परमात्मा बनने की कला है ।

``पाप करने से भी, पाप को छिपाना भयंकर अपराध है । स्वकृत पाप को स्वीकार करने के बाद ही आत्मा पापमुक्त बनने के योग्य बन सकती है । अतः अब पापमुक्त बनने की तीव्र उत्कंठा हो तो सर्व सावद्य प्रवृत्तियों के त्याग रूप सर्व-विरति धर्म अंगीकार करना चाहिए । सर्व-विरति धर्म का विशुद्ध पालन ही आत्मा को पाप-मुक्त बनाने में समर्थ है ।''

साधु महात्मा के उपदेश से दृढ़प्रहारी ने सर्व-विरति धर्म को अंगीकार किया और गुरु भगवंत के पास अभिग्रह किया कि जिस दिन मुझे मेरा पाप याद आयेगा, उस दिन मैं अन्न और जल का त्याग करूंगा ।

मानव मन का यह स्वभाव है कि वह जिस बात को भूलना चाहता है वही बात उसके मस्तिष्क में सदा घूमती रहती है । दृढ़प्रहारी अब मुनि बन गये । संसार से विरक्त वैरागी बन गये । अपने गुरुदेवश्री की अनुमति लेकर दृढ़प्रहारी मुनि उसी कुशस्थल नगर के बाहर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर हो

गये । दृढ़प्रहारी जो पूर्व में दृढ़ता से प्रहार करने में समर्थ थे, वे अब दूसरे के दृढ़प्रहारों को सहने में समर्थ हो गये । दृढ़प्रहारी को मुनिवेश में देखकर नगरजन उन्हें धिक्कारने लगे । **``यह पापी है, ढोंगी है । अपने पाप को छुपाने वाला मायावी है''** इत्यादि अनेक प्रकार से कठोर संभाषण के साथ पत्थर मारने लगे । ``दृढ़प्रहारी'' को प्रतिदिन अपना पाप याद आ जाता था, इस कारण वे प्रतिदिन उपवास करते थे ।

नित्य-प्रतिदिन पत्थर, लकड़ी तथा धूल की वृष्टि को वे समतापूर्वक सहन करते थे । नगरजनों के भयंकर प्रहारों को सहकर भी दृढ़प्रहारी शुभ भावना में ही लयलीन थे । वे सोचते थे कि-

``हे आत्मन् ! तूने जैसा पाप किया है, वैसा ही फल तुझे मिल रहा है । जैसा बीज बोया है वैसा ही फल मिलेगा । ये व्यक्ति मुझपर आक्रोश करते हैं, यह तो मेरे हित के लिए ही है क्योंकि इसको सहने में मेरी कर्म-निर्जरा है । यदि मेरी भर्त्सना करने से इन लोगों को सुख उत्पन्न होता हो, तो वह होने दूँ, क्योंकि सुख का संगम अत्यंत दुर्लभ है ।

``अग्नि का ताप यह तो स्वर्ण के मल को दूर करता है, उसी प्रकार ये व्यक्ति मेरे ऊपर प्रहार करते हैं, उससे तो मेरा कर्म रूपी मल दूर होनेवाला है । स्वयं दुर्गति-गमन के योग्य कर्म उपार्जन करके भी मेरे को दुर्गति के गर्त में से निकाल रहे हैं, अतः मैं उनके ऊपर कोप क्यों करूँ ? अपने पुण्य के व्यय द्वारा मेरे पाप मल को ये दूर कर रहे हैं, अतः ये तो मेरे परम बंधु हैं । परंतु मुझे दुःख इतना ही है कि इसके द्वारा ये अपने अनंत संसार का सर्जन कर रहे हैं ।

``ये तो मेरी तर्जना ही करते हैं, मुझे पीटते तो नहीं हैं । यदि मुझे पीटते हैं, तो मेरे प्राणों का नाश तो नहीं करते हैं । यदि मुझे मार भी डालें, तो भी मुझे धर्म से भ्रष्ट तो नहीं कर रहे हैं । आक्रोश-ताड़न-मारण-बन्धन तथा वध आदि सहन करना, यह तो आत्म-कल्याण का श्रेष्ठ उपाय है, अतः उसे समतापूर्वक सहने में ही मेरा हित है ।''

इस प्रकार की शुभभावना से अपनी आत्मा को भावित कर दृढ़प्रहारी ने समतापूर्वक सभी उपसर्गों को सहन किया और छह मास में ही क्षुधादि परिषहों को सहन कर केवलज्ञान प्राप्त किया ।

धन्य हो त्याग और तितिक्षा की इस साक्षात् मूर्ति को ! ❑

70. समताधारी कुरगडु मुनि

अपरिचित व्यक्ति के द्वारा किए गए
अपमान को सहन करना तो भी आसान है,
परंतु जिनके साथ रहना,
उठना-बैठना होता है, उनके द्वारा हुए
अपमान को निगल जाना बहुत ही मुश्किल है ।

❑ मासक्षमण के तपस्वी मुनियों ने
संवत्सरी जैसे पवित्र दिन में
कुरगडु मुनि के पात्र में थूक दिया ।
इतना घोर अपमान और तिरस्कार होने पर भी
समताधारी कुरगडु मुनि ने
उनका लेश भी प्रतिकार नहीं किया ।

❑ समता के फलस्वरूप ही उन्हें
कैवल्य-लक्ष्मी की प्राप्ति हुई ।
मासक्षमण जैसी तपश्चर्या से भी
जो कार्य सिद्ध नहीं हुआ,
वह कार्य
समतापूर्वक की एक नवकारसी के द्वारा
करके बता दिया ।

सचमुच,
आपकी समता अच्छे-अच्छे तपस्वी साधकों
के लिए भी एक आदर्श बन गई ।

70. कुरगडुमुनि

कुर्वाणो मनुजो नित्यं, क्षमो वैरिषु देहिषु ।
निःश्रेयस श्रियं कूरघटवल्लभते श्रियम् ।।

आचार्य भगवंत की वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना के अमृतपान के कारण राजकुमार **ललितांग** के हृदय में रहा हुआ मोह का जहर उतर गया । उसे यह संसार असार प्रतीत होने लगा...संसार के भौतिक सुखों में उसे दुःख के दर्शन होने लगे...और एक शुभ दिन उसने मोह के बंधनों का परित्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

चारित्रमोहनीय का तीव्र क्षयोपशम होने के कारण पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप चारित्र के पालन में अत्यंत ही उत्साह बढ़ता गया...परंतु दीक्षा अंगीकार करने के बाद `क्षुधावेदनीय' कर्म उदय में आ गया ।

भावना थी...**``दीक्षा अंगीकार करने के बाद कर्मों की विशेष निर्जरा के लिए तप धर्म की विशेष आराधना करूंगा''** परंतु तप का अंतराय ऐसा उदय में आया कि अब स्थिति ही बदल गई ।

`जहाँ दीर्घ तप की भावना थी...वहाँ पोरिसी का पच्चक्खाण करना भी मुश्किल हो गया ।'

परन्तु गुरुदेवश्री प्रदत्त **``उवसम सारं खु सामण्णं''** `साधुता का सार उपशम है' इस सूत्र को उन्होंने अपने जीवन में एकदम आत्मसात् कर लिया था ।

प्राण बिना के कलेवर की जैसे कोई कीमत नहीं है, उसी प्रकार साधुता का प्राण यदि कोई है तो वह `क्षमापना' है ।

बाह्य-तप की साधना भी कषायों के जय के लिए है । कठोर बाह्य तप किया जाय किंतु हृदय में समता भाव न हो तो उस तप की कोई विशेष कीमत नहीं है ।

तीव्र क्षुधावेदनीय के उदय के कारण ललितांग मुनि बाह्य उपवास

आदि तप की साधना करने में असमर्थ थे किंतु तप के फल-समता को उन्होंने अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था ।

चातुर्मास के दिन आए...अन्य तीन मुनियों के साथ ललितांग मुनि भी चातुर्मास हेतु एक गाँव में रहे । उन तीन मुनियों ने तो चार-चार मास के उपवास चालू कर दिए । परंतु ललितांग मुनि तप करने में असमर्थ थे । नवकारसी आते ही वे गोचरी के लिए निकल पड़ते । क्षुधा भी इतनी तीव्र थी कि खाने के लिए घड़ा भर कर भात चाहिए ।

ललितांग मुनि आहार वापरते थे-अनशन (उपवास) की अशक्ति के कारण, न कि अशन (आहार) की आसक्ति के कारण ।

घड़ा भर कर भात वहोरने के कारण लोगों में उनका नाम पड़ गया **कुरगडुमुनि** । कुर अर्थात् चावल, गडु अर्थात् घड़े जैसा पात्र ।

दिन पर दिन बीतने लगे ।

कुरगडु मुनि को रोज भिक्षा के लिए जाते देख उन तीन तपस्वी मुनियों के दिल में उनके प्रति धिक्कार भाव उत्पन्न होता । वे सोचते **``कैसे महाराज हैं ! सुबह होते ही गोचरी के लिए निकल पड़ते हैं ? कितने भुक्कड़ हैं ? तप का तो बिल्कुल नाम ही नहीं लेते हैं ।''**

तपस्वी मुनियों के दिल में कुरगडु मुनि के प्रति तिरस्कार भाव था, जब कि कुरगडु मुनि के मन में किसी प्रकार की बुरी भावना नहीं थी...उनके मन में तो उन तपस्वियों के प्रति भी आदर भाव ही था ।

जिस प्रकार ज्ञान का अजीर्ण अहंकार है, उसी प्रकार तप का अजीर्ण क्रोध है ।

ज्ञानी को नम्र बनना चाहिए और तपस्वी को शांत बनना चाहिए ।

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

पर्युषण के दिन आ गए । तपस्वी मुनि अपनी तप साधना कर रहे थे, जब कि कुरगडु मुनि हर दिन भिक्षा के लिए जाते थे ।

इस प्रकार संवत्सरी का दिन आ गया । कुरगडु मुनि ने सोचा, ``आज उपवास कर लूँ ।'' परंतु क्षुधा वेदनीय का इतना तीव्र उदय था कि भूख सहन करना शक्य न रहा । आखिर वे भिक्षा के लिए निकल पड़े । लूखे-सूखे चावल लेकर वे अपनी बस्ती में पधारे ।

साधु-भगवंतों की यह आचार-संहिता है-``भिक्षा कोई भी लाए....परंतु उस पर अधिकार तो बड़ों का ही होता है । भिक्षा लानेवाले का यह कर्तव्य होता है कि वह बड़ों को भी आहार ग्रहण करने के लिए विनती करे ।''

कुरगडु मुनि भिक्षा लेकर आए । उन्हें भिक्षा लेकर आए देख तपस्वी मुनि मन-ही-मन आवेश में आ गए, ``कैसा भुक्कड़ है । संवत्सरी को भी आहार नहीं छोड़ता है ?''

समता के सागर कुरगडु मुनि ज्येष्ठ तपस्वी मुनि के पास आए और उन्हें अपना पात्र बतलाया उसके बाद ``आहार का लाभ देने के लिए विनंति की'' ।

कुरगडु मुनि की प्रार्थना को सुनकर तपस्वी मुनि उन पर बरस पड़े, **``अरे ! तुझे बोलते हुए शर्म नहीं आती है, हमें कितने दिनों से उपवास चल रहे हैं ? निर्लज्ज कहीं का ! चला जा यहाँ से ।''** इतना ही नहीं, आवेश में आकर उन तपस्वी मुनि ने उस पात्र में थूक भी दिया ।

इतना ही नहीं, दूसरे व तीसरे तपस्वी मुनि ने भी वैसा ही किया । वो ही धिक्कार और तिरस्कार भाव !!

कुरगडु मुनि एकदम शांत रहे ।

वे अपने भिक्षापात्र को लेकर एकांत में जाकर वापरने की तैयारी करने लगे ।

कुरगडु मुनि सोचते हैं, **``धन्य है उन तपस्वी मुनियों को ! ओहो ! कितने दिनों से वे उपवास कर रहे हैं ! धिक्कार है मेरी आत्मा को ! संवत्सरी जैसे महान् दिन में भी मैं आहार छोड़ नहीं पाया ! कैसी मेरी आसक्ति !! धन्य हैं उन सिद्ध भगवंतों को जो आहार की लप में से सर्वथा मुक्त हो गए हैं । ओहो ! मैंने पूर्व जन्म में कैसे पाप कर्म किए होंगे, जिस कारण संवत्सरी जैसे पवित्र दिन में भी मुझे आहार लेना पड़ रहा है ?''**

इस प्रकार कुरगडु मुनि की भावना में अभिवृद्धि होती गई...और कुछ ही क्षणों में घाती कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से उन्हें केवलज्ञान पैदा हो गया ।

कुरगडु मुनि को केवलज्ञान पैदा होते ही शासन देवी उन्हें वंदन के लिए उस बस्ती में आई ।

अद्‌भुत रूप और लावण्य से युक्त स्त्री को देख तपस्वी मुनि सोचने लगे, ``अहो ! यह तो शासनदेवी लगती है...अहो, अपने तप का कैसा प्रभाव !! शासनदेवी भी खींचकर चली आई ।''

परंतु यह क्या ! शासनदेवी तो उन तपस्वी मुनियों को वंदन किए बिना ही आगे बढ़ने लगी ।

यह विचित्र दृश्य देख तपस्वी मुनि चिल्ला उठे, ``ओ देवी ! कहाँ जा रही हो ? तपस्वी तो हम हैं, वह तो भुक्कड़ है !''

उसी समय कुछ कठोर शब्दों में शासनदेवी ने कहा, **``ओ तपस्वियो ! तुम तप के गुमान में भान भूले हो । अरे ! तुम कुरगडु मुनि को धिक्कार रहे हो...तुम्हें कहाँ पता है, उन्हें केवलज्ञान हो गया है ! केवली की आशातना मत करो ।''**

शासनदेवी के इन शब्दों को सुनकर तपस्वी मुनि एकदम घबरा गए...``ओहो ! यह क्या ! कुरगडु मुनि को केवलज्ञान हो गया है ! ओहो ! अपने हाथों से केवली मुनि की आशातना हो गई । अब अपनी क्या गति होगी ? एक सामान्य साधु की आशातना आत्मा को दुर्गति में भटका देती है तो केवली की आशातना का क्या भयंकर परिणाम आएगा ?''

उन तपस्वी मुनियों के हृदय पश्चात्ताप से भर आये ! वे तत्क्षण कुरगडु मुनि के पास पहुँच गए और अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगे, ``भगवंत ! हमारी भूल हो गई ! सच्चे तपस्वी आप ही थे...हमारे पास तो सिर्फ बाह्य तप था...आप समता के सागर थे । हमें क्षमा करें ।''

इस प्रकार अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप करनेवाले, उन तीन मुनियों को भी उस समय केवलज्ञान हो गया ।

❑ ❑ ❑

71. जीवदया का चमत्कार मेघकुमार

हाथी के भव में मेघकुमार ने
एक खरगोश की रक्षा के लिए
2½ दिन तक अपना एक पाँव ऊँचा ही रखा था ।

उस 'जीवदया' के परिणामस्वरूप
वही हाथी मरकर
श्रेणिक-पुत्र मेघकुमार बना ।

प्रभु वीर की एक ही देशना को सुनकर वे
त्याग-मार्ग के पथिक बन गए ।

- परंतु

  पुनः मोह जागृत बना !
  संयमी महात्माओं के
  पाँवों के स्पर्श की पीड़ा को वे
  समतापूर्वक सहन नहीं कर पाए ।
  एक ही रात्रि में वे
  संयम में अस्थिर बन गए ।
  मन के परिणाम विचलित हो गए

- **परंतु**

  प्रभु वीर के अल्प उपदेश से ही वे
  पुनः संयम में मेरु की तरह दृढ़ बन गए ।

  अप्रमत्त साधना के फलस्वरूप वे
  अनुत्तर देव विमान में देव बने ।

  बस, अब एक ही भव कर
  शाश्वतमोक्ष पद प्राप्त कर लेंगे ।

जीवमेकमपि स्पष्टं यो रक्षति शरीरवान् ।
स लभेत् स्वर्गमोक्षादि सुखं मेघकुमारवत् ।।

चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा की अमृतमयी धर्मदेशना का श्रवण कर अनेक पापात्माओं का मोहविष दूर हो रहा था और वे पुण्यात्माएँ मोह के साम्राज्य का परित्याग कर प्रभु के बताए हुए संयमधर्म का पालन करने के लिए कटिबद्ध बन रही थीं ।

राजगृहीनगरी में प्रभु का आगमन हुआ । प्रभु मेघ की भाँति खूब बरसे ! प्रभु की देशना समाप्त हुई...और श्रेणिकपुत्र मेघकुमार, जिसका रोम-रोम वैराग्यभाव से सुवासित हो चुका था, खड़ा हुआ और अपने माता-पिता के चरणों में नत मस्तक हो, चारित्रधर्म की अनुमति प्रदान करने के लिए प्रार्थना करने लगा ।

मेघकुमार की इस प्रार्थना को सुनकर मोहाधीन बने श्रेणिक व धारिणी बोले, **``बेटा ! तू तो अत्यंत ही सुकोमल है, संयम के भार को वहन करना तेरे वश की बात नहीं है । संयम का पालन तो अत्यंत ही दुष्कर है ।''**

मेघकुमार ने कहा, ``पूज्यो ! यद्यपि संयम-जीवन कठिन है, परन्तु मैं इस संसार से उद्विग्न बन चुका हूँ । एक क्षण भी इस संसार में रहना नहीं चाहता हूँ । यह मृत्यु तो माता-पिता के पास से भी पुत्र को छीन लेती है, अतः मैं प्रभु की शरण को स्वीकार कर उस मृत्यु को छलना चाहता हूँ ।''

मेघकुमार के तीव्र वैराग्य भाव को देखकर आखिर श्रेणिक व धारिणी ने उसे दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान की । अत्यंत ही उत्साह के साथ मेघकुमार ने प्रभु के चरणों में भागवती दीक्षा स्वीकार की ।

दीक्षा स्वीकार के बाद प्रभु ने मेघकुमार मुनि, स्थविर मुनियों को सौंप दिया । रात्रि में मेघकुमार का संथारा ज्येष्ठानुक्रम से द्वार के पास आया । इधर रात्रि में मुनियों के आवागमन से मेघमुनि को बारबार मुनियों के पैरों का संघट्टा होने लगा । इस कारण उसे पूरी रात नींद नहीं आई ।

रात्रि में ही इसके दिमाग में एक अशुभ विचार उत्पन्न हो गया, अहो ! राजमहल में मैं कितने आराम से सो सकता था...और यहाँ तो पूरी रात परेशानी में गई । यह कष्ट मेरे से सहन नहीं हो पाएगा । बस, प्रातःकाल होते

(70) समताधारी
कुरगडु मुनि-
पृष्ठ नं. 278

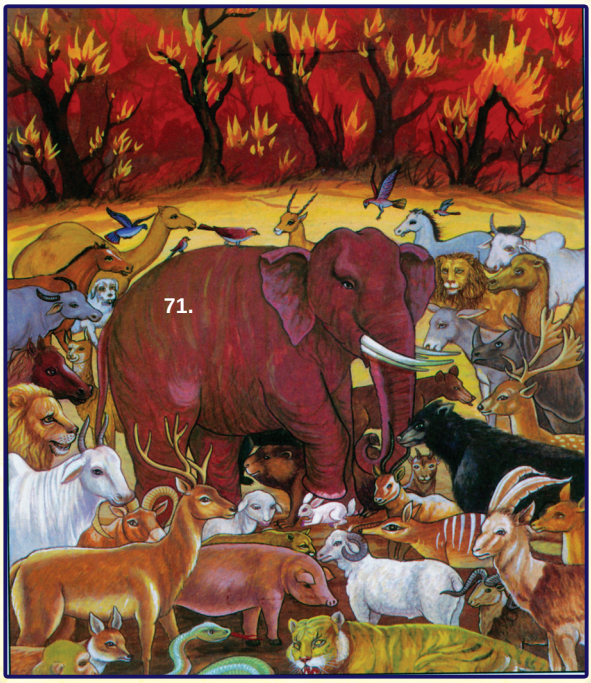

(71) मेघकुमार-
पृष्ठ नं. 283

श्री मेघकुमार की सज्झाय

धारणी मनावे रे मेघकुमारने रे, तुं मुज अेकज पुत्र,
तुज विण जायारे सूनां मंदिर माळीयां रे, राखो राखो घर तणां सूत्र. १

तुजने परणावुं रे आठ कुमारिकारे, सुंदर अति सुकुमाळ,
मलपती चाले रे जेम वन हाथणी रे, नयण वयण सुविशाळ. धारणी० २

मुज मन आशा रे पुत्र हती घणी रे, रमाडीश वहुना रे बाळ,
दैव अटारो रे देखी नवि शक्यो रे, उपायो अेह जंजाळ धारणी० ३

धन कण कंचन रे ऋद्धि घणी अछे रे, भोगवो भोग संसार,
छती ऋद्धि विलसो रे जाया घर आपणे रे, पछी लेजो संयम भार. धारणी०४

मेघकुमारे रे माता प्रत्ये बूझवीरे, दीक्षा लीधी वीरजीनी पास,
प्रीतिविमळ रे दूणि परे उच्चरे रे, पहोती म्हारा मनडानी आशा. धारणी०५

ही यह रजोहरण प्रभु को सौंपकर अपने घर चला जाऊंगा । इस प्रकार निर्णय कर मेघमुनि जैसे ही प्रभु के पास आए–

प्रभु ने कहा, ``मुनिवर ! तुमने रात्रि में जो दुर्ध्यान किया, वह ठीक नहीं किया । इस संसार में नरक व तिर्यंचगति में भटकते हुए इस जीव ने कैसे-कैसे भयंकर कष्ट सहन किए हैं । तू भी अपने पूर्व भव को क्यों याद नहीं करता है ? हाथी के भव में जो थोड़ासा कष्ट सहन किया तो उसके फलस्वरूप तुम यहाँ आ पहुँचे ।

``पूर्व के तीसरे भव में तुम वैताढ्य पर्वत पर मेरुप्रभ नाम के हाथी थे । एक बार उस जंगल में आग लगी, तृषातुर बने हुए पानी पीने के लिए एक सरोवर में उतरे और वहाँ मार्ग का ख्याल नहीं होने से तुम उस कीचड़ में फँस गए । उस समय पूर्व के वैरी हाथी ने दंतशूल द्वारा तुझ पर बहुत प्रहार किए । 7 दिन तक तीव्र वेदना को सहन करने के बाद तुम्हारी मृत्यु हुई और मरकर विंध्याचल पर्वत में 700 हथिनियों के स्वामी चार दाँतवाले हाथी बने ।

``एक बार जंगल में दावानल को देखकर तुम्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया । उस दावानल से बचने के लिए तुमने एक योजन प्रमाण भूमि को एकदम साफ कर दिया । वहाँ एक तृण भी रहने नहीं दिया । जो भी नया घास उगता, उसे भी उखेड़ कर फेंक देते । एकबार उसी जंगल में अचानक दावानल पैदा हुआ । आग से बचने के लिए सभी प्राणी उस मंडल में आ गए । तू भी वहाँ आकर खड़ा रहा । अचानक पैर में खुजली आ जाने के कारण तूने अपना एक पैर ऊँचा किया और उसी समय खाली जगह देखकर एक खरगोश आकर वहाँ बैठ गया ।

``जैसे ही तुम अपना पैर नीचे रखने लगे-तुमने उस स्थान पर बैठे खरगोश को देखा । तुम्हारा दिल दया से भर आया । यदि मैंने अपना पैर नीचे रखा तो यह बेचारा खरगोश मर जाएगा-इस प्रकार दया के परिणाम के कारण तुमने अपना पैर ऊँचा ही उठाए रखा । ढाई दिन के बाद वह दावानल शांत हो गया । सभी प्राणी अन्यत्र चले गए ।

``ढाई दिन तक निरंतर पैर को खड़े रखने के कारण वह पैर अकड़ गया । तुम अपना संतुलन खो बैठे और तत्काल भूमि पर नीचे गिर पड़े । उसके बाद तीन दिन तक भूख और प्यास की पीड़ा को सहते हुए तुमने

अपना आयुष्य पूरा किया और उस जीवदया के परिणाम के कारण तुम हाथी से श्रेणिक राजा के पुत्र मेघकुमार बने हो ।

''हे मेघमुनि ! जब एक हाथी के भव में भी जीवदया के लिए तुमने इतना अधिक कष्ट सहन किया तो फिर ऐसे त्यागी-संयमी महात्माओं के चरणस्पर्श से कैसे उद्विग्न बने हो ? तूने इस प्रकार एक जीव को अभयदान देने का फल प्राप्त किया है । अब तो तुम सर्व जीवों को अभय देने वाले साधु बने हो । अतः इसका निरतिचार पालन करो और अपने आपको इस भव-सागर से पार उतारो । भवसागर से पार उतरने के लिए यह मनुष्य जन्म अत्यंत ही दुर्लभ है ।''

इस प्रकार महावीर प्रभु की वाणी सुनकर मेघमुनि पुनः संयम में स्थिर बने और अपने पाप का **'मिच्छामि दुक्कडम्'** देकर `आँख को छोड़ शरीर की सार-संभाल नहीं करूंगा ।' इस प्रकार कठोर अभिग्रह को धारण कर निरतिचार संयम का पालन कर अंत में मासिक संलेखना पूर्वक समाधि मृत्यु को प्राप्त कर **विजय** नाम के अनुत्तर देवलोक में देव बने । वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जाएंगे ।

❑ ❑ ❑

72.
स्कन्दकाचार्य

एक बार दण्डक राजा ने अपने मंत्री पालक को श्रावस्ती भेजा । पालक के हृदय में जैनधर्म के प्रति अत्यन्त द्वेष था । वह श्रावस्ती की राजसभा में गया । स्कन्दककुमार ने जैनधर्म का विशद अध्ययन किया था ।

स्कन्दककुमार और पालक के बीच दार्शनिक विवाद छिड़ गया । स्कन्दककुमार ने अनेकान्तवाद के द्वारा पालक को हरा दिया ।

विवाद में पालक की हार हो जाने से पालक अत्यन्त लज्जित हुआ । उसके हृदय में स्कन्दककुमार के प्रति भयंकर द्वेष की भावना पैदा हो गई ।

क्रोध कषाय अग्नि से भी भयंकर है । अग्नि की लपटें तो बाहर दिखाई देती हैं, अतः उसे पहचान सकते हैं, परन्तु क्रोध की लपटें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती हैं, व्यक्ति भीतर-ही-भीतर जलता है ।

अग्नि तो अपने उत्पत्तिस्थल को ही जलाती है, जबकि क्रोधाग्नि आसपास के वातावरण को भी संतप्त कर देती है । जिस प्रकार शरीर में उत्पन्न हुए छोटे से घाव की उपेक्षा करने से वह घाव बड़ा होकर पूरे शरीर को बिगाड़ देता है; वन के एक भाग में उत्पन्न अग्नि की एक भी चिनगारी जैसे समस्त वन को जलाकर भस्मीभूत कर देती है, उसी प्रकार क्रोध की आग भी आत्मा के गुणरूपी बाग को जलाकर समाप्त कर देती है ।

क्रोधान्ध व्यक्ति के विवेकचक्षु पर आवरण आ जाता है । उसकी दीर्घदर्शिता लुप्त हो जाती है । उसकी हिताहित की विचारशक्ति समाप्त हो जाती है और वह अनर्थकारी काम कर डालता है ।

क्रोधी व्यक्ति अपने दिल को तो जलाता ही है, अन्य के दिल को भी जला देता है । किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

लगा सको तो बाग लगाना, आग लगाना मत सीखो ।
जला सको तो दीप जलाना, दिल जलाना मत सीखो ।।

क्रोधी व्यक्ति स्व-पर उभय को संताप देता है ।

एक बार श्रावस्ती नगरी में भगवान मुनिसुव्रतस्वामी का आगमन हुआ । उनकी वैराग्यरंजित देशना का अमीपान कर स्कन्दककुमार संसार से विरक्त बन गया । उसने प्रभु के चरणों में अपना जीवन समर्पण कर दिया, भागवती प्रव्रज्या अंगीकार कर ली । जितशत्रु ने अपनी पुत्री पुरन्दरयशा का लग्न दण्डक राजा के साथ करा दिया ।

समय बीतने लगा ।

स्कन्दक मुनि सर्वशास्त्रों के पारगामी बने । अनेक राजकुमारों ने उनके पास दीक्षा अंगीकार की । वे 500 शिष्यों के गुरु बने । कालान्तर में उन्हें आचार्यपद से विभूषित किया गया ।

एक बार स्कन्दकाचार्य के मन में कुंभकारकट नगर में रही अपनी बहिन को प्रतिबोध देने की इच्छा हुई ।

उन्होंने मुनिसुव्रतस्वामी भगवान को अपनी भावना व्यक्त की ।

भगवान ने कहा-``स्कन्दक ! वहाँ मारणान्तिक उपसर्ग होगा । समस्त परिवार पर यह उपसर्ग आएगा ।''

``हे प्रभो ! हम सब आराधक बनेंगे या विराधक ?''

``तुम्हारे सिवाय सब आराधक बनेंगे ।''

भगवान की वाणी सुनकर स्कन्दकाचार्य ने कुंभकारकट नगर की ओर प्रयाण प्रारम्भ किया ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए स्कन्दकाचार्य कुंभकारकट नगर के निकट पहुँच गये । ज्योंही महाराजा दण्डक को आचार्य भगवन्त के आगमन के समाचार मिले, उनकी प्रसन्नता का पार न रहा । मुनिदर्शन के लिए उनका मन लालायित हो उठा । मुनि के आगमन की वे प्रतीक्षा करने लगे ।

मुनि के आगमन पर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न थे । परन्तु पालक मंत्री के हृदय में तो वैर की भयंकर गाँठ बँधी हुई होने से उसका मन प्रसन्न नहीं हुआ । वह किसी भी प्रकार से अपने वैर का बदला लेना चाहता था ।

आचार्य भगवन्त के नगर-आगमन में मात्र एक ही रात्रि शेष थी और पालक मंत्री ने अपने षड्यन्त्र का विस्तृत जाल बिछा दिया ।

पालक शस्त्रागार भंडारी के पास पहुँचा । उसने वहाँ से सैकड़ों हथियार निकलवा लिये । हथियार मिल जाने के बाद तत्क्षण पालक ने उस शस्त्रागार भंडारी की हत्या कर दी ।

व्यक्ति जब स्वार्थ के वशीभूत होकर क्रोधान्ध बन जाता है, तब उसका कोई सगा नहीं रहता है । स्वार्थ के वशीभूत हुआ व्यक्ति नीचतम कार्य करने के लिए भी तैयार हो जाता है ।

शस्त्रों को लेकर वह मंत्री उद्यान में जा पहुँचा, जहाँ आचार्य भगवन्त का प्रातः पदार्पण होने वाला था । उसने जमीन खुदवाकर उसमें चारों ओर वे शस्त्र छिपा दिये और पुनः भूमि व्यवस्थित करवा दी ।

प्रातःकाल होते ही स्कन्दकाचार्य ने नगरी में प्रवेश किया । महाराजा मुनि की वन्दना कर ज्योंही राजभवन में आये, तभी पालक मंत्री महाराजा के पास पहुँच गया और बोला-``एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण समाचार प्राप्त हुआ है । जीवन-मरण का प्रश्न है ।''

``कहो ! क्या समाचार है ?''

``महाराज ! अपना गुप्तचर विभाग इतना सजग है कि कोई भेदी दुश्मन अपने घर में घुस जाये तो भी वे उसका पता लगा देते हैं । एक भयंकर शत्रु के षड्यन्त्र की गन्ध आ गई है ।''

``मंत्रीश्वर ! बात को जरा स्पष्ट करो ।''

``राजन् ! बात तो स्पष्ट करूंगा, परन्तु क्या आप मुझ पर विश्वास करोगे ?''

``क्यों नहीं ?''

``तो सुनिए महाराज ! इस नगरी में जो स्कन्दकाचार्य आये हैं, वे साधु नहीं बल्कि अपने दुश्मन हैं । साधु के वेष में शैतानियत करने के लिए वे सज्ज बने हैं ।''

``मंत्रीश्वर ! तुम यह क्या बात करते हो ? यह बिल्कुल असम्भव बात है ।'' ``राजन् ! मैंने तो पहले ही आपको कह दिया था कि आप मेरी बात का विश्वास नहीं करेंगे, परन्तु आपको इस बात का पूर्ण प्रमाण बता दूँ तो...।'' ``तो मैं जरूर विश्वास करूंगा ।'' राजा ने जवाब दिया ।

``राजन् ! तो आप पधारिये मेरे साथ उद्यान में । उद्यान में जहाँ वे मुनि ठहरे हैं, वहाँ उन्होंने शस्त्र छिपाये हैं और वे अवसर पाकर नगर पर आक्रमण करना चाहते हैं ।''

महाराजा की आँखें क्रोध से लाल हो गईं ।

``महाराज ! अपने शस्त्रागार के भण्डारी की हत्या के भी समाचार मिले हैं ।''

महाराजा दण्डक तत्काल उद्यान में जाने के लिए तैयार हो गये । गुप्तचर भी साथ में ही थे । थोड़ी ही देर में राजा उद्यान के निकट पहुँच गये । गुप्तचर कुछ आगे बढ़े । उन्होंने उद्यान की जमीन खोदी और कुछ शस्त्र उन्हें मिल गये । शस्त्र पाते ही उनमें से एक महाराजा के पास पहुँचा । उसने वास्तविक घटना सुना दी ।

समाचार सुनते ही महाराजा आगबबूला हो उठे । उन्होंने पालक को धन्यवाद दिया, फिर बोले-``पालक ! तुमने सत्य को प्रकट कर मेरे राज्य को बचा लिया है । अब तू जा, तुझे योग्य लगे, वह शिक्षा कर ।''

``बस ! महाराजा की आज्ञा पाते ही पापी पालक उद्यान में पहुँच गया । आचार्य भगवन्त पर दोषारोपण का प्रहार करते हुए वह बोला-**``हे दम्भी राजकुमार ! तुम्हारा कपट खुल गया है, तुमने जो हथियार उद्यान में छिपाये हैं, उससे राजा ने तुम्हें अपराधी घोषित किया है, अतः अब सजा के लिए तैयार हो जाओ ।''**

आचार्यश्री ने कहा-``पालक ! तू यह क्या बोल रहा है ? शस्त्र से हमें क्या लेना-देना है ?''

पालक ने कहा-``अब बचाव का उपाय क्या करते हो ? मौत के लिए तैयार हो जाओ ।'' स्कन्दक मुनि को प्रभु की वाणी याद आ गई-``वहाँ मारणान्तिक उपसर्ग होगा'' अतः उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाया और दारुण उपसर्ग में भी धैर्य और समाधि रखने का उपदेश दिया ।

स्कन्दकाचार्य की देशना, मानों अमृत का प्रवाह था, जिसे पीकर सभी ऐसे सज्ज हो गये, मानों उन्हें मौत का कोई भय ही नहीं था ।

पालक मंत्री ने तत्काल नौकरों को आदेश देकर उस उद्यान के पास ही घाणी तैयार करा दी और आचार्य भगवन्त को सम्बोधित करते हुए वह बोला-``तैयार हो जाओ, तुम्हें अपने अपराध के बदले इस घाणी में पेला जाएगा ।''

स्कन्दकाचार्य ने मुनियों की अन्तश्चेतना को पुनः जाग्रत करते हुए कहा-**``सिंह की भाँति हमने चारित्र अंगीकार किया है, अतः मृत्यु के कष्टों से हमें भयभीत नहीं होना है । ध्यान रखो ! आत्मा अजर है, अमर है । आग**

उसे जला नहीं सकती है, पानी उसे गला नहीं सकता है और घाणी उसे पेला नहीं सकती है। अपने ही अशुभोदय से मरणान्त उपसर्ग आ रहा है, अतः इसमें अन्य किसी का दोष नहीं है। जीव ही अपने सुख दुःख का कर्त्ता है, अन्य जीव तो निमित्त मात्र है। अत्यन्त धैर्य व मैत्री को धारण कर अपनी आत्मा को शुभ व शुद्ध ध्यान में लगाये रखना।''

स्कन्दकाचार्य की वाणी ने शिष्यों पर जादूसा-असर किया। सभी उपसर्ग सहन करने के लिए तैयार हो गये। किसी ने आनाकानी नहीं की।

...और पालक ने सब तैयारी कर दी। पालक ने घाणी में कूदने के लिए आदेश दिया। मुनि ने अरिहंतादि की शरणागति स्वीकार की और घाणी में कूद पड़े। घाणी घूमने लगी और मुनि का देह चूर-चूर होने लगा, शरीर में से रक्त की धारा बहने लगी...परन्तु आश्चर्य ! घाणी ने उनके औदारिक देह का विनाश किया और मुनि ने अपने कार्मण बन्धन तोड़ दिये...वे सर्वथा मुक्त हो गये।

देहपिंजर नष्ट हो गया, किन्तु आतमपंखी ने तो मोक्ष की ओर उड़ान भर दी और वे सदा के लिए बन्धनमुक्त हो गये।

तभी दूसरे मुनि भी घाणी में कूदने के लिए तैयार हो गये।

आदेश होते ही वे भी कूद पड़े। शरीर चूर-चूर होने लगा-गुरुदेव ने निर्यामणा कराई और वे भी सदा के लिए बन्धनमुक्त हो गये।

देखते-ही-देखते 499 साधुओं को पेल दिया गया और वे सभी कर्म-मुक्त हो गये।

अन्त में रह गये-एक बालमुनि ! अल्पवय और अत्यन्त सुकोमल काया।

बालमुनि के देहनाश की कल्पना मात्र से स्कन्दकाचार्य का मन काँप उठा। उन्होंने सोचा-**``बालमुनि की इस वेदना को मैं देख न सकूंगा।''** अतः उन्होंने पालक को कहा-``पालक ! बस, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कर ले। इस बालमुनि की वेदना को मैं देख नहीं सकूंगा, अतः इसके पूर्व मुझे पील दो।''

पालक ने आचार्यदेव की इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। उसे तो वही मंजूर था, जिससे स्कन्दकाचार्य को अधिक वेदना हो।

...और स्कन्दकाचार्य ने बालमुनि को प्रेरणा से प्रोत्साहित करते हुए कहा-**``बालमुनि ! तू उम्र से छोटा है, तेरी काया छोटी है, परन्तु तेरी आत्मा छोटी नहीं है, तेरी आत्मा अजर है, अमर है और अनन्त है। तू इस कष्ट को सहर्ष स्वीकार करेगा न ?''**

बालमुनि ने कहा-``चिन्ता न करें, भगवन् ! आपकी अमृतवाणी का अमीपान किया है, अतः देह-दुःख की कोई परवाह नहीं है ।''

स्कन्दकाचार्य ने बालमुनि को निर्यामणा कराई ।

बालमुनि ने समताभाव बनाये रखा और समस्त घाति अघाति कर्मों के बन्धनों को तोड़कर वे सदा के लिए बन्धनमुक्त हो गये ।

अब बारी आई स्कन्दकाचार्य की ।

परन्तु उनके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं थी । बालमुनि के देहनाश को वे सहन न कर सके । उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं । उनका हृदय धमधमा उठा । उन्होंने निदान किया-

``मेरे तप का मुझे कोई फल मिले तो मैं दण्डक, पालक व इस राष्ट्र का संहारक बनूँ ।'' ``क्रोधे क्रोड़ पूरवतणुं संयम फल जाय'' कितनी सुन्दर बात कही है । करोड़ों वर्ष की तप-साधना भी क्रोध से नष्ट हो जाती है ।

सबको समत्व का दान देने वाले स्कन्दकाचार्य स्वयं संयम का फल हार गये । गम्भीर भूल का गम्भीर परिणाम आया ।

घाणी में वे पील दिये गये...मर कर वे अग्निकुमार देव बने । उन्होंने ज्ञान का उपयोग लगाया और तत्काल उन्हें वैरी पालक दिखाई दे गया ।

उसी समय उनके रक्तरंजित रजोहरण को किसी पक्षी ने उठा लिया और उसे वस्त्र मानकर पुनः छोड़ दिया । रजोहरण पुरन्दरयशा के महल में गिरा ।

रक्तरंजित रजोहरण देखते ही पुरन्दरयशा का कोमल हृदय काँप उठा । ``ओहो ! मेरे राज्य में मुनिहत्या ! किसने की ? क्यों की ? ऐसा भयंकर अपराध ? कौन है वह महापापी ?''

महारानी तत्काल दौड़ती हुई महाराजा के पास आई और जोर-जोर से करुण रुदन करने लगी । ``हाय ! मेरे भाई मुनि की हत्या...।''

उसी समय शासनदेवता ने पुरन्दरयशा को वहाँ से उठाकर मुनिसुव्रत स्वामी भगवान के पास पहुँचा दिया ।

भगवान की वाणी का श्रवण कर पुरन्दरयशा शान्त हुई और उसने प्रभु के पास चारित्र स्वीकार कर लिया । निर्मल चारित्र का पालन कर वह देवलोक में गई । वहाँ से च्यवकर मोक्ष में जाएगी । इधर कोपायमान बने अग्निकुमार देव ने ``कुंभकारकट'' नगर को जलाकर भस्मीभूत कर दिया ।

इस प्रकार क्रोधावेश में आकर पालक और स्कन्दकाचार्य ने एक-दूसरे से वैर का बदला लिया और दोनों ने अपना संसार बढ़ा लिया । ❑

73. अषाढ़ाभूति

ब्रह्म-मूर्ति धर्मरुचि आचार्य भगवंत की जबान पर मानों सरस्वती नृत्य करती थी । उनके धर्मदेशनामृत का पान करने के लिए जनता सदैव उत्सुक रहती थी । उनकी वाणी के अजस्र-प्रवाह में जब श्रोतागण डुबकी लगाते थे, तब वे अपने अस्तित्व को भी भूल जाते थे । संसार की असारता का स्पष्ट चित्रण करनेवाली वैराग्यवाहिनी उनकी धर्मदेशना का श्रवण कर अनेक नवयुवक भी आकर्षक भौतिक सुखों का परित्याग कर पवित्र चारित्र वेष को धारण कर लेते थे ।

बालक अषाढ़ाभूति ने एक ही बार आचार्य भगवंत की धर्मदेशना का श्रवण किया और उसका हृदय वैराग्य रंग से रंजित हो गया ।

वह आचार्य भगवंत के पास आया और बोला, **''प्रभो ! संसार के बंधनों से मैं मुक्ति चाहता हूँ...चारित्र प्रदान कर मुझ रंक पर आप अनुग्रह करें ।''** आचार्य भगवंत ने बालक अषाढ़ाभूति के दैहिक लक्षणों का निरीक्षणपरीक्षण किया । आचार्य भगवंत ने उस बालक में चारित्र-पालन की योग्यता देखी ।

आचार्य भगवंत ने कहा, **''वत्स ! तुम अपने माता-पिता की अनुज्ञा ले आओ, मैं...तुम्हें अवश्य चारित्र प्रदान करूंगा ।''**

बस, आचार्य भगवंत की ओर से चारित्र प्रदान करने का आश्वासन प्राप्त कर बालक अषाढ़ाभूति का मन मयूर नाच उठा । वह अपने घर गया । उसने अपने माता-पिता को समझाने की कोशिश की । पहले तो उसके माता-पिता मोहाधीन होकर दीक्षा के लिए अनुमति देने हेतु राजी नहीं हुए...परंतु बाद में बालक के अत्यंत ही आग्रह को देखकर राजी हो गए ।

माता-पिता की अनुमति मिलने पर अषाढ़ाभूति को त्रिभुवन के साम्राज्य की प्राप्ति से भी अधिक हर्ष हुआ ।

...और एक शुभ दिन...शुभ बेला में अषाढ़ाभूति ने आचार्य भगवंत के चरणारविन्द में अपना जीवन समर्पित कर दिया ।

श्रमण वेष में बाल मुनि अषाढ़ाभूति की प्रतिभा दूज के चाँद की भाँति खिलने लगी ।

कुछ ही वर्षों की ज्ञान-ध्यान की साधना के फलस्वरूप उन्हें अनेक प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त हुईं ।

अब बाल अषाढ़ाभूति की काया बाल नहीं रही...उनकी काया ने भी यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया । यौवन के साथ ही उनका रूप-सौन्दर्य चन्द्र की सोलह कलाओं की भाँति खिल उठा ।

गुरुदेव के हाथ उनके सिर पर थे ।

एक दिन गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर अषाढ़ाभूति मुनि राजगृही नगरी में गोचरी के लिए पधारे ।

मध्याह्न का समय था । आकाश में सूर्य अपनी किरणों के द्वारा वातावरण को उष्ण बना रहा था । नीचे धरती तपी हुई थी । चारों ओर भीषण गर्मी होने पर भी महामुनि अषाढ़ाभूति अत्यंत ही शांत और गंभीर थे । उनके चेहरे पर न आतप की उद्विग्नता थी और न ही गर्मी का विषाद । वे ईर्यासमिति आदि का पालन करते हुए गोचरी बहोर रहे थे ।

अचानक उन्होंने किसी महर्द्धिक नट के भवन में प्रवेश किया और धर्मलाभ कहा । धर्मलाभ की ध्वनि सुनते ही नटराज की दो कन्याएँ भुवनसुंदरी और जयसुंदरी एक सुगंधित मोदक लेकर आईं और अत्यंत ही आदरपूर्वक उन्होंने अषाढ़ाभूति को वह लड्डू बहोराया । मुनि मोदक बहोर कर नटराज के भवन से बाहर आए । मोदक अत्यंत ही सुगंधित था, उसकी गंध अषाढ़ाभूति मुनि के नाक को छू गई ।

वे मनोमन सोचने लगे, ``कितना अच्छा लड्डू है ! इसकी गंध नाक को लुभाने जैसी है । तो इसका स्वाद कितना अच्छा होगा । परन्तु इस लड्डू पर तो आचार्य भगवंत का अधिकार रहेगा, मुझे थोड़े ही मिलने वाला है अतः क्यों न ऐसा उपाय करूँ जिससे इस भवन में दूसरी बार लड्डू प्राप्त कर सकूँ ।'' बस, इस प्रकार विचार कर उन्होंने रूप-परिवर्तन की विद्या को स्मरण किया और कुछ ही क्षणों में उन्होंने दूसरे साधु का रूप धारण कर लिया ।

अपना रूप-परिवर्तन कर अषाढ़ाभूति मुनि पुनः नटराज के भवन में जा पहुँचे और दूसरे स्वर में जोर से ``धर्मलाभ'' बोले । नटराज की पुत्रियों ने दूसरे मुनि का आगमन देखकर उन्हें भी एक मोदक बहोराया । उस मोदक को लेकर अषाढ़ाभूति मुनि बाहर आए और सोचने लगे, ``अहो ! यह मोदक तो उपाध्यायजी भगवंत को प्राप्त होगा...मुझे थोड़े ही मिलने वाला है ।''

बस, बाहर आकर पुनः वृद्धमुनि का रूप परिवर्तन किया और वापस नटराज के भवन में जाकर ``धर्मलाभ'' बोले ।

नटराज की पुत्री ने वृद्ध मुनि को भी एक लड्डू बहोरा दिया ।

वृद्ध के वेष में रहे अषाढ़ाभूति मुनि नटराज के भवन से बाहर आए और सोचने लगे, ``अहो ! यह लड्डू तो तपस्वी मुनि को मिलेगा...मुझे थोड़े ही मिलने वाला है ?'' बस, वापस बाहर आकर उन्होंने बालमुनि का रूप किया और पुनः नटराज भवन में पहुँच गए ।

नटराज की पुत्रियों ने बालमुनि को देख उन्हें भी एक लड्डू बहोरा दिया ।

अषाढ़ाभूति मुनि बाहर आए और प्रसन्नता से एकदम झूम उठे ``अहो ! आज तो ऐसा स्वादिष्ट लड्डू मुझे वापरने (खाने) को मिलेगा ।''

रसना की आसक्ति ने अषाढ़ाभूति मुनि को चारित्र की सीढ़ी से एक कदम नीचे उतार दिया ।

साधना के फलस्वरूप आत्मा में अनेक प्रकार की लब्धियाँ प्रकट होती हैं, परंतु इह लौकिक स्वार्थ के लिए जो व्यक्ति इन लब्धियों का उपयोग कर लेता है तो उसके लिए ये लब्धियाँ तारक बनने के बजाय मारक बन जाती हैं ।

मिष्टान्न में शरीर को पुष्ट करने की ताकत है, परंतु उसी मिष्टान्न में जहर गिर जाए तो वही मिष्टान्न पुष्टिकारक बनने के बजाय मौत का कारण बन जाता है ।

विषयों की आसक्ति विष से भी भयंकर है । विष तो खाने पर ही मारता है जबकि विषयों का तो स्मरण मात्र भी घातक है । विष-भक्षण से एक ही जीवन समाप्त होता है, जबकि विषयों के सेवन से अनेक जीवन बर्बाद हो जाते हैं ।

रसना की आसक्ति अत्यंत ही भयंकर है । अनेक लब्धिधर महामुनियों का भी अधोपतन इस रसना की आसक्ति के कारण हो चुका है ।

विषय-आसक्ति का नशा जब चढ़ जाता है तो ज्ञानी महापुरुषों के ज्ञान पर भी एक आवरण आ जाता है, वे भी विषयों की भावी अनर्थता को जानने-देखने में अंध बन जाते हैं ।

सचमुच, विषयों का नशा अत्यंत ही खतरनाक है । इनका नशा चढ़ने के बाद व्यक्ति विवेक-भ्रष्ट हो जाता है । अपने ही हाथों से अपने पैरों में कुल्हाड़ी लगाने के लिए तैयार हो जाता है ।

ज्ञान-ध्यान के साधक अषाढ़ाभूति मुनि भी रसना की आसक्ति में ऐसे फँस गए कि वे भावी अनिष्ट का भी विचार नहीं कर सके । विषयों का सेवन क्षणिक सुख को देने वाला है, परंतु परिणाम अत्यंत ही भयंकर है । क्षणभर

विषयसुख का सेवन आत्मा को भयंकर दुर्गति के गर्त में डुबो देनेवाला है, परन्तु यह सत्य विषयासक्त आत्मा को कभी समझ में नहीं आता है ।

अषाढ़ाभूति मुनि के रूप-परिवर्तन के इस दृश्य को ऊपर झरोखे में बैठे नटराज ने देख लिया ।

उसने सोचा, **``अहो ! इस मुनि के पास में कैसी अद्‌भुत शक्तियाँ हैं ! यह तो साक्षात् स्वर्णपुरुष है । इसके जैसा व्यक्ति मेरे साथ में हो तो मेरे घर में धन का अक्षय भंडार पैदा हो सकता है । अतः क्यों न इन्हें अपने वश में कर लूँ ?''**

इस प्रकार विचार कर नटराज नीचे आया और उसने अपनी पत्नी व पुत्रियों को कहा, ``यह साधु रसना का लोभी लगता है परंतु इसके पास रूप परिवर्तन की अद्‌भुत विद्या है, अतः उसे अच्छा-अच्छा भोजन देकर आकर्षित करना । रसना का लोभी होने से यह तुरंत फँस जाएगा । यह यदि अपने अधीन हो गया तो अपने घर धन का अक्षय भंडार हो जाएगा ।''

अषाढ़ाभूति मुनि गोचरी बहोरकर अपने गुरुदेव के पास पधारे ।

मुनि गोचरी बहोरने के लिए जाते हैं, परन्तु उस गोचरी में प्राप्त सामग्री पर गुरु का ही अधिकार होता है ।

गोचरी बहोरकर आने के बाद उस गोचरी के दोष आदि के संबंध में गुरुदेव के पास आलोचना करने की होती है । गोचरी में लगे दोष गुरुदेव को कहने होते हैं । इस प्रकार निष्कपट भाव से गोचरी की आलोचना करने से शिष्य गोचरी संबंधी लगे दोषों के पापों से मुक्त हो जाता है ।

अषाढ़ाभूति मुनि ने माया कर लब्धि के बल से रूप परिवर्तन कर मोदक प्राप्त किए थे-परंतु गुरुदेव के आगे उन्होंने यह बात स्पष्ट नहीं की । वास्तविक सत्य को उन्होंने छुपाया । **माया सब पापों की जननी है । मायावी व्यक्ति अपने पाप को छुपाने के लिए झूठ का आश्रय लेता है ।**

रसना की आसक्ति के कारण अषाढ़ाभूति मुनि ने अपने रूप-परिवर्तन की बात गुरुदेव के आगे प्रस्तुत नहीं की...इस प्रकार रसना की आसक्ति ने उनके द्वारा माया का पाप कराया ।

दूसरे दिन पुनः अषाढ़ाभूति मुनि गोचरी के लिए निकले । इधर-उधर घूमकर वे उसी नटराज के भवन में आए और उन्होंने धर्मलाभ कहा ।

पिता का आदेश होने से नटराज की पुत्री भुवनसुंदरी व जयसुंदरी ने हावभाव पूर्वक अषाढ़ाभूति मुनि को सुंदर मधुर भोजन बहोराया और बोली, ``गुरुदेव ! हमारे भाग्य खुल गए...आप हम पर कृपा करते रहें...हमें अनुगृहीत करें ।''

स्त्री का चरित्र नागिन से भी कुटिल होता है...परंतु रसना में आसक्त अषाढ़ाभूति मुनि नट कन्याओं के भाव को नहीं समझ सके । सचमुच ! वे गुरुभक्ति से प्रेरित शब्द नहीं थे, परन्तु मुनि को फँसाने का वाग्जाल ही था ।

अषाढ़ाभूति मुनि प्रतिदिन नटराज के घर गोचरी के लिए आने लगे । नटराज की कन्याएँ भी अद्भुत रूप, लावण्य, हास्य और कटाक्ष आदि के द्वारा अषाढ़ाभूति मुनि के हृदय को बींधने लगीं ।

इस प्रकार निरंतर आगमन-संपर्क-वार्तालाप और रूप-दर्शन के कारण अषाढ़ाभूति का मन उन दोनों कन्याओं पर मोहित होने लगा ।

अवसर देखकर उन दोनों कन्याओं ने भी मधुर आलाप से कहा, **``हे मुनिवर ! इस युवावस्था में संयम की ये कष्टप्रद क्रियाएँ आपको शोभा नहीं देती हैं । यह वय तो भोग-सुखों के लिए उचित है । धर्म-साधना तो वृद्धावस्था में भी हो सकेगी । हम दोनों अपना जीवन आपके चरणों में समर्पित करना चाहती हैं । आपको छोड़कर हमारे दिल में अन्य किसी के प्रति अनुराग नहीं है, अतः आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें ।''**

दोनों सुंदरियों की प्रार्थना सुनकर अषाढ़ाभूति का मन संयम मार्ग से चलित हो गया ।

उन्होंने कहा, ``मैं अपने गुरुदेव की आज्ञा प्राप्तकर शीघ्र आऊंगा ।''

``आप अपने गुरु की आज्ञा प्राप्त कर शीघ्र पधारें । आपके विरह की वेदना को सहन करने में हम असमर्थ बन चुकी हैं ।''

बस, गोचरी लेकर अषाढ़ाभूति मुनि गुरुदेव के पास आए और बोले, ``हे प्रभो ! संयम के भार को वहन करने में मैं असमर्थ बन चुका हूँ, अतः मेरे इस श्रमण वेष को आप स्वीकार करें । मेरा मन उन नटकन्याओं में आसक्त बन चुका है...अतः आप मुझे जाने के लिए अनुमति प्रदान करें ।''

अषाढ़ाभूति के मुख से इन वचनों को सुनकर आचार्य भगवंत विचारमग्न हो गए-**``अहो ! पवित्र चारित्र को त्याग कर यह विष की विष्टा को पाना चाहता है । यह सब मायापिंड का ही प्रभाव लगता है । अहो ! उत्तर गुण में की गई दोष की उपेक्षा मूलगुण का घात करने में समर्थ हो गई ।**

आचार्य भगवंत ने अषाढ़ाभूति को भोग-सुखों से निवृत्त होने के लिए पुनः समझाने का प्रयास किया..परंतु मोहाधीन बने अषाढ़ाभूति, आचार्य भगवंत के वचनों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए ।

आचार्य भगवंत ने सोचा, ``अषाढ़ाभूति अब संयम में नहीं रह पाएगा

फिर भी संयम जीवन का परित्याग करने के पूर्व मेरी अनुज्ञा लेने के लिए आया है, अतः इस आत्मा में योग्यता का बीज तो पड़ा हुआ है...''

समय आने पर यह बीज पुनः अंकुरित हो सके इसके लिए गुरुदेव ने प्रेरणा देते हुए कहा, ***''अषाढ़ाभूति ! कल्पलता के समान संयमव्रत को तू छोड़ने के लिए तैयार हो गया है तो कम-से-कम मद्य-मांस का सर्वथा त्याग करना और मद्य-मांस खाने वाले के संसर्ग से भी सदैव दूर रहना।''***

``गुरुदेव ! आपकी इस आज्ञा का मैं जीवन-पर्यंत पालन करूंगा'' इतना कहकर उसने रजोहरण और मुखवस्त्रिका गुरुदेव को अर्पित कर दी...और गुरुदेव को पीठ न पड़े...इस प्रकार चलकर उपाश्रयखंड से बाहर आ गया और सीधे ही नटराज के भवन की ओर बढ़ने लगा।

नटराज तो अषाढ़ाभूति के आगमन की प्रतीक्षा ही कर रहा था...बस थोड़ी ही देर में अषाढ़ाभूति वहाँ आ गए। नटराज ने उनका हार्दिक स्वागत किया। गृहस्थ के सुन्दर वस्त्र प्रदान किए और एक दिन अपनी दोनों कन्याओं के साथ अषाढ़ाभूति का पाणिग्रहण करा दिया।

लग्न के पूर्व ही अषाढ़ाभूति ने मद्य व मांस से दूर रहने की बात स्पष्ट कर दी थी अतः नटराज ने अपनी दोनों कन्याओं को यह बात समझा दी कि तुम भी मद्य-मांस से सदैव दूर रहना। धीरे-धीरे समय बीतने लगा। अषाढ़ाभूति उन दोनों स्त्रियों के साथ संसार के भोग-सुखों में मस्त बन गए। अपनी नट-कला के द्वारा लोकरंजन कर बहुतसा धन भी उपार्जित कर लिया।

एक दिन राजगृही के महाराजा की राजसभा में कोई विशिष्ट नाटक-कार आया। उसने अपने जीवन में अनेक नाट्यकारों को जीत लिया था। राजसभा में आकर उसने वाद के लिए ललकारा। राजा ने उस नट को पराजित करने के लिए अषाढ़ाभूति को आमंत्रण दिया।

अपनी नाट्यकला के प्रदर्शन के पूर्व अषाढ़ाभूति ने कहा, ``मैं बाहर से आए नाट्यकार को परास्त करने के लिए जा रहा हूँ।''

पत्नियों को कहकर अषाढ़ाभूति अपनी कला के प्रदर्शन हेतु राजसभा में आया। बाहर से आए नाट्यकार ने अपनी बुद्धि-कुशलता से अनेक कलाओं का प्रदर्शन किया। उसके बाद अषाढ़ाभूति ने सभी को आश्चर्यमुग्ध करने वाली अनेकानेक अद्‌भुत कलाओं का प्रदर्शन किया, जिसे देखकर उस नाट्यकार ने अपनी हार स्वीकार कर ली। अषाढ़ाभूति विजयी घोषित हुए। चारों ओर मुक्तकंठ से अषाढ़ाभूति की प्रशंसा होने लगी।

इधर अषाढ़ाभूति की पत्नियों ने सोचा, ``हमारे प्रियतम तो वादी को हराने के लिए गए हैं, अतः कम-से-कम छह मास तो लग जाएंगे । बहुत दिनों से हमने उनके भय से मद्य-मांस का सेवन नहीं किया है, अतः क्यों न मद्य का सेवन कर मिजबानी उड़ा लें ।'' इस प्रकार विचार कर उन दोनों स्त्रियों ने शराब पी ली । शराब के नशे में मदोन्मत्त होकर शयन खंड में बिस्तर पर गिर पड़ी । उनके वस्त्र इधर-उधर हो चुके थे ।

कुछ ही समय बाद अषाढ़ाभूति वाद में विजय प्राप्त कर अपने भवन में आया । आते ही उसने अपनी दोनों स्त्रियों को शराब के नशे में चकचूर देखा ।

यह दृश्य देखते ही अषाढाभूति चौंक उठे-**``अहो ! यह क्या ! इनके मुख से शराब की दुर्गंध कैसे आ रही है ?''**

उन्हें अपने गुरुदेव के वचन याद आ गए-**``शराब और शराबी से सदैव दूर रहना ।'' अब मैं इनके साथ कैसे रह सकता हूँ ? यहाँ रहने से तो गुरुदेव के वचन का भंग होगा । इस प्रकार विचारकर अषाढ़ाभूति अपने वास भवन की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे और नटराज से बोले, ``तुम्हारी पुत्रियों ने मेरी प्रतिज्ञा का भंग किया है, अतः अब मैं चलता हूँ ।''** इतना कहकर अषाढ़ाभूति तुरंत ही चल पड़े ।

नटराज को ज्योंही इस बात का पता चला वह ऊपर पहुँचा । उसने अपनी दोनों पुत्रियों को शराब के नशे में चकचूर देखा ।

नटराज ने अपनी दोनों पुत्रियों को ढंढोला । वे झिझक कर बैठी हो गईं ।

नटराज ने कहा, ``अरे बेटियो ! तुमने यह क्या कर डाला, तुमने शराब पीकर अपने प्रियतम की प्रतिज्ञा का भंग कर दिया । वे तुम्हें छोड़कर जा रहे हैं । तुम जल्दी जाओ और उनके चरण पकड़ो । आग्रह करने पर भी यदि वे न रुकें तो उन्हें कहना हे प्राणनाथ ! यदि आपको जाना ही है तो हमारे भरण-पोषण की व्यवस्था कर बाद में जाओ ।''

पिता की यह बात सुनते ही नटराज की कन्याएँ एकदम सावधान हो गईं और प्रियतम के पीछे दौड़ पड़ीं ।

अषाढ़ाभूति के पास जाकर बोलीं, ``स्वामिन् ! हमारे एक अपराध को आप क्षमा करें । भविष्य में कभी ऐसी भूल नहीं करेंगी ।''

अषाढ़ाभूति ने कहा, ``तुमने शराब-पान कर मेरी प्रतिज्ञा का भंग किया है, अतः मैं यहाँ क्षणभर भी नहीं रुक सकता हूँ ।''

``अच्छा ! यदि आप जाना ही चाहते हो तो हमारे भावी भरण पोषण की व्यवस्था करके जाओ ताकि हम अपना शेष जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकें ।''

आखिर अषाढ़ाभूति ने अपनी पत्नियों की इस प्रार्थना को स्वीकार किया और उनकी भावी भरण-पोषण की जवाबदारी ले ली ।

अषाढ़ाभूति पुनः नटराज के घर आए परंतु उनका मन, उन कन्याओं से विरक्त हो चुका था । उनके मन में संसार के भौतिक सुखों का अब कोई आकर्षण नहीं रहा था ।

अषाढ़ाभूति सिंहरथ राजा के पास गए और बोले, **''मैं आपको भरत चक्रवर्ती का नाटक बताना चाहता हूँ ।''** राजा ने अषाढ़ाभूति के निवेदन को स्वीकार किया । अषाढ़ाभूति ने 7 दिन में भरत चक्रवर्ती का नाटक तैयार किया । भरत चक्री के अनुरूप स्टेज तैयार किया गया ।

अषाढ़ाभूति स्वयं भरत चक्रवर्ती बने । आयुधशाला में चक्र की उत्पत्ति, छह खंड पर विजयप्राप्ति, कोटिशिला पर नाम आलेखन, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा प्रणाम आदि का हूबहू चित्रण प्रस्तुत करने के बाद एक दिन भरत चक्री के वेष में रहे अषाढ़ाभूति आदर्श-भवन में गए ।

वहाँ अचानक भरत चक्रवर्ती की अंगुली में से एक अंगूठी निकल गई । भरत चक्री ने अंगूठी रहित अपनी अंगुली को देखा । सौंदर्यरहित उस अंगुली को देखकर वे अनित्य भावना में चढ़ गए...उसी अनित्य भावना में आगे बढ़ते हुए वे क्षपक श्रेणी पर चढ़ गए...और समस्त घातिकर्मों का क्षय कर केवली बन गए । तत्क्षण देवताओं ने आकर भरत चक्री को साधु वेष प्रदान किया और उसके बाद श्रमण वेष में रहे भरत केवली को उन्होंने वंदन किया ।

भरत चक्री के नाटक में सम्मिलित 500 राजकुमारों को भी प्रतिबोध देकर दीक्षा प्रदान की और अन्य भव्य जीवों को प्रतिबोध देने लगे ।

भरत के नाटक में नटराज ने रत्नादि वस्तुएँ प्राप्त कीं, जिससे उसका भी जीवनपर्यंत का दारिद्र्य दूर हो गया ।

अषाढ़ाभूति के गुरुदेव को जब इस बात का पता चला तो वे भी आश्चर्यमुग्ध हो गए । वे सोचने लगे-**''चक्रवर्ती की बाह्य-ऋद्धि को प्रदर्शित करने की ताकत तो देवताओं में भी है परंतु...ऐसी आत्म-ऋद्धि का सच्चा प्रदर्शन अषाढ़ाभूति ने कर दिया । सचमुच, वे धन्य हैं, वंदनीय हैं ।''**

अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर अषाढ़ाभूति मुनि निर्वाण पद को प्राप्त हुए । इस प्रकार माया पिंड के कारण अषाढ़ाभूति मुनि का चारित्र से पतन हुआ और गुरु-प्रदत्त प्रतिज्ञा का पालन करने से अषाढ़ाभूति मुनि का उद्धार हो गया ।

❑

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर मरुधररत्न, पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 236 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	36.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	37.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	38.	जीव विचार विवेचन	100/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	39.	गणधर-संवाद	80/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	40.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
6.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	41.	नवपद आराधना	80/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	42.	पहला कर्मग्रंथ	100/-
8.	विविध-तपमाला	100/-	43.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
9.	विवेकी बनो	90/-	44.	संस्मरण	50/-
10.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	44.	भव आलोचना	10/-
11.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	46.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
13.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	48.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
14.	आओ श्रावक बनें !	25/-	49.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
15.	व्यसन-मुक्ति	100/-	50.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
16.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	51.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	52.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
18.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	53.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
19.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
20.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	55.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
21.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	56.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
22.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	57.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
23.	समाधि मृत्यु	80/-	58.	वैराग्य-वाणी	140/-
24.	The Way of Metaphysical Life	60/-	59.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
25.	Pearls of Preaching	60/-	60.	लघु संग्रहणी	140/-
26.	New Message for a New Day	600/-	61.	नवतत्त्व विवेचन	110/-
27.	Celibacy	70/-	62.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
28.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	63.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
29.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-	64.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
30.	अमृत रस का प्याला	300/-	65.	जीवन झांकी	अमूल्य
31.	ध्यान साधना	40/-	66.	मन के जीते जीत है	80/-
32.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	67.	कर्मग्रंथ (भाग-1)	160/-
33.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	68.	नमस्कार मीमांसा	150/-
34.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	69.	प्रात: स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
35.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	70.	प्रात: स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299